अग्निपुराण

।।⁠ श्रीहरिः ⁠।।

# नम्र निवेदन

विभिन्न विषयोंके विवेचन एवं लोकोपयोगिताकी दृष्टिसे अठारह पुराणोंमें अग्निपुराणका सर्वाधिक महत्त्व है। इसमें अनेक विद्याओंका सुन्दर समावेश है। इस पुराणके सन्दर्भमें पुराणकारका कथन है—‘आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन सर्वा विद्याः प्रदर्शिताः’ (अग्नि० ३८३।५१)। अर्थात् ‘इस आग्नेय (अग्नि) पुराणमें सभी विद्याओंका वर्णन है। भगवान् अग्निदेवने महर्षि वसिष्ठको यह पुराण सुनाया है। अतः इसे अग्निपुराण कहते हैं। पद्मपुराणमें पुराणोंको भगवान् विष्णुका ही विग्रह बतलाया गया है और उनके विभिन्न अङ्ग ही विभिन्न पुराण कहे गये हैं। इस दृष्टिसे अग्निपुराणको श्रीहरिका बायाँ चरण कहा गया है—‘अङि्घ्रर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते’ (स्वर्गखण्ड ६२।४)।

अग्निपुराणमें ३८३ अध्याय हैं। इसमें परा-अपरा विद्याओंका वर्णन, मत्स्य, कूर्म आदि अवतारोंकी कथाएँ, रामायणके सातों काण्डोंकी संक्षिप्त कथा, हरिवंश नामसे भगवान् श्रीकृष्णके वंशका वर्णन, महाभारतके सभी पर्वोंकी संक्षिप्त कथा, सृष्टि-वर्णन, स्नान-संन्ध्या-पूजा-होम-विधि, दीक्षा-विधि, अभिषेक-विधि, दीक्षाके ४८ संस्कार, अधिवास-विधि, देवालय-निर्माण-फल, शिलान्यास-विधान, प्रासाद-लक्षण, प्रासाद-देवता-स्थापन विधि, विविध देव-प्रतिमाओंके लक्षण, प्राण-प्रतिष्ठा-विधि, देव-पूजा-विधि, तत्त्व-दीक्षा, देवोंके विभिन्न मन्त्र, वास्तु-पूजा और खगोल आदिका सुन्दर निरूपण किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें तीर्थ-माहात्म्य, श्राद्धकल्प, ज्योतिष्-शास्त्र, त्रैलोक्य-विजय-विद्या, संग्राम-विजय-विद्या, महामारी-विद्या, वशीकरण आदि षट्कर्म, मन्त्र, औषधि, लक्ष्यकोटि-होम-विधि, सूर्य और चन्द्रवंशका विस्तार, पुरुष-स्त्रीके शुभाशुभ लक्षण, वेदशाखा-वर्णन, सिद्धौषधि एवं रसादिका वर्णन, विभिन्न पशुओंकी चिकित्सा, बालतन्त्र, ग्रहमन्त्र, नरसिंहमन्त्र, त्रैलोक्य-मोहन-मन्त्र, लक्ष्मी एवं त्वरिता-पूजा और सिद्धि आदिका प्रतिपादन किया गया है। सारांश यह है कि इस पुराणमें लौकिक ज्ञान और ब्रह्मज्ञानके सभी विषयोंको बोधगम्य शैलीमें विस्तृत रूपमें समझाया गया है। यह पुराण अध्येताओं एवं गवेषकोंके लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामग्री सँजोये हुए है।

‘कल्याण’ वर्ष ४४-४५ के (सन् १९७०-७१) में गर्ग-संहिता और नरसिंहपुराणके साथ संयुक्त रूपमें इस पुराणका गीताप्रेस द्वारा विशेषाङ्करूपमें प्रकाशन किया गया था। पाठकोंके आग्रहको स्वीकार करते हुए गर्ग-संहिता और नरसिंहपुराणका अलगसे पहले ही पुस्तकरूपमें पुनर्मुद्रण किया जा चुका है। तदनुसार अग्निपुराणका हिन्दी-अनुवाद भी पाठकोंकी सेवामें पुस्तकरूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है, पाठकगण इसे अपनाकर इसमें संगृहीत अगाध ज्ञानसे भरपूर लाभ उठायेंगे।

—प्रकाशक

# अग्निपुराणका संक्षिप्त परिचय

भारतीय जीवन-संस्कृतिके मूलाधार ‘वेद’ हैं। वेद भगवान्‌के स्वाभाविक उच्छ्‌वास हैं, अतः वे भगवत्स्वरूप ही हैं। श्रुत ब्रह्मवाणीका संरक्षण परम्परासे ऋषियोंद्वारा होता रहा, इसीलिये इसे ‘श्रुति’ कहते हैं। भगवदीय वाणी वेदोंके सत्यको समझनेके लिये षडङ्ग, अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त और ज्योतिषका अध्ययन आवश्यक था। परंतु जन-साधारणके लिये यह भी सहज सम्भव न होनेसे पुराणोंका कथोपकथन आरम्भ हुआ, जिससे वैदिक सत्य रोचक ऐतिहासिक आख्यायिकाओंद्वारा जन-जनतक पहुँच सके। इसीलिये कहा जाता है कि पुराणोंका कथोपकथन उतना ही प्राचीन है, जितना वैदिक ऋचाओंका संकलन और वंशानुवंश-संरक्षण। अध्ययनकी पाश्चात्त्य विश्लेषण-विवेचन-पद्धतिको सर्वोपरि मानकर पुराणोंको ईसा-जन्मके आस-पास अथवा उसके बादका ठहराना सर्वथा भ्रान्त तथा अनुचित है। भारतके आदिकालमें समाजका प्रतिभासम्पन्न समुदाय जिस प्रकार वेदोंके अध्ययन-अध्यापन-निर्वचनमें निमग्न रहा, उसी प्रकार उसी कालमें समाजके साधारण समुदायको धर्ममें लगाये रखनेके लिये पुराणोंका कथन-श्रवण-प्रवचन होता रहा। शतपथब्राह्मण (१४।२।४।१०)-में आया है कि ‘चारों वेद, इतिहास, पुराण—ये सब महान् परमात्माके ही निःश्वास हैं।’ अथर्ववेद (११।७।२४)-में आया है—‘यज्ञसे यजुर्वेदके साथ ऋक्, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुए।’

जो पुरातन आख्यान ऋषियोंकी स्मृतियोंमें सुरक्षित थे और जो वंशानुवंश ऋषि-कण्ठोंसे कीर्तित थे, उन्हींका संकलन और विभागीकरण भगवान् वेदव्यासद्वारा हुआ। उन आख्यायिकाओंको व्यवस्थित करके प्रकाशमें लानेका श्रेय भगवान् वेदव्यासको है, इसी कारण वे पुराणोंके प्रणेता कहलाये; अन्यथा पुराण भी वेदोंकी भाँति ही अनादि, अपौरुषेय एवं प्रामाणिक हैं। भगवान् वेदव्यासद्वारा प्रणीत अठारह महापुराणोंमें अग्निपुराणका एक विशेष स्थान है। विष्णुस्वरूप भगवान् अग्निदेवद्वारा महर्षि वसिष्ठजीके प्रति उपदिष्ट यह अग्निपुराण ब्रह्मस्वरूप है, सर्वोत्कृष्ट है तथा वेदतुल्य है। देवताओंके लिये सुखद और विद्याओंका सार है। इस दिव्य पुराणके पठन-श्रवणसे भोग-मोक्षकी प्राप्ति होती है।

पुराणोंके पाँच लक्षण बताये गये हैं—१. सृष्टि-उत्पत्ति-वर्णन, २. सृष्टि-विलय-वर्णन, ३. वंश-परम्परा-वर्णन, ४. मन्वन्तर-वर्णन और ५. विशिष्ट-व्यक्ति-चरित्र-वर्णन। पुराणके पाँचों लक्षण तो अग्निपुराणमें घटित होते ही हैं, इनके अतिरिक्त वर्ण्य-विषय इतने विस्तृत हैं कि अग्निपुराणको ‘विश्वकोष’ कहा जाता है। मानवके लौकिक, पारलौकिक और पारमार्थिक हितके लगभग सभी विषयोंका वर्णन अग्निपुराणमें मिलता है। प्राचीनकालमें न तो मुद्रणकी प्रथा थी और न ग्रन्थ ही सहज सुलभ होते थे। ऐसी परिस्थितिमें विविध विषयोंके महत्त्वपूर्ण विवेचनका एक ही स्थानपर एक साथ मिल जाना, यह एक बहुत बड़ी बात थी। इसी कारण अग्निपुराण बहुत जनप्रिय और विद्वद्‌वर्ग-समादृत रहा।

सम्पूर्ण सृष्टिके कारण भगवान् विष्णु हैं, अतः अग्निपुराणमें भगवान्‌के विविध अवतारोंका संक्षिप्त वर्णन किया गया है। भगवान् विष्णु ही मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण और बुद्धके रूपमें अवतरित हुए तथा कल्किके रूपमें अवतरित होंगे। भगवान्‌के अवतारोंकी संख्या निश्चित नहीं है; परंतु सभी अवतारोंका हेतु यही है कि सभी वर्ण और आश्रमके लोग अपने-अपने धर्ममें दृढ़तापूर्वक लगे रहें। जगत्‌की सृष्टिके आदिकारण श्रीहरि अवतार लेकर धर्मकी व्यवस्था और अधर्मका निराकरण ही करते हैं।

भगवान् विष्णुसे ही जगत्‌की सृष्टि हुई। प्रकृतिमें भगवान् विष्णुने प्रवेश किया। क्षुब्ध प्रकृतिसे महत्तत्त्व, फिर अहंकार उत्पन्न हुआ। फिर अनेक लोकोंका प्रादुर्भाव हुआ, जहाँ स्वायम्भुव मनुके वंशज एवं कश्यप आदिके वंशज परिव्याप्त हो गये। भगवान् विष्णु आदिदेव हैं और सर्वपूज्य हैं। प्रत्येक साधकको आत्मकल्याणके लिये विधिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये। भगवान्‌की पूजाका विधान क्या है, पूजाके अधिकारकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है, यज्ञके लिये कुण्डका निर्माण एवं अग्निकी स्थापना किस तरह की जाय, शिष्यद्वारा आचार्यके अभिषेकका विधान क्या है तथा भगवान्‌का पूजन एवं हवन किस प्रकार सम्पन्न किया जाय, इसका विस्तृत वर्णन अग्निपुराणमें है। मन्त्र एवं विधिसहित पूजन-हवन करनेवाला अपने पितरोंका उद्धारक एवं मोक्षका अधिकारी होता है।

देव-पूजनके समान महत्त्व ही देवालय-निर्माणका है। देवालय-निर्माण अनेक जन्मके पापोंको नष्ट कर देता है। निर्माण-कार्यके अनुमोदनमात्रसे ही विष्णुधामकी प्राप्तिका अधिकार मिल जाता है। कनिष्ठ, मध्य और श्रेष्ठ—इन तीन श्रेणीके देवालयोंके पाँच भेद अग्निपुराणमें बताये गये हैं—१. एकायतन २. त्र्यायतन, ३. पञ्चायतन, ४. अष्टायतन तथा ५. षोडशायतन। मन्दिरोंका जीर्णोद्धार करनेवालेको देवालय-निर्माणसे दूना फल मिलता है। अग्निपुराणमें विस्तारसे बताया गया है कि श्रेष्ठ देव-प्रासादके लक्षण क्या हैं।

देवालयमें किस प्रकारकी देव-प्रतिमा स्थापित की जाय, इसका बड़ा सूक्ष्म, एवं अत्यन्त विस्तृत वर्णन इसमें है। शालग्रामशिला अनेक प्रकारकी होती है। द्विचक्र एवं श्वेतवर्ण शिला ‘वासुदेव’ कहलाती है, कृष्णकान्ति एवं दीर्घ छिद्रयुक्त ‘नारायण’ कहलाती है। इसी प्रकार इसमें संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, परमेष्ठी, विष्णु, नृसिंह, वाराह, कूर्म, श्रीधर आदि अनेक प्रकारकी शालग्राम-शिलाओंका विशद वर्णन है। देवालयमें प्रतिष्ठित करनेके लिये भगवान् वासुदेवकी, दशावतारोंकी, चण्डी, दुर्गा, गणेश, स्कन्द आदि देवी-देवताओंकी, सूर्यकी, ग्रहोंकी, दिक्‌पाल, योगिनी एवं शिवलिङ्ग आदिकी प्रतिमाओंके श्रेष्ठ लक्षणोंका वर्णन है। देवालयमें श्रेष्ठ लक्षणोंसे सम्पन्न श्रीविग्रहोंकी स्थापना सभी प्रकारके मङ्गलोंका विधान करती है। अग्निपुराणोक्त विधिके अनुसार देवालयमें देव-प्रतिमाकी स्थापना और प्राण-प्रतिष्ठा करानेसे परम पुण्य होता है। श्रेष्ठ साधकके लिये यही उचित है कि अत्यन्त जीर्ण, अङ्गहीन, भग्न तथा शिलामात्रावशिष्ट (विशेष चिह्नोंसे रहित) देव-प्रतिमाका उत्सवसहित विसर्जन करे और देवालयमें नवीन मूर्तिका न्यास करे। जो देवालयके साथ अथवा उससे अलग कूप, वापी, तड़ागका निर्माण करवाता या वृक्षारोपण करता है, वह भी बहुत पुण्यका लाभ करता है।

भारतवर्षमें पञ्चदेवोपासना अति प्राचीन है। गणेश, शिव, शक्ति, विष्णु और सूर्य—ये पाँचों देव आदिदेव भगवान्‌की ही पाँच अभिव्यक्तियाँ हैं; परंतु सब तत्त्वतः एक ही हैं। गणपति-पूजन, सूर्य-पूजन, शिव-पूजन, देवी-पूजन और विष्णु-पूजनके महत्त्वका भी अग्निपुराणमें स्थान-स्थानपर प्रतिपादन हुआ है।

साधनाके क्षेत्रमें श्रेष्ठ गुरु, श्रेष्ठ मन्त्र, श्रेष्ठ शिष्य और सम्यक् दीक्षाका बड़ा महत्त्व है। जिससे शिष्यमें ज्ञानकी अभिव्यक्ति करायी जाय, उसीका नाम ‘दीक्षा’ है। पाशमुक्त होनेके लिये जीवको आचार्यसे मन्त्राराधनकी दीक्षा लेनी चाहिये। सविधि दीक्षित शिष्यको शिवत्वकी प्राप्ति शीघ्र होती है।

जहाँ भक्त-मन-वाञ्छा-कल्पतरु भगवान्‌के सिद्ध श्रीविग्रहोंके देवालय हैं, अथवा जहाँ सर्वलोकवन्दनीय श्रीहरिके प्रीत्यर्थ ऋषि-मुनियोंने कठिन साधना की है, वही भूमि ‘तीर्थ’ कहलाती है, जिसके सेवनसे भोग-मोक्षकी प्राप्ति होती है। तीर्थ-सेवनका फल सबको समान नहीं होता। जिसके हाथ, पैर और मन संयमित हैं तथा जो जितेन्द्रिय, लघ्वाहारी, अप्रतिग्रही, निष्पाप है, उसी तीर्थयात्रीको तीर्थ-सेवनका यथार्थ फल मिलता है। ऐसे तीर्थयात्रीको पुष्कर, कुरुक्षेत्र, काशी, प्रयाग, गया आदि तीर्थोंका सेवन करना चाहिये। गयातीर्थमें शास्त्रोक्त विधिसे श्राद्ध करनेपर नरकस्थ पितर स्वर्गके अधिकारी और स्वर्गस्थ पितर परमपदके अधिकारी होते हैं।

काम-क्रोधग्रस्त मानवद्वारा नहीं चाहते हुए भी अज्ञानवश बलात् पापाचरण हो जाता है। पातक तो अनेक प्रकारके हैं; पर कभी-कभी ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी और गुरुतल्पगमन-जैसे महापातक भी घटित हो जाते हैं। इन पातकोंसे विमुक्तिका उपाय प्रायश्चित्त है। पातक, उपपातक, महापातकके परिशमनार्थ अनेक प्रकारके प्रायश्चित्तका निर्देश किया गया है। यदि कुछ भी न हो सके तो भगवान् विष्णुकी स्तुति करे। भगवान् विष्णुके समस्त पापनाशक स्तोत्रके आश्रयसे समस्त पातक विनष्ट हो जाते हैं।

आत्मशुद्धि तथा शरीर-शुद्धिका एक महान् साधन ‘व्रत’ भी है। शास्त्रोक्त नियमको ही ‘व्रत’ कहते हैं। इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रह आदि विशेष नियम व्रतके ही अङ्ग हैं। व्रत करनेवालेको किंचित् कष्ट सहन करना पड़ता है, अतः इसे ‘तप’ भी कहते हैं। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियसंयम, देवपूजा, अग्निहोत्र, संतोष तथा चोरीका अभाव—ये दस नियम सामान्यतः सम्पूर्ण व्रतोंमें आवश्यक माने गये हैं। भगवान् अग्निदेवने महर्षि वसिष्ठको तिथि, वार, नक्षत्र, दिवस, मास, ऋतु, वर्ष, संक्रान्ति आदिके अवसरपर होनेवाले स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी व्रत बताये हैं, जिनसे आत्यन्तिक कल्याणका सम्पादन होता है।

ग्रहों और नक्षत्रोंकी स्थिति भी मानवकी सफलता-असफलताको प्रभावित करती तथा शुभ-अशुभका विधान करती है। इसी कारण ज्योतिषशास्त्रका संक्षेपमें भगवान् अग्निदेवने सुन्दर उपदेश दिया, जिससे शुभ-अशुभका निर्णय करनेवाले विवेककी प्राप्ति हो सके। वर-वधूके गुण, विवाहादि संस्कारोंके मुहूर्तका निर्णय, ‘काल’ को समझनेके लिये गणित, युद्धमें विजय-प्राप्तिके लिये विविध योग, शत्रुके वशीकरणके लिये शान्ति, वशीकरण आदि षट् तान्त्रिक कर्म, ग्रहण-दान और ग्रहोंकी महादशा आदिका सूक्ष्मतापूर्वक विचार किया गया है। इस विवेचनमें ज्योतिषशास्त्रकी प्रायः उपयोगी बातें समाविष्ट हो गयी हैं।

व्यष्टि और समष्टिके हितके लिये अपने-अपने वर्ण और आश्रमके अनुसार व्यक्तिमात्रके लिये स्वधर्म-पालन आवश्यक है। स्वधर्म-पालन ही सुख-शान्ति तथा मोक्षकी सीढ़ी है। यज्ञ करना-कराना, वेद पढ़ना-पढ़ाना और स्वाध्याय ब्राह्मणके कर्म हैं। दान देना, वेदाध्ययन करना, यज्ञानुष्ठान करना क्षत्रिय-वैश्यके सामान्य धर्म हैं। प्रजा-पालन और दुष्टदमन क्षत्रियके तथा कृषि-गोरक्षा-व्यापार वैश्यके धर्म हैं। सेवा एवं शिल्परचना शूद्रका धर्म है। ब्रह्मचर्याश्रम मानवके पवित्र जीवन-प्रासादके लिये ‘नींवका पत्थर’ है। अन्तेवासीको आजके विद्यार्थियों-जैसा विलास-प्रमादपूर्ण जीवन नहीं, कठोर संयमित-नियमित-अनुशासित जीवन व्यतीत करनेकी आवश्यकता है, जिससे वह वैयक्तिक और सामाजिक धर्मोंके पालनकी क्षमता प्राप्त कर सके। विवाहके उपरान्त गृहस्थाश्रमकी सम्पूर्ण दिनचर्याका उल्लेख करते हुए यह बताया गया है कि गृही नित्य देवाराधन, द्रव्य-शुद्धि, शौचाशौच-विचार एवं शुद्ध आचरणद्वारा किस प्रकार आत्मकल्याण और समाजकल्याणका सम्पादन करे। सद्‌गृहस्थके लिये तो यहाँतक कहा गया है कि ‘श्री और समृद्धिके लिये गाय, चूल्हा, चाकी, ओखली, मूसल, झाड़ू एवं खंभेका भी पूजन करे।’ पौत्रके जन्मके बाद गृहस्थको वानप्रस्थ धारण करके पत्नीसहित तपःपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिये। संन्यासीका जीवन तो त्यागका मूर्तिमान् स्वरूप है। संन्यासी शरीरके प्रति उपेक्षाभाव रखता हुआ एकाकी विचरता है और मननशील रहता है। कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस—इन चार प्रकारके संन्यासियोंमें अन्तिम सर्वश्रेष्ठ है, जो नित्य ब्रह्ममें स्थित है।

वास्तु-विद्याका भी अग्निपुराणमें यत्र-तत्र प्रभूत वर्णन है। भूमिके विस्तारका दिग्दर्शन कराते हुए विभिन्न द्वीप तथा देशोंका वर्णन किया गया है। रहनेके लिये गृह-निर्माण कैसे हो, फिर नगर-निर्माणकी योजना कैसी हो—इसे भी युक्तिपूर्वक समझाया गया है। गृह-निर्माण और नगर-निर्माणके साथ देव-प्रतिमा और देवालय-निर्माणका भी विस्तृत विवरण है। नगर, ग्राम तथा दुर्गमें गृहों तथा प्रासादोंकी वृद्धि हो, इसकी सिद्धिके लिये ८१ पदोंका वास्तुमण्डल बनाकर वास्तु-देवताकी पूजा अवश्य करनी चाहिये।

पूजामें पुष्पोंका विशेष स्थान है। देव-पूजनमें मालती, तमाल, पाटल, पद्म आदि विभिन्न पुष्पोंके विभिन्न फल होते हैं; परंतु देवपूजनके लिये श्रेष्ठ पुष्प हैं—अहिंसा, इन्द्रियनिग्रह, दया, शम, तप, सत्य आदि। इन भाव-पुष्पोंसे अर्चित श्रीहरि शीघ्र संतुष्ट होते हैं। भाव-पुष्पोंसे अर्चना करनेवालेको नरक-यातना नहीं सहनी पड़ती; अन्यथा पापाचारीको अवीचि, ताम्र, रौरव, तामिस्र आदि नरकोंके कष्ट भोगने पड़ते हैं। पुण्यात्माको स्वर्गकी प्राप्ति होती है। विशेष पर्वपर, विशेष तीर्थमें, विशेष तिथिमें दानका अलग-अलग फल होता है। दानसे मोक्षतककी प्राप्ति हो सकती है; परंतु फलकी कामनासे दिया गया दान मोक्षकी प्राप्ति न करवाकर व्यर्थ चला जाता है। गायत्री-मन्त्रकी व्याख्या करते हुए भगवान् अग्निदेवने बताया है कि जो लोग भगवती गायत्रीका एवं गायत्री-मन्त्रका आश्रय लेते हैं, उनके शरीर और प्राण दोनोंकी रक्षा होती है।’

राज्यमें सुख-शान्ति बनाये रखनेके लिये राजाको अपने धर्मका भलीभाँति पालन करना चाहिये। शत्रुसूदन, प्रजापालक, सुदण्डधारी, संयमी, रण-कलाविद्, न्यायप्रिय, दुर्ग-रक्षित, नीतिकुशल राजा ही अपने धर्मका पालन कर सकता है। जो राजा धनुर्वेदके शिक्षण-प्रशिक्षणकी पूर्ण व्यवस्था रखता है और जो लोक-व्यवहारमें परम कुशल है, उसका पराभव नहीं होता।

स्वप्न और शकुनका भी जीवनपर शुभ और अशुभ प्रभाव पड़ता है। सभी स्वप्न और शकुन प्रभावशाली नहीं होते; पर जिनसे अशुभ होता है, उनके निवारणका उपाय भी बताया गया है। शुभ-लक्षणसम्पन्न स्त्री या पुरुषकी संगति सदा कल्याणकारी होती है; अतः इनके लक्षणोंका भी विस्तृत वर्णन है। जीवन श्रीयुक्त रहे, अतः हीरा, मोती, प्रवाल, शङ्ख आदि रत्नोंको परीक्षाके उपरान्त ही धारण करना चाहिये, जिससे शुभका विधान हो।

भगवान् अग्निदेवने चारों वेदोंकी सभी शाखाओंका विस्तृत वर्णन करके चारों वेदोंकी विभिन्न ऋचाओं या सूक्तोंके सहित पाठ, जप-हवन करनेका विधान बताया, जिससे भुक्ति-मुक्तिकामी पुरुषको अभीष्टकी प्राप्ति तथा सभी उत्पातोंकी शान्ति होती है। जैसे ऋग्वेदके ‘अग्निमीळे पुरोहितम्’—इस सूक्तका सविधि जप करनेसे इष्टकामनाओंकी पूर्ति होती है। भगवान् अग्निदेवने सूर्य, चन्द्र, यदु, पूरु आदि अनेक वंशोंका वर्णन किया, जिनका चरित्र सुननेसे पापोंका क्षय होता है। यदुवंशमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार धर्म-संरक्षण, अधर्म-नाश, सुर-पालन और दैत्य-मर्दनके लिये ही हुआ था—

देवक्यां वसुदेवात्तु कृष्णोऽभूत्तपसान्वितः ⁠।।

धर्मसंरक्षणार्थाय ह्यधर्महरणाय च ⁠।

सुरादेः पालनार्थं च दैत्यादेर्मथनाय च ⁠।।

(अग्निपुराण २७६।१-२)

स्वास्थ्य-रक्षा-सम्बन्धी ज्ञान भी मनुष्यके लिये आवश्यक है। अतः स्वास्थ्यके सिद्धान्त, रोगके भेद एवं कारण, ओषधिका विवेचन, वैद्यका कर्तव्य, उपचारके उपाय, शरीरके अवयव, गज और अश्वकी चिकित्सा आदिका वर्णन करते हुए आयुर्वेदका ज्ञान कराया गया है, जो मृतको भी प्राण-प्रदाता है। अनिष्ट-निवारण मन्त्रोंके प्रयोगोंद्वारा भी होता है, अतः मन्त्र-तन्त्रकी परिभाषा और भेद-प्रभेद बताकर शिव, सूर्य, गणपति, लक्ष्मी, गौरी आदि देवी-देवताओंके अनेक मन्त्र और मण्डल बताये गये हैं, जिनको सिद्ध करके प्रयोग करनेसे विष-शमन, बालग्रह आदिका निवारण होता है।

समाजमें उसका बड़ा आदर होता है, जिसकी वाणीमें रस है, जिसमें अभिव्यक्तिकी कुशलता है और जिसमें प्रस्तुतीकरणकी क्षमता है। अतः अग्निपुराणमें काव्य-मीमांसाका अतिविस्तृत वर्णन है। काव्याङ्ग, नाटक-निरूपण, रस-भेद, शब्दालंकार, अर्थालंकार, शब्द-गुण आदि शास्त्रीय विषयोंकी सूक्ष्म विवेचना है। यह इसीलिये कि—

‘अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।’ (अग्नि० ३३९।१०)

लोक-परलोक और परमार्थके सर्वोपयोगी स्थूल-सूक्ष्म विषयोंके वर्णनका यही उद्देश्य है कि मानव सुखी, शान्त, समृद्ध एवं स्वस्थ-जीवन व्यतीत करते हुए परम तत्त्वको प्राप्त करे। जीवनमें अर्थ और काम दोनों हों, पर वे हों धर्मके द्वारा नियन्त्रित। जीवन धर्मनिष्ठ हो और अन्तमें मोक्षकी प्राप्ति हो। धर्मशास्त्रका उपदेश देते हुए बताया गया है कि ‘धर्म वही है, जिससे भोग और मोक्ष, दोनों प्राप्त हो सकें। वैदिक कर्म दो प्रकारका है—एक ‘प्रवृत्त’ और दूसरा ‘निवृत्त’। कामनायुक्त कर्मको ‘प्रवृत्तकर्म’ कहते हैं। ज्ञानपूर्वक निष्कामभावसे जो कर्म किया जाता है, उसका नाम ‘निवृत्तकर्म’ है। वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रियसंयम, अहिंसा तथा गुरुसेवा—ये परम उत्तम कर्म निःश्रेयस (मोक्षरूप कल्याण)-के साधक हैं। इन सबमें भी सबसे उत्तम आत्मज्ञान है।’ (अग्नि० १६२।३—७)

‘भुक्ति’ से भी महत्त्वपूर्ण ‘मुक्ति’ है, जिससे जीवात्मा सभी प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त होकर परमात्मस्वरूप हो जाता है। ‘ज्ञान’ वही है, जो ब्रह्मको प्रकाशित करे और ‘योग’ वही है, जिससे चित्त ब्रह्मसे संयुक्त हो जाय। ‘ब्रह्मप्रकाशकं ज्ञानं योगस्तत्रैकचित्तता।’ (अग्नि० २७२।१)। अतः भगवान् अग्निदेवने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, अर्थात् अष्टाङ्गयोगका वर्णन किया, जिससे आत्मा परमात्मचैतन्यरूप हो जाय। परमात्म-चैतन्यकी प्राप्ति ही परम प्राप्तव्य है। इसीकी प्राप्तिके दो प्रधान मार्ग—ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठाका प्रतिपादन करनेवाली श्रीमद्भगवद्गीताका संक्षेपमें कथन करनेके उपरान्त यमगीताका भी वर्णन किया गया है।

वस्तुतः शरीरसे आत्मा पृथक् है। नेत्र, मन, बुद्धि आदि आत्मा नहीं हैं। आत्मा इनका नहीं, ये आत्माके हैं। जीवात्मा परमात्माका सनातन अंश है। ब्रह्मत्वकी प्राप्तिमें ही जीवनकी परम सफलता है। इसके लिये ज्ञानयोग श्रेष्ठ साधन है। साधनाके द्वारा जीव जगत्‌के स्थूल-सूक्ष्म बन्धनोंसे मुक्त होकर ब्रह्मत्वकी प्राप्ति कर लेता है। साधकको ‘शरीर-भाव’ से अतीत होना आवश्यक है। अपवादकी बात दूसरी है। अन्यथा सभीको अभ्यास करना ही पड़ता है। इसीलिये पूजा, व्रत, तप, वैराग्य और देवाराधनका विधान है। आत्मोत्कर्षके लिये सभीको अपने-अपने स्तरके अनुकूल साधन-पथ चुनना चाहिये। सभीका स्तर एक नहीं, अतः सभीका अधिकार भी समान नहीं। देवोपासनासे भी परमतत्त्वकी प्राप्ति हो सकती है। देवोपासकोंका जो ‘विष्णु’ है, वही याज्ञिकोंका ‘यज्ञपुरुष’ है और वही ज्ञानियोंका ‘मूर्तिमान् ज्ञान’ है। जीवात्मा किसी पथका आश्रय ले, अन्तिम उद्देश्य यही है कि आत्मा और परमात्माका एकत्व प्रकाशित हो जाय। सच्चा श्रेय तो सदा परमार्थमें ही निहित रहता है। परमार्थकी दृष्टिसे तो आत्मा और परमात्माका नित्य अभिन्नत्व है। अग्निपुराणमें श्रीसूतजीने कहा है—‘भगवान् विष्णु ही सारसे भी सार तत्त्व हैं। वे सृष्टि और पालन आदिके कर्ता और सर्वत्र व्यापक हैं।’ ‘वह विष्णुस्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ’—इस प्रकार उन्हें जान लेनेपर सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है।’

ऐसे वेदसम्मत, सर्वविद्यायुक्त और ब्रह्मस्वरूप अग्निपुराणका जो पठन, श्रवण, अध्ययन और मनन करता है उसे भोग और मोक्ष—दोनोंकी ही प्राप्ति होती है—

सारात्सारो हि भगवान् विष्णुः सर्गादिकृद्विभुः ⁠।

ब्रह्माहमस्मि तं ज्ञात्वा सर्वज्ञत्वं प्रजायते ⁠।।

(अग्नि० १।४)

।।⁠ श्रीहरिः ⁠।।

\*⁠ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ⁠\*

# अग्निपुराण

## पहला अध्याय

### मङ्गलाचरण तथा अग्नि और वसिष्ठके संवाद-रूपसे अग्निपुराणका आरम्भ

श्रियं सरस्वतीं गौरीं गणेशं स्कन्दमीश्वरम् ⁠। ब्रह्माणं वह्निमिन्द्रादीन् वासुदेवं नमाम्यहम् ⁠।।

‘लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, गणेश, कार्तिकेय, महादेवजी, ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र आदि देवताओं तथा भगवान् वासुदेवको मैं नमस्कार करता हूँ’ ⁠।।⁠ १ ⁠।।

नैमिषारण्यकी बात है। शौनक आदि ऋषि यज्ञोंद्वारा भगवान् विष्णुका यजन कर रहे थे। उस समय वहाँ तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे सूतजी पधारे। महर्षियोंने उनका स्वागत-सत्कार करके कहा— ⁠।।⁠ २ ⁠।।

ऋषि बोले—सूतजी! आप हमारी पूजा स्वीकार करके हमें वह सारसे भी सारभूत तत्त्व बतलानेकी कृपा करें, जिसके जान लेनेमात्रसे सर्वज्ञता प्राप्त होती है ⁠।।⁠ ३ ⁠।।

सूतजीने कहा—ऋषियो! भगवान् विष्णु ही सारसे भी सारतत्त्व हैं। वे सृष्टि और पालन आदिके कर्ता और सर्वत्र व्यापक हैं। ‘वह विष्णुस्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ’—इस प्रकार उन्हें जान लेनेपर सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है। ब्रह्मके दो स्वरूप जाननेके योग्य हैं—शब्दब्रह्म और परब्रह्म। दो विद्याएँ भी जाननेके योग्य हैं—अपरा विद्या और परा विद्या। यह अथर्ववेदकी श्रुतिका कथन है। एक समयकी बात है, मैं, शुकदेवजी तथा पैल आदि ऋषि बदरिकाश्रमको गये और वहाँ व्यासजीको नमस्कार करके हमने प्रश्न किया। तब उन्होंने हमें सारतत्त्वका उपदेश देना आरम्भ किया ⁠।।⁠ ४—६ ⁠।।

व्यासजी बोले—सूत! तुम शुक आदिके साथ सुनो। एक समय मुनियोंके साथ मैंने महर्षि वसिष्ठजीसे सारभूत परात्पर ब्रह्मके विषयमें पूछा था। उस समय उन्होंने मुझे जैसा उपदेश दिया था, वही तुम्हें बतला रहा हूँ ⁠।।⁠ ७ ⁠।।

वसिष्ठजीने कहा—व्यास! सर्वान्तर्यामी ब्रह्मके दो स्वरूप हैं। मैं उन्हें बताता हूँ, सुनो! पूर्वकालमें ऋषि-मुनि तथा देवताओंसहित मुझसे अग्निदेवने इस विषयमें जैसा, जो कुछ भी कहा था, वही मैं तुम्हें बता रहा हूँ। अग्निपुराण सर्वोत्कृष्ट है। इसका एक-एक अक्षर ब्रह्मविद्या है, अतएव यह ‘परब्रह्मरूप’ है। ऋग्वेद आदि सम्पूर्ण वेद-शास्त्र ‘अपरब्रह्म’ हैं। परब्रह्मस्वरूप अग्निपुराण सम्पूर्ण देवताओंके लिये परम सुखद है। अग्निदेवद्वारा जिसका कथन हुआ है, वह आग्नेयपुराण वेदोंके तुल्य सर्वमान्य है। यह पवित्र पुराण अपने पाठकों और श्रोताजनोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। भगवान् विष्णु ही कालाग्निरूपसे विराजमान हैं। वे ही ज्योतिर्मय परात्पर परब्रह्म हैं। ज्ञानयोग तथा कर्मयोगद्वारा उन्हींका पूजन होता है। एक दिन उन विष्णुस्वरूप अग्निदेवसे मुनियोंसहित मैंने इस प्रकार प्रश्न किया ⁠।।⁠ ८—११ ⁠।।

वसिष्ठजीने पूछा—अग्निदेव! संसारसागरसे पार लगानेके लिये नौकारूप परमेश्वर ब्रह्मके स्वरूपका वर्णन कीजिये और सम्पूर्ण विद्याओंके सारभूत उस विद्याका उपदेश दीजिये, जिसे जानकर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ⁠।।⁠ १२ ⁠।।

अग्निदेव बोले—वसिष्ठ! मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही कालाग्निरुद्र कहलाता हूँ। मैं तुम्हें सम्पूर्ण विद्याओंकी सारभूता विद्याका उपदेश देता हूँ, जिसे अग्निपुराण कहते हैं। वही सब विद्याओंका सार है, वह ब्रह्मस्वरूप है। सर्वमय एवं सर्वकारणभूत ब्रह्म उससे भिन्न नहीं है। उसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित आदिका तथा मत्स्य-कूर्म आदि रूप धारण करनेवाले भगवान्‌का वर्णन है। ब्रह्मन्! भगवान् विष्णुकी स्वरूपभूता दो विद्याएँ हैं—एक परा और दूसरी अपरा। ऋक्, यजुः, साम और अथर्वनामक वेद, वेदके छहों अङ्ग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष और छन्दःशास्त्र तथा मीमांसा, धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय, वैद्यक (आयुर्वेद), गान्धर्व वेद (संगीत), धनुर्वेद और अर्थशास्त्र—यह सब अपरा विद्या है तथा परा विद्या वह है, जिससे उस अदृश्य, अग्राह्य, गोत्ररहित, चरणरहित, नित्य, अविनाशी ब्रह्मका बोध हो। इस अग्निपुराणको परा विद्या समझो। पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने मुझसे तथा ब्रह्माजीने देवताओंसे जिस प्रकार वर्णन किया था, उसी प्रकार मैं भी तुमसे मत्स्य आदि अवतार धारण करनेवाले जगत्कारणभूत परमेश्वरका प्रतिपादन करूँगा ⁠।।⁠ १३—१९ ⁠।।

इस प्रकार व्यासद्वारा सूतके प्रति कहे गये आदि आग्नेय महापुराणमें पहला अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ १ ⁠।।

## दूसरा अध्याय

### मत्स्यावतारकी कथा

वसिष्ठजीने कहा—अग्निदेव! आप सृष्टि आदिके कारणभूत भगवान् विष्णुके मत्स्य आदि अवतारोंका वर्णन कीजिये। साथ ही ब्रह्मस्वरूप अग्निपुराणको भी सुनाइये, जिसे पूर्वकालमें आपने श्रीविष्णुभगवान्‌के मुखसे सुना था ⁠।।⁠ १ ⁠।।

अग्निदेव बोले—वसिष्ठ! सुनो, मैं श्रीहरिके मत्स्यावतारका वर्णन करता हूँ। अवतार-धारणका कार्य दुष्टोंके विनाश और साधु-पुरुषोंकी रक्षाके लिये होता है। बीते हुए कल्पके अन्तमें ‘ब्राह्म’ नामक नैमित्तिक प्रलय हुआ था। मुने! उस समय ‘भू’ आदि लोक समुद्रके जलमें डूब गये थे। प्रलयके पहलेकी बात है। वैवस्वत मनु भोग और मोक्षकी सिद्धिके लिये तपस्या कर रहे थे। एक दिन जब वे कृतमाला नदीमें जलसे पितरोंका तर्पण कर रहे थे, उनकी अञ्जलिके जलमें एक बहुत छोटा-सा मत्स्य आ गया। राजाने उसे जलमें फेंक देनेका विचार किया। तब मत्स्यने कहा—‘महाराज! मुझे जलमें न फेंको। यहाँ ग्राह आदि जल-जन्तुओंसे मुझे भय है।’ यह सुनकर मनुने उसे अपने कलशके जलमें डाल दिया। मत्स्य उसमें पड़ते ही बड़ा हो गया और पुनः मनुसे बोला—‘राजन्! मुझे इससे बड़ा स्थान दो।’ उसकी यह बात सुनकर राजाने उसे एक बड़े जलपात्र (नाद या कूँडा आदि)-में डाल दिया। उसमें भी बड़ा होकर मत्स्य राजासे बोला—‘मनो! मुझे कोई विस्तृत स्थान दो।’ तब उन्होंने पुनः उसे सरोवरके जलमें डाला; किंतु वहाँ भी बढ़कर वह सरोवरके बराबर हो गया और बोला—‘मुझे इससे बड़ा स्थान दो।’ तब मनुने उसे फिर समुद्रमें ही ले जाकर डाल दिया। वहाँ वह मत्स्य क्षणभरमें एक लाख योजन बड़ा हो गया। उस अद्भुत मत्स्यको देखकर मनुको बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले—‘आप कौन हैं? निश्चय ही आप भगवान् श्रीविष्णु जान पड़ते हैं। नारायण! आपको नमस्कार है। जनार्दन! आप किसलिये अपनी मायासे मुझे मोहित कर रहे हैं?’ ⁠।।⁠ २—१० ⁠।।

मनुके ऐसा कहनेपर सबके पालनमें संलग्न रहनेवाले मत्स्यरूपधारी भगवान् उनसे बोले—‘राजन्! मैं दुष्टोंका नाश और जगत्‌की रक्षा करनेके लिये अवतीर्ण हुआ हूँ। आजसे सातवें दिन समुद्र सम्पूर्ण जगत्‌को डुबा देगा। उस समय तुम्हारे पास एक नौका उपस्थित होगी। तुम उसपर सब प्रकारके बीज आदि रखकर बैठ जाना। सप्तर्षि भी तुम्हारे साथ रहेंगे। जबतक ब्रह्माकी रात रहेगी, तबतक तुम उसी नावपर विचरते रहोगे। नाव आनेके बाद मैं भी इसी रूपमें उपस्थित होऊँगा। उस समय तुम मेरे सींगमें महासर्पमयी रस्सीसे उस नावको बाँध देना।’ ऐसा कहकर भगवान् मत्स्य अन्तर्धान हो गये और वैवस्वत मनु उनके बताये हुए समयकी प्रतीक्षा करते हुए वहीं रहने लगे। जब नियत समयपर समुद्र अपनी सीमा लाँघकर बढ़ने लगा, तब वे पूर्वोक्त नौकापर बैठ गये। उसी समय एक सींग धारण करनेवाले सुवर्णमय मत्स्यभगवान्‌का प्रादुर्भाव हुआ। उनका विशाल शरीर दस लाख योजन लंबा था। उनके सींगमें नाव बाँधकर राजाने उनसे ‘मत्स्य’ नामक पुराणका श्रवण किया, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। मनु भगवान् मत्स्यकी नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा स्तुति भी करते थे। प्रलयके अन्तमें ब्रह्माजीसे वेदको हर लेनेवाले ‘हयग्रीव’ नामक दानवका वध करके भगवान्‌ने वेद-मन्त्र आदिकी रक्षा की। तत्पश्चात् वाराहकल्प आनेपर श्रीहरिने कच्छपरूप धारण किया ⁠।।⁠ ११—१७ ⁠।।

इस प्रकार अग्निदेवद्वारा कहे गये विद्यासार-स्वरूप आदि आग्नेय महापुराणमें ‘मत्स्यावतार-वर्णन’ नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ २ ⁠।।

## तीसरा अध्याय

### समुद्र-मन्थन, कूर्म तथा मोहिनी-अवतारकी कथा

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं कूर्मावतारका वर्णन करूँगा। यह सुननेपर सब पापोंका नाश हो जाता है। पूर्वकालकी बात है, देवासुर-संग्राममें दैत्योंने देवताओंको परास्त कर दिया। वे दुर्वासाके शापसे भी लक्ष्मीसे रहित हो गये थे। तब सम्पूर्ण देवता क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुके पास जाकर बोले—‘भगवन्! आप देवताओंकी रक्षा कीजिये।’ यह सुनकर श्रीहरिने ब्रह्मा आदि देवताओंसे कहा—‘देवगण! तुमलोग क्षीरसमुद्रको मथने, अमृत प्राप्त करने और लक्ष्मीको पानेके लिये असुरोंसे संधि कर लो। कोई बड़ा काम या भारी प्रयोजन आ पड़नेपर शत्रुओंसे भी संधि कर लेनी चाहिये। मैं तुम लोगोंको अमृतका भागी बनाऊँगा और दैत्योंको उससे वञ्चित रखूँगा। मन्दराचलको मथानी और वासुकि नागको नेती बनाकर आलस्यरहित हो मेरी सहायतासे तुमलोग क्षीरसागरका मन्थन करो।’ भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर देवता दैत्योंके साथ संधि करके क्षीरसमुद्रपर आये। फिर तो उन्होंने एक साथ मिलकर समुद्र-मन्थन आरम्भ किया। जिस ओर वासुकि नागकी पूँछ थी, उसी ओर देवता खड़े थे। दानव वासुकि नागके निःश्वाससे क्षीण हो रहे थे और देवताओंको भगवान् अपनी कृपादृष्टिसे परिपुष्ट कर रहे थे। समुद्र-मन्थन आरम्भ होनेपर कोई आधार न मिलनेसे मन्दराचल पर्वत समुद्रमें डूब गया ⁠।।⁠ १—७ ⁠।।

तब भगवान् विष्णुने कूर्म (कछुए-)-का रूप धारण करके मन्दराचलको अपनी पीठपर रख लिया। फिर जब समुद्र मथा जाने लगा, तो उसके भीतरसे हलाहल विष प्रकट हुआ। उसे भगवान् शंकरने अपने कण्ठमें धारण कर लिया। इससे कण्ठमें काला दाग पड़ जानेके कारण वे ‘नीलकण्ठ’ नामसे प्रसिद्ध हुए। तत्पश्चात् समुद्रसे वारुणीदेवी, पारिजात वृक्ष, कौस्तुभमणि, गौएँ तथा दिव्य अप्सराएँ प्रकट हुईं। फिर लक्ष्मीदेवीका प्रादुर्भाव हुआ। वे भगवान् विष्णुको प्राप्त हुईं। सम्पूर्ण देवताओंने उनका दर्शन और स्तवन किया। इससे वे लक्ष्मीवान् हो गये। तदनन्तर भगवान् विष्णुके अंशभूत धन्वन्तरि, जो आयुर्वेदके प्रवर्तक हैं, हाथमें अमृतसे भरा हुआ कलश लिये प्रकट हुए। दैत्योंने उनके हाथसे अमृत छीन लिया और उसमेंसे आधा देवताओंको देकर वे सब चलते बने। उनमें जम्भ आदि दैत्य प्रधान थे। उन्हें जाते देख भगवान् विष्णुने स्त्रीका रूप धारण किया। उस रूपवती स्त्रीको देखकर दैत्य मोहित हो गये और बोले—‘सुमुखि! तुम हमारी भार्या हो जाओ और यह अमृत लेकर हमें पिलाओ।’ ‘बहुत अच्छा’ कहकर भगवान्‌ने उनके हाथसे अमृत ले लिया और उसे देवताओंको पिला दिया। उस समय राहु चन्द्रमाका रूप धारण करके अमृत पीने लगा। तब सूर्य और चन्द्रमाने उसके कपट-वेषको प्रकट कर दिया ⁠।।⁠ ८—१४ ⁠।।

यह देख भगवान् श्रीहरिने चक्रसे उसका मस्तक काट डाला। उसका सिर अलग हो गया और भुजाओंसहित धड़ अलग रह गया। फिर भगवान्‌को दया आयी और उन्होंने राहुको अमर बना दिया। तब ग्रहस्वरूप राहुने भगवान् श्रीहरिसे कहा—‘इन सूर्य और चन्द्रमाको मेरे द्वारा अनेकों बार ग्रहण लगेगा। उस समय संसारके लोग जो कुछ दान करें, वह सब अक्षय हो।’ भगवान् विष्णुने ‘तथास्तु’ कहकर सम्पूर्ण देवताओंके साथ राहुकी बातका अनुमोदन किया। इसके बाद भगवान्‌ने स्त्रीरूप त्याग दिया; किंतु महादेवजीको भगवान्‌के उस रूपका पुनर्दर्शन करनेकी इच्छा हुई। अतः उन्होंने अनुरोध किया—‘भगवन्! आप अपने स्त्रीरूपका मुझे दर्शन करावें।’ महादेवजीकी प्रार्थनासे भगवान् श्रीहरिने उन्हें अपने स्त्रीरूपका दर्शन कराया। वे भगवान्‌की मायासे ऐसे मोहित हो गये कि पार्वतीजीको त्यागकर उस स्त्रीके पीछे लग गये। उन्होंने नग्न और उन्मत्त होकर मोहिनीके केश पकड़ लिये। मोहिनी अपने केशोंको छुड़ाकर वहाँसे चल दी। उसे जाती देख महादेवजी भी उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। उस समय पृथ्वीपर जहाँ-जहाँ भगवान् शंकरका वीर्य गिरा, वहाँ-वहाँ शिवलिङ्गोंका क्षेत्र एवं सुवर्णकी खानें हो गयीं। तत्पश्चात् ‘यह माया है’—ऐसा जानकर भगवान् शंकर अपने स्वरूपमें स्थित हुए। तब भगवान् श्रीहरिने प्रकट होकर शिवजीसे कहा—‘रुद्र! तुमने मेरी मायाको जीत लिया। पृथ्वीपर तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो मेरी इस मायाको जीत सके।’ भगवान्‌के प्रयत्नसे दैत्योंको अमृत नहीं मिलने पाया; अतः देवताओंने उन्हें युद्धमें मार गिराया। फिर देवता स्वर्गमें विराजमान हुए और दैत्यलोग पातालमें रहने लगे। जो मनुष्य देवताओंकी इस विजयगाथाका पाठ करता है, वह स्वर्गलोकमें जाता है ⁠।।⁠ १५—२३ ⁠।।

इस प्रकार विद्याओंके सारभूत आदि आग्नेय महापुराणमें ‘कूर्मावतार-वर्णन’ नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ ३ ⁠।।

## चौथा अध्याय

### वराह, नृसिंह, वामन और परशुराम-अवतारकी कथा

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं वराहावतारकी पापनाशिनी कथाका वर्णन करता हूँ। पूर्वकालमें ‘हिरण्याक्ष’ नामक दैत्य असुरोंका राजा था। वह देवताओंको जीतकर स्वर्गमें रहने लगा। देवताओंने भगवान् विष्णुके पास जाकर उनकी स्तुति की। तब उन्होंने यज्ञवाराहरूप धारण किया और देवताओंके लिये कण्टकरूप उस दानवको दैत्योंसहित मारकर धर्म एवं देवताओं आदिकी रक्षा की। इसके बाद वे भगवान् श्रीहरि अन्तर्धान हो गये। हिरण्याक्षके एक भाई था, जो ‘हिरण्यकशिपु’ के नामसे प्रसिद्ध था। उसने देवताओंके यज्ञभाग अपने अधीन कर लिये और उन सबके अधिकार छीनकर वह स्वयं ही उनका उपभोग करने लगा। भगवान्‌ने नृसिंहरूप धारण करके उसके सहायक असुरोंसहित उस दैत्यका वध किया। तत्पश्चात् सम्पूर्ण देवताओंको अपने-अपने पदपर प्रतिष्ठित कर दिया। उस समय देवताओंने उन नृसिंहका स्तवन किया। पूर्वकालमें देवता और असुरोंमें युद्ध हुआ। उस युद्धमें बलि आदि दैत्योंने देवताओंको परास्त करके उन्हें स्वर्गसे निकाल दिया। तब वे श्रीहरिकी शरणमें गये। भगवान्‌ने उन्हें अभयदान दिया और कश्यप तथा अदितिकी स्तुतिसे प्रसन्न हो, वे अदितिके गर्भसे वामनरूपमें प्रकट हुए। उस समय दैत्यराज बलि गङ्गाद्वारमें यज्ञ कर रहे थे। भगवान् उनके यज्ञमें गये और वहाँ यजमानकी स्तुतिका गान करने लगे ⁠।।⁠ १—७ ⁠।।

वामनके मुखसे वेदोंका पाठ सुनकर राजा बलि उन्हें वर देनेको उद्यत हो गये और शुक्राचार्यके मना करनेपर भी बोले—‘ब्रह्मन्! आपकी जो इच्छा हो, मुझसे माँगें। मैं आपको वह वस्तु अवश्य दूँगा।’ वामनने बलिसे कहा—‘मुझे अपने गुरुके लिये तीन पग भूमिकी आवश्यकता है; वही दीजिये।’ बलिने कहा—‘अवश्य दूँगा।’ तब संकल्पका जल हाथमें पड़ते ही भगवान् वामन ‘अवामन’ हो गये। उन्होंने विराट् रूप धारण कर लिया और भूर्लोक, भुवर्लोक एवं स्वर्गलोकको अपने तीन पगोंसे नाप लिया। श्रीहरिने बलिको सुतललोकमें भेज दिया और त्रिलोकीका राज्य इन्द्रको दे डाला। इन्द्रने देवताओंके साथ श्रीहरिका स्तवन किया। वे तीनों लोकोंके स्वामी होकर सुखसे रहने लगे। ब्रह्मन्! अब मैं परशुरामावतारका वर्णन करूँगा, सुनो। देवता और ब्राह्मण आदिका पालन करनेवाले श्रीहरिने जब देखा कि भूमण्डलके क्षत्रिय उद्धत स्वभावके हो गये हैं, तो वे उन्हें मारकर पृथ्वीका भार उतारने और सर्वत्र शान्ति स्थापित करनेके लिये जमदग्निके अंशद्वारा रेणुकाके गर्भसे अवतीर्ण हुए। भृगुनन्दन परशुराम शस्त्र-विद्याके पारंगत विद्वान् थे। उन दिनों कृतवीर्यका पुत्र राजा अर्जुन भगवान् दत्तात्रेयजीकी कृपासे हजार बाँहें पाकर समस्त भूमण्डलपर राज्य करता था। एक दिन वह वनमें शिकार खेलनेके लिये गया ⁠।।⁠ ८—१४ ⁠।।

Insert Images

वहाँ वह बहुत थक गया। उस समय जमदग्नि मुनिने उसे सेनासहित अपने आश्रमपर निमन्त्रित किया और कामधेनुके प्रभावसे सबको भोजन कराया। राजाने मुनिसे कामधेनुको अपने लिये माँगा; किंतु उन्होंने देनेसे इनकार कर दिया। तब उसने बलपूर्वक उस धेनुको छीन लिया। यह समाचार पाकर परशुरामजीने हैहयपुरीमें जा उसके साथ युद्ध किया और अपने फरसेसे उसका मस्तक काटकर रणभूमिमें उसे मार गिराया। फिर वे कामधेनुको साथ लेकर अपने आश्रमपर लौट आये। एक दिन परशुरामजी जब वनमें गये हुए थे, कृतवीर्यके पुत्रोंने आकर अपने पिताके वैरका बदला लेनेके लिये जमदग्नि मुनिको मार डाला। जब परशुरामजी लौटकर आये तो पिताको मारा गया देख उनके मनमें बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने इक्कीस बार समस्त भूमण्डलके क्षत्रियोंका संहार किया। फिर कुरुक्षेत्रमें पाँच कुण्ड बनाकर वहीं उन्होंने अपने पितरोंका तर्पण किया और सारी पृथ्वी कश्यप-मुनिको दान देकर वे महेन्द्र पर्वतपर रहने लगे। इस प्रकार कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन तथा परशुराम अवतारकी कथा सुनकर मनुष्य स्वर्गलोकमें जाता है ⁠।।⁠ १५—२१ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘वराह, नृसिंह, वामन तथा परशुरामावतारकी कथाका वर्णन’ नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ ४ ⁠।।

## पाँचवाँ अध्याय

### श्रीरामावतार-वर्णनके प्रसङ्गमें रामायण-बालकाण्डकी संक्षिप्त कथा

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं ठीक उसी प्रकार रामायणका वर्णन करूँगा, जैसे पूर्वकालमें नारदजीने महर्षि वाल्मीकिजीको सुनाया था। इसका पाठ भोग और मोक्ष—दोनोंको देनेवाला है ⁠।।⁠ १ ⁠।।

देवर्षि नारद कहते हैं—वाल्मीकिजी! भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्माजीके पुत्र हैं मरीचि। मरीचिसे कश्यप, कश्यपसे सूर्य और सूर्यसे वैवस्वतमनुका जन्म हुआ। उसके बाद वैवस्वतमनुसे इक्ष्वाकुकी उत्पत्ति हुई। इक्ष्वाकुके वंशमें ककुत्स्थ नामक राजा हुए। ककुत्स्थके रघु, रघुके अज और अजके पुत्र दशरथ हुए। उन राजा दशरथसे रावण आदि राक्षसोंका वध करनेके लिये साक्षात् भगवान् विष्णु चार रूपोंमें प्रकट हुए। उनकी बड़ी रानी कौसल्याके गर्भसे श्रीरामचन्द्रजीका प्रादुर्भाव हुआ। कैकेयीसे भरत और सुमित्रासे लक्ष्मण एवं शत्रुघ्नका जन्म हुआ। महर्षि ऋष्यशृङ्गने उन तीनों रानियोंको यज्ञसिद्ध चरु दिये थे, जिन्हें खानेसे इन चारों कुमारोंका आविर्भाव हुआ। श्रीराम आदि सभी भाई अपने पिताके ही समान पराक्रमी थे। एक समय मुनिवर विश्वामित्रने अपने यज्ञमें विघ्न डालनेवाले निशाचरोंका नाश करनेके लिये राजा दशरथसे प्रार्थना की (कि आप अपने पुत्र श्रीरामको मेरे साथ भेज दें)। तब राजाने मुनिके साथ श्रीराम और लक्ष्मणको भेज दिया। श्रीरामचन्द्रजीने वहाँ जाकर मुनिसे अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा पायी और ताड़का नामवाली निशाचरीका वध किया। फिर उन बलवान् वीरने मारीच नामक राक्षसको मानवास्त्रसे मोहित करके दूर फेंक दिया और यज्ञविघातक राक्षस सुबाहुको दल-बलसहित मार डाला। इसके बाद वे कुछ कालतक मुनिके सिद्धाश्रममें ही रहे। तत्पश्चात् विश्वामित्र आदि महर्षियोंके साथ लक्ष्मणसहित श्रीराम मिथिला-नरेशका धनुष-यज्ञ देखनेके लिये गये ⁠।।⁠ २—९ ⁠।।

[अपनी माता अहल्याके उद्धारकी वार्ता सुनकर संतुष्ट हुए][[1]](#footnote-1) शतानन्दजीने निमित्त-कारण बनकर श्रीरामसे विश्वामित्र मुनिके प्रभावका१ वर्णन किया। राजा जनकने अपने यज्ञमें मुनियोंसहित श्रीरामचन्द्रजीका पूजन किया। श्रीरामने धनुषको चढ़ा दिया और उसे अनायास ही तोड़ डाला। तदनन्तर महाराज जनकने अपनी अयोनिजा कन्या सीताको, जिसके विवाहके लिये पराक्रम ही शुल्क निश्चित किया गया था, श्रीरामचन्द्रजीको समर्पित किया। श्रीरामने भी अपने पिता राजा दशरथ आदि गुरुजनोंके मिथिलामें पधारनेपर सबके सामने सीताका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया। उस समय लक्ष्मणने भी मिथिलेश-कन्या उर्मिलाको अपनी पत्नी बनाया। राजा जनकके छोटे भाई कुशध्वज थे। उनकी दो कन्याएँ थीं—श्रुतकीर्ति और माण्डवी। इनमें माण्डवीके साथ भरतने और श्रुतकीर्तिके साथ शत्रुघ्नने विवाह किया। तदनन्तर राजा जनकसे भलीभाँति पूजित हो श्रीरामचन्द्रजीने वसिष्ठ आदि महर्षियोंके साथ वहाँसे प्रस्थान किया। मार्गमें जमदग्निनन्दन परशुरामको जीतकर वे अयोध्या पहुँचे। वहाँ जानेपर भरत और शत्रुघ्न अपने मामा राजा युधाजित्‌की राजधानीको चले गये ⁠।।⁠ १०—१५ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘श्रीरामायण-कथाके अन्तर्गत बालकाण्डमें आये हुए विषयका वर्णन’ सम्बन्धी पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ ५ ⁠।।

## छठा अध्याय

### अयोध्याकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—भरतके ननिहाल चले जानेपर [लक्ष्मणसहित] श्रीरामचन्द्रजी ही पिता-माता आदिके सेवा-सत्कारमें रहने लगे। एक दिन राजा दशरथने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—‘रघुनन्दन! मेरी बात सुनो। तुम्हारे गुणोंपर अनुरक्त हो प्रजाजनोंने मन-ही-मन तुम्हें राज-सिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया है—प्रजाकी यह हार्दिक इच्छा है कि तुम युवराज बनो; अतः कल प्रातःकाल मैं तुम्हें युवराजपद प्रदान कर दूँगा। आज रातमें तुम सीता-सहित उत्तम व्रतका पालन करते हुए संयमपूर्वक रहो।’ राजाके आठ मन्त्रियों तथा वसिष्ठजीने भी उनकी इस बातका अनुमोदन किया। उन आठ मन्त्रियोंके नाम इस प्रकार हैं—दृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, राज्यवर्धन, अशोक, धर्मपाल तथा सुमन्त्र[[2]](#footnote-2)। इनके अतिरिक्त वसिष्ठजी भी मन्त्रणा देते थे। पिता और मन्त्रियोंकी बातें सुनकर श्रीरघुनाथजीने ‘तथास्तु’ कहकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और माता कौसल्याको यह शुभ समाचार बताकर देवताओंकी पूजा करके वे संयममें स्थित हो गये। उधर महाराज दशरथ वसिष्ठ आदि मन्त्रियोंको यह कहकर कि ‘आपलोग श्रीरामचन्द्रके राज्याभिषेककी सामग्री जुटायें’, कैकेयीके भवनमें चले गये। कैकेयीके मन्थरा नामक एक दासी थी, जो बड़ी दुष्टा थी। उसने अयोध्याकी सजावट होती देख, श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेककी बात जानकर रानी कैकेयीसे सारा हाल कह सुनाया। एक बार किसी अपराधके कारण श्रीरामचन्द्रजीने मन्थराको उसके पैर पकड़कर घसीटा था। उसी वैरके कारण वह सदा यही चाहती थी कि रामका वनवास हो जाय ⁠।।⁠ १—८ ⁠।।

मन्थरा बोली—कैकेयी! तुम उठो, रामका राज्याभिषेक होने जा रहा है। यह तुम्हारे पुत्रके लिये, मेरे लिये और तुम्हारे लिये भी मृत्युके समान भयंकर वृत्तान्त है—इसमें कोई संदेह नहीं है ⁠।।⁠ ९ ⁠।।

मन्थरा कुबड़ी थी। उसकी बात सुनकर रानी कैकेयीको प्रसन्नता हुई। उन्होंने कुब्जाको एक आभूषण उतारकर दिया और कहा—‘मेरे लिये तो जैसे राम हैं, वैसे ही मेरे पुत्र भरत भी हैं। मुझे ऐसा कोई उपाय नहीं दिखायी देता, जिससे भरतको राज्य मिल सके।’ मन्थराने उस हारको फेंक दिया और कुपित होकर कैकेयीसे कहा ⁠।।⁠ १०-११ ⁠।।

मन्थरा बोली—ओ नादान! तू भरतको, अपनेको और मुझे भी रामसे बचा। कल राम राजा होंगे। फिर रामके पुत्रोंको राज्य मिलेगा। कैकेयी! अब राजवंश भरतसे दूर हो जायगा। [मैं भरतको राज्य दिलानेका एक उपाय बताती हूँ।] पहलेकी बात है। देवासुर-संग्राममें शम्बरासुरने देवताओंको मार भगाया था। तेरे स्वामी भी उस युद्धमें गये थे। उस समय तूने अपनी विद्यासे रातमें स्वामीकी रक्षा की थी। इसके लिये महाराजने तुझे दो वर देनेकी प्रतिज्ञा की थी। इस समय उन्हीं दोनों वरोंको उनसे माँग। एक वरके द्वारा रामका चौदह वर्षोंके लिये वनवास और दूसरेके द्वारा भरतका युवराजपदपर अभिषेक माँग ले। राजा इस समय वे दोनों वर दे देंगे ⁠।।⁠ १२—१५ ⁠।।

इस प्रकार मन्थराके प्रोत्साहन देनेपर कैकेयी अनर्थमें ही अर्थकी सिद्धि देखने लगी और बोली—‘कुब्जे! तूने बड़ा अच्छा उपाय बताया है। राजा मेरा मनोरथ अवश्य पूर्ण करेंगे।’ ऐसा कहकर वह कोपभवनमें चली गयी और पृथ्वीपर अचेत-सी होकर पड़ रही। उधर महाराज दशरथ ब्राह्मण आदिका पूजन करके जब कैकेयीके भवनमें आये तो उसे रोषमें भरी हुई देखा। तब राजाने पूछा—‘सुन्दरी! तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हो रही है? तुम्हें कोई रोग तो नहीं सता रहा है? अथवा किसी भयसे व्याकुल तो नहीं हो? बताओ, क्या चाहती हो? मैं अभी तुम्हारी इच्छा पूर्ण करता हूँ। जिन श्रीरामके बिना मैं क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता, उन्हींकी शपथ खाकर कहता हूँ, तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूर्ण करूँगा। सच-सच बताओ, क्या चाहती हो?’ कैकेयी बोली—‘राजन्! यदि आप मुझे कुछ देना चाहते हों, तो अपने सत्यकी रक्षाके लिये पहलेके दिये हुए दो वरदान देनेकी कृपा करें। मैं चाहती हूँ, राम चौदह वर्षोंतक संयमपूर्वक वनमें निवास करें और इन सामग्रियोंके द्वारा आज ही भरतका युवराजपदपर अभिषेक हो जाय। महाराज! यदि ये दोनों वरदान आप मुझे नहीं देंगे तो मैं विष पीकर मर जाऊँगी।’ यह सुनकर राजा दशरथ वज्रसे आहत हुएकी भाँति मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। फिर थोड़ी देरमें चेत होनेपर उन्होंने कैकेयीसे कहा ⁠।।⁠ १६—२३ ⁠।।

दशरथ बोले—पापपूर्ण विचार रखनेवाली कैकेयी! तू समस्त संसारका अप्रिय करनेवाली है। अरी! मैंने या रामने तेरा क्या बिगाड़ा है, जो तू मुझसे ऐसी बात कहती है? केवल तुझे प्रिय लगनेवाला यह कार्य करके मैं संसारमें भलीभाँति निन्दित हो जाऊँगा। तू मेरी स्त्री नहीं, कालरात्रि है। मेरा पुत्र भरत ऐसा नहीं है। पापिनी! मेरे पुत्रके चले जानेपर जब मैं मर जाऊँगा तो तू विधवा होकर राज्य करना ⁠।।⁠ २४-२५ ½ ⁠।।

राजा दशरथ सत्यके बन्धनमें बँधे थे। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको बुलाकर कहा—‘बेटा! कैकेयीने मुझे ठग लिया। तुम मुझे कैद करके राज्यको अपने अधिकारमें कर लो। अन्यथा तुम्हें वनमें निवास करना होगा और कैकेयीका पुत्र भरत राजा बनेगा।’ श्रीरामचन्द्रजीने पिता और कैकेयीको प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की और कौसल्याके चरणोंमें मस्तक झुकाकर उन्हें सान्त्वना दी। फिर लक्ष्मण और पत्नी सीताको साथ ले, ब्राह्मणों, दीनों और अनाथोंको दान देकर, सुमन्त्रसहित रथपर बैठकर वे नगरसे बाहर निकले। उस समय माता-पिता आदि शोकसे आतुर हो रहे थे। उस रातमें श्रीरामचन्द्रजीने तमसा नदीके तटपर निवास किया। उनके साथ बहुत-से पुरवासी भी गये थे। उन सबको सोते छोड़कर वे आगे बढ़ गये। प्रातःकाल होनेपर जब श्रीरामचन्द्रजी नहीं दिखायी दिये तो नगरनिवासी निराश होकर पुनः अयोध्या लौट आये। श्रीरामचन्द्रजीके चले जानेसे राजा दशरथ बहुत दुःखी हुए। वे रोते-रोते कैकेयीका महल छोड़कर कौसल्याके भवनमें चले आये। उस समय नगरके समस्त स्त्री-पुरुष और रनिवासकी स्त्रियाँ फूट-फूटकर रो रही थीं। श्रीरामचन्द्रजीने चीरवस्त्र धारण कर रखा था। वे रथपर बैठे-बैठे शृङ्गवेरपुर जा पहुँचे। वहाँ निषादराज गुहने उनका पूजन, स्वागत-सत्कार किया। श्रीरघुनाथजीने इङ्गुदी-वृक्षकी जड़के निकट विश्राम किया। लक्ष्मण और गुह दोनों रातभर जागकर पहरा देते रहे ⁠।।⁠ २६—३३ ⁠।।

प्रातःकाल श्रीरामने रथसहित सुमन्त्रको विदा कर दिया तथा स्वयं लक्ष्मण और सीताके साथ नावसे गङ्गा-पार हो वे प्रयागमें गये। वहाँ उन्होंने महर्षि भरद्वाजको प्रणाम किया और उनकी आज्ञा ले वहाँसे चित्रकूट पर्वतको प्रस्थान किया। चित्रकूट पहुँचकर उन्होंने वास्तुपूजा करनेके अनन्तर (पर्णकुटी बनाकर) मन्दाकिनीके तटपर निवास किया। रघुनाथजीने सीताको चित्रकूट पर्वतका रमणीय दृश्य दिखलाया। इसी समय एक कौएने सीताजीके कोमल श्रीअङ्गमें नखोंसे प्रहार किया। यह देख श्रीरामने उसके ऊपर सींकके अस्त्रका प्रयोग किया। जब वह कौआ देवताओंका आश्रय छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें आया, तब उन्होंने उसकी केवल एक आँख नष्ट करके उसे जीवित छोड़ दिया। श्रीरामचन्द्रजीके वनगमनके पश्चात् छठे दिनकी रातमें राजा दशरथने कौसल्यासे पहलेकी एक घटना सुनायी, जिसमें उनके द्वारा कुमारावस्थामें सरयूके तटपर अनजानमें यज्ञदत्त-पुत्र श्रवणकुमारके मारे जानेका वृत्तान्त था। “श्रवणकुमार पानी लेनेके लिये आया था। उस समय उसके घड़ेके भरनेसे जो शब्द हो रहा था, उसकी आहट पाकर मैंने उसे कोई जंगली जन्तु समझा और शब्दवेधी बाणसे उसका वध कर डाला। यह समाचार पाकर उसके पिता और माताको बड़ा शोक हुआ। वे बारंबार विलाप करने लगे। उस समय श्रवणकुमारके पिताने मुझे शाप देते हुए कहा—‘राजन्! हम दोनों पति-पत्नी पुत्रके बिना शोकातुर होकर प्राणत्याग कर रहे हैं; तुम भी हमारी ही तरह पुत्रवियोगके शोकसे मरोगे; [तुम्हारे पुत्र मरेंगे तो नहीं, किंतु] उस समय तुम्हारे पास कोई पुत्र मौजूद न होगा।’ कौसल्ये! आज उस शापका मुझे स्मरण हो रहा है। जान पड़ता है, अब इसी शोकसे मेरी मृत्यु होगी।” इतनी कथा कहनेके पश्चात् राजाने ‘हा राम!’ कहकर स्वर्गलोकको प्रयाण किया। कौसल्याने समझा, महाराज शोकसे आतुर हैं; इस समय नींद आ गयी होगी। ऐसा विचार करके वे सो गयीं। प्रातःकाल जगानेवाले सूत, मागध और बन्दीजन सोते हुए महाराजको जगाने लगे; किंतु वे न जगे ⁠।।⁠ ३४—४२ ⁠।।

तब उन्हें मरा हुआ जान रानी कौसल्या ‘हाय! मैं मारी गयी’ कहकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं। फिर तो समस्त नर-नारी फूट-फूटकर रोने लगे। तत्पश्चात् महर्षि वसिष्ठने राजाके शवको तैलभरी नौकामें रखवाकर भरतको उनके ननिहालसे तत्काल बुलवाया। भरत और शत्रुघ्न अपने मामाके राजमहलसे निकलकर सुमन्त्र आदिके साथ शीघ्र ही अयोध्यापुरीमें आये। यहाँका समाचार जानकर भरतको बड़ा दुःख हुआ। कैकेयीको शोक करती देख उसकी कठोर शब्दोंमें निन्दा करते हुए बोले—‘अरी! तूने मेरे माथे कलङ्कका टीका लगा दिया—मेरे सिरपर अपयशका भारी बोझ लाद दिया।’ फिर उन्होंने कौसल्याकी प्रशंसा करके तैलपूर्ण नौकामें रखे हुए पिताके शवका सरयूतटपर अन्त्यष्टि-संस्कार किया। तदनन्तर वसिष्ठ आदि गुरुजनोंने कहा—‘भरत! अब राज्य ग्रहण करो।’ भरत बोले—‘मैं तो श्रीरामचन्द्रजीको ही राजा मानता हूँ। अब उन्हें यहाँ लानेके लिये वनमें जाता हूँ।’ ऐसा कहकर वे वहाँसे दल-बलसहित चल दिये और शृङ्गवेरपुर होते हुए प्रयाग पहुँचे। वहाँ महर्षि भरद्वाजने उन सबको भोजन कराया। फिर भरद्वाजको नमस्कार करके वे प्रयागसे चले और चित्रकूटमें श्रीराम एवं लक्ष्मणके समीप आ पहुँचे। वहाँ भरतने श्रीरामसे कहा—‘रघुनाथजी! हमारे पिता महाराज दशरथ स्वर्गवासी हो गये। अब आप अयोध्यामें चलकर राज्य ग्रहण करें। मैं आपकी आज्ञाका पालन करते हुए वनमें जाऊँगा।’ यह सुनकर श्रीरामने पिताका तर्पण किया और भरतसे कहा—‘तुम मेरी चरणपादुका लेकर अयोध्या लौट जाओ। मैं राज्य करनेके लिये नहीं चलूँगा। पिताके सत्यकी रक्षाके लिये चीर एवं जटा धारण करके वनमें ही रहूँगा।’ श्रीरामके ऐसा कहनेपर सदल-बल भरत लौट गये और अयोध्या छोड़कर नन्दिग्राममें रहने लगे। वहाँ भगवान्‌की चरण-पादुकाओंकी पूजा करते हुए वे राज्यका भली-भाँति पालन करने लगे ⁠।।⁠ ४३—५१ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘रामायण-कथाके अन्तर्गत अयोध्याकाण्डकी कथाका वर्णन’ नामक छठा अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ ६ ⁠।।

## सातवाँ अध्याय

### अरण्यकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—मुने! श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि वसिष्ठ तथा माताओंको प्रणाम करके उन सबको भरतके साथ विदा कर दिया। तत्पश्चात् महर्षि अत्रि तथा उनकी पत्नी अनसूयाको, शरभङ्गमुनिको, सुतीक्ष्णको तथा अगस्त्यजीके भ्राता अग्निजिह्व मुनिको प्रणाम करते हुए श्रीरामचन्द्रजीने अगस्त्यमुनिके आश्रमपर जा उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और मुनिकी कृपासे दिव्य धनुष एवं दिव्य खड्ग प्राप्त करके वे दण्डकारण्यमें आये। वहाँ जनस्थानके भीतर पञ्चवटी नामक स्थानमें गोदावरीके तटपर रहने लगे। एक दिन शूर्पणखा नामवाली भयंकर राक्षसी राम, लक्ष्मण और सीताको खा जानेके लिये पञ्चवटीमें आयी; किंतु श्रीरामचन्द्रजीका अत्यन्त मनोहर रूप देखकर वह कामके अधीन हो गयी और बोली ⁠।।⁠ १—४ ⁠।।

शूर्पणखाने कहा—तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? मेरी प्रार्थनासे अब तुम मेरे पति हो जाओ। यदि मेरे साथ तुम्हारा सम्बन्ध होनेमें ये दोनों सीता और लक्ष्मण बाधक हैं तो मैं इन दोनोंको अभी खाये लेती हूँ ⁠।।⁠ ५ ⁠।।

ऐसा कहकर वह उन्हें खा जानेको तैयार हो गयी। तब श्रीरामचन्द्रजीके कहनेसे लक्ष्मणने शूर्पणखाकी नाक और दोनों कान भी काट लिये। कटे हुए अङ्गोंसे रक्तकी धारा बहाती हुई शूर्पणखा अपने भाई खरके पास गयी और इस प्रकार बोली—‘खर! मेरी नाक कट गयी। इस अपमानके बाद मैं जीवित नहीं रह सकती। अब तो मेरा जीवन तभी रह सकता है, जब कि तुम मुझे रामका, उनकी पत्नी सीताका तथा उनके छोटे भाई लक्ष्मणका गरम-गरम रक्त पिलाओ।’ खरने उसको ‘बहुत अच्छा’ कहकर शान्त किया और दूषण तथा त्रिशिराके साथ चौदह हजार राक्षसोंकी सेना ले श्रीरामचन्द्रजीपर चढ़ाई की। श्रीरामने भी उन सबका सामना किया और अपने बाणोंसे राक्षसोंको बींधना आरम्भ किया। शत्रुओंकी हाथी, घोड़े, रथ और पैदलसहित समस्त चतुरङ्गिणी सेनाको उन्होंने यमलोक पहुँचा दिया तथा अपने साथ युद्ध करनेवाले भयंकर राक्षस खर, दूषण एवं त्रिशिराको भी मौतके घाट उतार दिया। अब शूर्पणखा लङ्कामें गयी और रावणके सामने जा पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसने क्रोधमें भरकर रावणसे कहा—‘अरे! तू राजा और रक्षक कहलानेयोग्य नहीं है। खर आदि समस्त राक्षसोंका संहार करनेवाले रामकी पत्नी सीताको हर ले। मैं राम और लक्ष्मणका रक्त पीकर ही जीवित रहूँगी; अन्यथा नहीं’ ⁠।।⁠ ६—१२ ⁠।।

शूर्पणखाकी बात सुनकर रावणने कहा—‘अच्छा, ऐसा ही होगा।’ फिर उसने मारीचसे कहा—‘तुम स्वर्णमय विचित्र मृगका रूप धारन करके सीताके सामने जाओ और राम तथा लक्ष्मणको अपने पीछे आश्रमसे दूर हटा ले जाओ। मैं सीताका हरण करूँगा। यदि मेरी बात न मानोगे, तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है।’ मारीचने रावणसे कहा—‘रावण! धनुर्धर राम साक्षात् मृत्यु हैं।’ फिर उसने मन-ही-मन सोचा—‘यदि नहीं जाऊँगा, तो रावणके हाथसे मरना होगा और जाऊँगा तो श्रीरामके हाथसे। इस प्रकार यदि मरना अनिवार्य है तो इसके लिये श्रीराम ही श्रेष्ठ हैं, रावण नहीं; [क्योंकि श्रीरामके हाथसे मृत्यु होनेपर मेरी मुक्ति हो जायगी।] ऐसा विचारकर वह मृगरूप धारण करके सीताके सामने बारंबार आने-जाने लगा। तब सीताजीकी प्रेरणासे श्रीरामने [दूरतक उसका पीछा करके] उसे अपने बाणसे मार डाला। मरते समय उस मृगने ‘हा सीते! हा लक्ष्मण!’ कहकर पुकार लगायी। उस समय सीताके कहनेसे लक्ष्मण अपनी इच्छाके विरुद्ध श्रीरामचन्द्रजीके पास गये। इसी बीचमें रावणने भी मौका पाकर सीताको हर लिया। मार्गमें जाते समय उसने गृध्रराज जटायुका वध किया। जटायुने भी उसके रथको नष्ट कर डाला था। रथ न रहनेपर रावणने सीताको कंधेपर बिठा लिया और उन्हें लङ्कामें ले जाकर अशोकवाटिकामें रखा। वहाँ सीतासे बोला—‘तुम मेरी पटरानी बन जाओ।’ फिर राक्षसियोंकी ओर देखकर कहा—‘निशाचरियो! इसकी रखवाली करो’ ⁠।।⁠ १३—१९ ⁠।।

उधर श्रीरामचन्द्रजी जब मारीचको मारकर लौटे, तो लक्ष्मणको आते देख बोले—‘सुमित्रानन्दन! वह मृग तो मायामय था—वास्तवमें वह एक राक्षस था; किंतु तुम जो इस समय यहाँ आ गये, इससे जान पड़ता है, निश्चय ही कोई सीताको हर ले गया।’ श्रीरामचन्द्रजी आश्रमपर गये; किंतु वहाँ सीता नहीं दिखायी दीं। उस समय वे आर्त होकर शोक और विलाप करने लगे—‘हा प्रिये जानकी! तू मुझे छोड़कर कहाँ चली गयी?’ लक्ष्मणने श्रीरामको सान्त्वना दी। तब वे वनमें घूम-घूम सीताकी खोज करने लगे। इसी समय इनकी जटायुसे भेंट हुई। जटायुने यह कहकर कि ‘सीताको रावण हर ले गया है’ प्राण त्याग दिया। तब श्रीरघुनाथजीने अपने हाथसे जटायुका दाह-संस्कार किया। इसके बाद इन्होंने कबन्धका वध किया। कबन्धने शापमुक्त होनेपर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—‘आप सुग्रीवसे मिलिये’ ⁠।।⁠ २०—२४ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘रामायण-कथाके अन्तर्गत अरण्यकाण्डकी कथाका वर्णन’-विषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ ७ ⁠।।

## आठवाँ अध्याय

### किष्किन्धाकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—श्रीरामचन्द्रजी पम्पा-सरोवरपर जाकर सीताके लिये शोक करने लगे। वहाँ वे शबरीसे मिले। फिर हनुमान्‌जीसे उनकी भेंट हुई। हनुमान्‌जी उन्हें सुग्रीवके पास ले गये और सुग्रीवके साथ उनकी मित्रता करायी। श्रीरामचन्द्रजीने सबके देखते-देखते ताड़के सात वृक्षोंको एक ही बाणसे बींध डाला और दुन्दुभि नामक दानवके विशाल शरीरको पैरकी ठोकरसे दस योजन दूर फेंक दिया। इसके बाद सुग्रीवके शत्रु वालीको, जो भाई होते हुए भी उनके साथ वैर रखता था, मार डाला और किष्किन्धापुरी, वानरोंका साम्राज्य, रुमा एवं तारा—इन सबको ऋष्यमूक पर्वतपर वानरराज सुग्रीवके अधीन कर दिया। तदनन्तर किष्किन्धापुरीके स्वामी सुग्रीवने कहा—‘श्रीराम! आपको सीताजीकी प्राप्ति जिस प्रकार भी हो सके, ऐसा उपाय मैं कर रहा हूँ।’ यह सुननेके बाद श्रीरामचन्द्रजीने माल्यवान् पर्वतके शिखरपर वर्षाके चार महीने व्यतीत किये और सुग्रीव किष्किन्धामें रहने लगे। चौमासेके बाद भी जब सुग्रीव दिखायी नहीं दिये, तब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मणने किष्किन्धामें जाकर कहा—‘सुग्रीव! तुम श्रीरामचन्द्रजीके पास चलो। अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहो, नहीं तो वाली मरकर जिस मार्गसे गया है, वह मार्ग अभी बंद नहीं हुआ है। अतएव वालीके पथका अनुसरण न करो।’ सुग्रीवने कहा—‘सुमित्रानन्दन! विषयभोगमें आसक्त हो जानेके कारण मुझे बीते हुए समयका भान न रहा। [अतः मेरे अपराधको क्षमा कीजिये]’ ⁠।।⁠ १—७ ⁠।।

ऐसा कहकर वानरराज सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीके पास गये और उन्हें नमस्कार करके बोले—‘भगवन्! मैंने सब वानरोंको बुला लिया है। अब आपकी इच्छाके अनुसार सीताजीकी खोज करनेके लिये उन्हें भेजूँगा। वे पूर्वादि दिशाओंमें जाकर एक महीनेतक सीताजीकी खोज करें। जो एक महीनेके बाद लौटेगा, उसे मैं मार डालूँगा।’ यह सुनकर बहुत-से वानर पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशाओंके मार्गपर चल पड़े तथा वहाँ जनककुमारी सीताको न पाकर नियत समयके भीतर श्रीराम और सुग्रीवके पास लौट आये। हनुमान्‌जी श्रीरामचन्द्रजीकी दी हुई अँगूठी लेकर अन्य वानरोंके साथ दक्षिण दिशामें जानकीजीकी खोज कर रहे थे। वे लोग सुप्रभाकी गुफाके निकट विन्ध्यपर्वतपर ही एक माससे अधिक कालतक ढूँढ़ते फिरे; किंतु उन्हें सीताजीका दर्शन नहीं हुआ। अन्तमें निराश होकर आपसमें कहने लगे—‘हमलोगोंको व्यर्थ ही प्राण देने पड़ेंगे। धन्य है वह जटायु, जिसने सीताके लिये रावणके द्वारा मारा जाकर युद्धमें प्राण त्याग दिया था’ ⁠।।⁠ ८—१३ ⁠।।

उनकी ये बातें सम्पाति नामक गृध्रके कानोंमें पड़ीं। वह वानरोंके (प्राणत्यागकी चर्चासे उनके) खानेकी ताकमें लगा था। किंतु जटायुकी चर्चा सुनकर रुक गया और बोला—‘वानरो! जटायु मेरा भाई था। वह मेरे ही साथ सूर्यमण्डलकी ओर उड़ा चला जा रहा था। मैंने अपनी पाँखोंकी ओटमें रखकर सूर्यकी प्रखर किरणोंके तापसे उसे बचाया। अतः वह तो सकुशल बच गया; किंतु मेरी पाँखें जल गयीं, इसलिये मैं यहीं गिर पड़ा। आज श्रीरामचन्द्रजीकी वार्ता सुननेसे फिर मेरे पंख निकल आये। अब मैं जानकीको देखता हूँ; वे लङ्कामें अशोक-वाटिकाके भीतर हैं। लवणसमुद्रके द्वीपमें त्रिकूट पर्वतपर लङ्का बसी हुई है। यहाँसे वहाँतकका समुद्र सौ योजन विस्तृत है। यह जानकर सब वानर श्रीराम और सुग्रीवके पास जायँ और उन्हें सब समाचार बता दें’ ⁠।।⁠ १४—१७ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘रामायण-कथाके अन्तर्गत किष्किन्धाकाण्डकी कथाका वर्णन’ नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ ८ ⁠।।

## नवाँ अध्याय

### सुन्दरकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—सम्पातिकी बात सुनकर हनुमान् और अङ्गद आदि वानरोंने समुद्रकी ओर देखा। फिर वे कहने लगे—‘कौन समुद्रको लाँघकर समस्त वानरोंको जीवन-दान देगा?’ वानरोंकी जीवन-रक्षा और श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी प्रकृष्ट सिद्धिके लिये पवनकुमार हनुमान्‌जी सौ योजन विस्तृत समुद्रको लाँघ गये। लाँघते समय अवलम्बन देनेके लिये समुद्रसे मैनाक पर्वत उठा। हनुमान्‌जीने दृष्टिमात्रसे उसका सत्कार किया। फिर [छायाग्राहिणी] सिंहिकाने सिर उठाया। [वह उन्हें अपना ग्रास बनाना चाहती थी, इसलिये] हनुमान्‌जीने उसे मार गिराया। समुद्रके पार जाकर उन्होंने लङ्कापुरी देखी। राक्षसोंके घरोंमें खोज की; रावणके अन्तःपुरमें तथा कुम्भ, कुम्भकर्ण, विभीषण, इन्द्रजित् तथा अन्य राक्षसोंके गृहोंमें जा-जाकर तलाश की; मद्यपानके स्थानों आदिमें भी चक्कर लगाया; किंतु कहीं भी सीता उनकी दृष्टिमें नहीं पड़ीं। अब वे बड़ी चिन्तामें पड़े। अन्तमें जब अशोकवाटिकाकी ओर गये तो वहाँ शिंशपा-वृक्षके नीचे सीताजी उन्हें बैठी दिखायी दीं। वहाँ राक्षसियाँ उनकी रखवाली कर रही थीं। हनुमान्‌जीने शिंशपा-वृक्षपर चढ़कर देखा। रावण सीताजीसे कह रहा था—‘तू मेरी स्त्री हो जा’; किंतु वे स्पष्ट शब्दोंमें ‘ना’ कर रही थीं। वहाँ बैठी हुई राक्षसियाँ भी यही कहती थीं—‘तू रावणकी स्त्री हो जा।’ जब रावण चला गया तो हनुमान्‌जीने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—‘अयोध्यामें दशरथ नामवाले एक राजा थे। उनके दो पुत्र राम और लक्ष्मण वनवासके लिये गये। वे दोनों भाई श्रेष्ठ पुरुष हैं। उनमें श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी जनककुमारी सीता तुम्हीं हो। रावण तुम्हें बलपूर्वक हर ले आया है। श्रीरामचन्द्रजी इस समय वानरराज सुग्रीवके मित्र हो गये हैं। उन्होंने तुम्हारी खोज करनेके लिये ही मुझे भेजा है। पहचानके लिये गूढ़ संदेशके साथ श्रीरामचन्द्रजीने अँगूठी दी है। उनकी दी हुई यह अँगूठी ले लो’ ⁠।।⁠ १—९ ⁠।।

सीताजीने अँगूठी ले ली। उन्होंने वृक्षपर बैठे हुए हनुमान्‌जीको देखा। फिर हनुमान्‌जी वृक्षसे उतरकर उनके सामने आ बैठे, तब सीताने उनसे कहा—‘यदि श्रीरघुनाथजी जीवित हैं तो वे मुझे यहाँसे ले क्यों नहीं जाते?’ इस प्रकार शङ्का करती हुई सीताजीसे हनुमान्‌जीने इस प्रकार कहा—‘देवि सीते! तुम यहाँ हो, यह बात श्रीरामचन्द्रजी नहीं जानते। मुझसे यह समाचार जान लेनेके पश्चात् सेनासहित राक्षस रावणको मारकर वे तुम्हें अवश्य ले जायँगे। तुम चिन्ता न करो। मुझे कोई अपनी पहचान दो।’ तब सीताजीने हनुमान्‌जीको अपनी चूड़ामणि उतारकर दे दी और कहा—‘भैया! अब ऐसा उपाय करो, जिससे श्रीरघुनाथजी शीघ्र आकर मुझे यहाँसे ले चलें। उन्हें कौएकी आँख नष्ट कर देनेवाली घटनाका स्मरण दिलाना; [आज यहीं रहो] कल सबेरे चले जाना; तुम मेरा शोक दूर करनेवाले हो। तुम्हारे आनेसे मेरा दुःख बहुत कम हो गया है।’ चूड़ामणि और काकवाली कथाको पहचानके रूपमें लेकर हनुमान्‌जीने कहा—‘कल्याणि! तुम्हारे पतिदेव अब तुम्हें शीघ्र ही ले जायँगे। अथवा यदि तुम्हें चलनेकी जल्दी हो, तो मेरी पीठपर बैठ जाओ। मैं आज ही तुम्हें श्रीराम और सुग्रीवके दर्शन कराऊँगा।’ सीता बोलीं—‘नहीं, श्रीरघुनाथजी ही आकर मुझे ले जायँ’ ⁠।।⁠ १०—१५ ⁠।।

तदनन्तर हनुमान्‌जीने रावणसे मिलनेकी युक्ति सोच निकाली। उन्होंने रक्षकोंको मारकर उस वाटिकाको उजाड़ डाला। फिर दाँत और नख आदि आयुधोंसे वहाँ आये हुए रावणके समस्त सेवकोंको मारकर सात मन्त्रिकुमारों तथा रावणपुत्र अक्षयकुमारको भी यमलोक पहुँचा दिया। तत्पश्चात् इन्द्रजित्‌ने आकर उन्हें नागपाशसे बाँध लिया और उन वानरवीरको रावणके पास ले जाकर उससे मिलाया। उस समय रावणने पूछा—‘तू कौन है?’ तब हनुमान्‌जीने रावणको उत्तर दिया—‘मैं श्रीरामचन्द्रजीका दूत हूँ। तुम श्रीसीताजीको श्रीरघुनाथजीकी सेवामें लौटा दो; अन्यथा लङ्कानिवासी समस्त राक्षसोंके साथ तुम्हें श्रीरामके बाणोंसे घायल होकर निश्चय ही मरना पड़ेगा।’ यह सुनकर रावण हनुमान्‌जीको मारनेके लिये उद्यत हो गया; किंतु विभीषणने उसे रोक दिया। तब रावणने उनकी पूँछमें आग लगा दी। पूँछ जल उठी। यह देख पवनपुत्र हनुमान्‌जीने राक्षसोंकी पुरी लङ्काको जला डाला और सीताजीका पुनः दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया। फिर समुद्रके पार आकर अङ्गद आदिसे कहा—‘मैंने सीताजीका दर्शन कर लिया है।’ तत्पश्चात् अङ्गद आदिके साथ सुग्रीवके मधुवनमें आकर, दधिमुख आदि रक्षकोंको परास्त करके, मधुपान करनेके अनन्तर वे सब लोग श्रीरामचन्द्रजीके पास आये और बोले—‘सीताजीका दर्शन हो गया।’ श्रीरामचन्द्रजीने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर हनुमान्‌जीसे पूछा— ⁠।।⁠ १६—२४ ⁠।।

श्रीरामचन्द्रजी बोले—कपिवर! तुम्हें सीताका दर्शन कैसे हुआ? उसने मेरे लिये क्या संदेश दिया है? मैं विरहकी आगमें जल रहा हूँ। तुम सीताकी अमृतमयी कथा सुनाकर मेरा संताप शान्त करो ⁠।।⁠ २५ ⁠।।

नारदजी कहते हैं—यह सुनकर हनुमान्‌जीने रघुनाथजीसे कहा—‘भगवन्! मैं समुद्र लाँघकर लङ्कामें गया था। वहाँ सीताजीका दर्शन करके, लङ्कापुरीको जलाकर यहाँ आ रहा हूँ। यह सीताजीकी दी हुई चूड़ामणि लीजिये। आप शोक न करें; रावणका वध करनेके पश्चात् निश्चय ही आपको सीताजीकी प्राप्ति होगी।’ श्रीरामचन्द्रजी उस मणिको हाथमें ले, विरहसे व्याकुल होकर रोने लगे और बोले—‘इस मणिको देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानो मैंने सीताको ही देख लिया। अब मुझे सीताके पास ले चलो; मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकता।’ उस समय सुग्रीव आदिने श्रीरामचन्द्रजीको समझा-बुझाकर शान्त किया। तदनन्तर श्रीरघुनाथजी समुद्रके तटपर गये। वहाँ उनसे विभीषण आकर मिले। विभीषणके भाई दुरात्मा रावणने उनका तिरस्कार किया था। विभीषणने इतना ही कहा था कि ‘भैया! आप सीताको श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें समर्पित कर दीजिये।’ इसी अपराधके कारण उसने इन्हें ठुकरा दिया था। अब वे असहाय थे। श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणको अपना मित्र बनाया और लङ्काके राजपदपर अभिषिक्त कर दिया। इसके बाद श्रीरामने समुद्रसे लङ्का जानेके लिये रास्ता माँगा। जब उसने मार्ग नहीं दिया तो उन्होंने बाणोंसे उसे बींध डाला। अब समुद्र भयभीत होकर श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर बोला—‘भगवन्! नलके द्वारा मेरे ऊपर पुल बँधाकर आप लङ्कामें जाइये। पूर्वकालमें आपहीने मुझे गहरा बनाया था।’ यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने नलके द्वारा वृक्ष और शिलाखण्डोंसे एक पुल बँधवाया और उसीसे वे वानरोंसहित समुद्रके पार गये। वहाँ सुवेल पर्वतपर पड़ाव डालकर वहींसे उन्होंने लङ्कापुरीका निरीक्षण किया ⁠।।⁠ २६—३३ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘रामायण-कथाके अन्तर्गत सुन्दरकाण्डकी कथाका वर्णन’ नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ ९ ⁠।।

## दसवाँ अध्याय

### युद्धकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीके आदेशसे अङ्गद रावणके पास गये और बोले—‘रावण! तुम जनककुमारी सीताको ले जाकर शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजीको सौंप दो। अन्यथा मारे जाओगे।’ यह सुनकर रावण उन्हें मारनेको तैयार हो गया। अङ्गद राक्षसोंको मार-पीटकर लौट आये और श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—‘भगवन्! रावण केवल युद्ध करना चाहता है।’ अङ्गदकी बात सुनकर श्रीरामने वानरोंकी सेना साथ ले युद्धके लिये लङ्कामें प्रवेश किया। हनुमान्, मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, नल, नील, तार, अङ्गद, धूम्र, सुषेण, केसरी, गज, पनस, विनत, रम्भ, शरभ, महाबली कम्पन, गवाक्ष, दधिमुख, गवय और गन्धमादन—ये सब तो वहाँ आये ही, अन्य भी बहुत-से वानर आ पहुँचे। इन असंख्य वानरोंसहित [कपिराज] सुग्रीव भी युद्धके लिये उपस्थित थे। फिर तो राक्षसों और वानरोंमें घमासान युद्ध छिड़ गया। राक्षस वानरोंको बाण, शक्ति और गदा आदिके द्वारा मारने लगे और वानर नख, दाँत एवं शिला आदिके द्वारा राक्षसोंका संहार करने लगे। राक्षसोंकी हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे युक्त चतुरङ्गिणी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गयी। हनुमान्‌ने पर्वतशिखरसे अपने वैरी धूम्राक्षका वध कर डाला। नीलने भी युद्धके लिये सामने आये हुए अकम्पन और प्रहस्तको मौतके घाट उतार दिया ⁠।।⁠ १—८ ⁠।।

श्रीराम और लक्ष्मण यद्यपि इन्द्रजित्‌के नागास्त्रसे बँध गये थे, तथापि गरुड़की दृष्टि पड़ते ही उससे मुक्त हो गये। तत्पश्चात् उन दोनों भाइयोंने बाणोंसे राक्षसी सेनाका संहार आरम्भ किया। श्रीरामने रावणको युद्धमें अपने बाणोंकी मारसे जर्जरित कर डाला। इससे दुःखित होकर रावणने कुम्भकर्णको सोतेसे जगाया। जागनेपर कुम्भकर्णने हजार घड़े मदिरा पीकर कितने ही भैंस आदि पशुओंका भक्षण किया। फिर रावणसे कुम्भकर्ण बोला—‘सीताका हरण करके तुमने पाप किया है। तुम मेरे बड़े भाई हो, इसीलिये तुम्हारे कहनेसे युद्ध करने जाता हूँ। मैं वानरोंसहित रामको मार डालूँगा’ ⁠।।⁠ ९—१२ ⁠।।

ऐसा कहकर कुम्भकर्णने समस्त वानरोंको कुचलना आरम्भ किया। एक बार उसने सुग्रीवको पकड़ लिया, तब सुग्रीवने उसकी नाक और कान काट लिये। नाक और कानसे रहित होकर वह वानरोंका भक्षण करने लगा। यह देख श्रीरामचन्द्रजीने अपने बाणोंसे कुम्भकर्णकी दोनों भुजाएँ काट डालीं। इसके बाद उसके दोनों पैर तथा मस्तक काटकर उसे पृथ्वीपर गिरा दिया। तदनन्तर कुम्भ, निकुम्भ, राक्षस मकराक्ष, महोदर, महापार्श्व, मत्त, राक्षसश्रेष्ठ उन्मत्त, प्रघस, भासकर्ण, विरूपाक्ष, देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिरा और अतिकाय युद्धमें कूद पड़े। तब इनको तथा और भी बहुत-से युद्धपरायण राक्षसोंको श्रीराम, लक्ष्मण, विभीषण एवं वानरोंने पृथ्वीपर सुला दिया। तत्पश्चात् इन्द्रजित् (मेघनाद)-ने मायासे युद्ध करते हुए वरदानमें प्राप्त हुए नागपाशद्वारा श्रीराम और लक्ष्मणको बाँध लिया। उस समय हनुमान्‌जीके द्वारा लाये हुए पर्वतपर उगी हुई ‘विशल्या’ नामकी ओषधिसे श्रीराम और लक्ष्मणके घाव अच्छे हुए। उनके शरीरसे बाण निकाल दिये गये। हनुमान्‌जी पर्वतको जहाँसे लाये थे, वहीं उसे पुनः रख आये। इधर मेघनाद निकुम्भिलादेवीके मन्दिरमें होम आदि करने लगा। उस समय लक्ष्मणने अपने बाणोंसे इन्द्रको भी परास्त कर देनेवाले उस वीरको युद्धमें मार गिराया। पुत्रकी मृत्युका समाचार पाकर रावण शोकसे संतप्त हो उठा और सीताको मार डालनेके लिये उद्यत हो उठा; किंतु अविन्ध्यके मना करनेसे वह मान गया और रथपर बैठकर सेनासहित युद्धभूमिमें गया। तब इन्द्रके आदेशसे मातलिने आकर श्रीरघुनाथजीको भी देवराज इन्द्रके रथपर बिठाया ⁠।।⁠ १३—२२ ⁠।।

श्रीराम और रावणका युद्ध श्रीराम और रावणके युद्धके ही समान था—उसकी कहीं भी दूसरी कोई उपमा नहीं थी। रावण वानरोंपर प्रहार करता था और हनुमान् आदि वानर रावणको चोट पहुँचाते थे। जैसे मेघ पानी बरसाता है, उसी प्रकार श्रीरघुनाथजीने रावणके ऊपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। उन्होंने रावणके रथ, ध्वज, अश्व, सारथि, धनुष, बाहु और मस्तक काट डाले। काटे हुए मस्तकोंके स्थानपर दूसरे नये मस्तक उत्पन्न हो जाते थे। यह देखकर श्रीरामचन्द्रजीने ब्रह्मास्त्रके द्वारा रावणका वक्षःस्थल विदीर्ण करके उसे रणभूमिमें गिरा दिया। उस समय [मरनेसे बचे हुए सब] राक्षसोंके साथ रावणकी अनाथा स्त्रियाँ विलाप करने लगीं। तब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे विभीषणने उन सबको सान्त्वना दे, रावणके शवका दाह-संस्कार किया। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने हनुमान्‌जीके द्वारा सीताजीको बुलवाया। यद्यपि वे स्वरूपसे ही नित्य शुद्ध थीं, तो भी उन्होंने अग्निमें प्रवेश करके अपनी विशुद्धताका परिचय दिया। तत्पश्चात् रघुनाथजीने उन्हें स्वीकार किया। इसके बाद इन्द्रादि देवताओंने उनका स्तवन किया। फिर ब्रह्माजी तथा स्वर्गवासी महाराज दशरथने आकर स्तुति करते हुए कहा—‘श्रीराम! तुम राक्षसोंका संहार करनेवाले साक्षात् श्रीविष्णु हो।’ फिर श्रीरामके अनुरोधसे इन्द्रने अमृत बरसाकर मरे हुए वानरोंको जीवित कर दिया। समस्त देवता युद्ध देखकर, श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा पूजित हो, स्वर्गलोकमें चले गये। श्रीरामचन्द्रजीने लङ्काका राज्य विभीषणको दे दिया और वानरोंका विशेष सम्मान किया ⁠।।⁠ २३—२९ ⁠।।

फिर सबको साथ ले, सीतासहित पुष्पक विमानपर बैठकर श्रीराम जिस मार्गसे आये थे, उसीसे लौट चले। मार्गमें वे सीताको प्रसन्नचित्त होकर वनों और दुर्गम स्थानोंको दिखाते जा रहे थे। प्रयागमें महर्षि भरद्वाजको प्रणाम करके वे अयोध्याके पास नन्दिग्राममें आये। वहाँ भरतने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर वे अयोध्यामें आकर वहीं रहने लगे। सबसे पहले उन्होंने महर्षि वसिष्ठ आदिको नमस्कार करके क्रमशः कौसल्या, कैकेयी और सुमित्राके चरणोंमें मस्तक झुकाया। फिर राज्य-ग्रहण करके ब्राह्मणों आदिका पूजन किया। अश्वमेध-यज्ञ करके उन्होंने अपने आत्मस्वरूप श्रीवासुदेवका यजन किया, सब प्रकारके दान दिये और प्रजाजनोंका पुत्रवत् पालन करने लगे। उन्होंने धर्म और कामादिका भी सेवन किया तथा वे दुष्टोंको सदा दण्ड देते रहे। उनके राज्यमें सब लोग धर्मपरायण थे तथा पृथ्वीपर सब प्रकारकी खेती फली-फूली रहती थी। श्रीरघुनाथजीके शासनकालमें किसीकी अकालमृत्यु भी नहीं होती थी ⁠।।⁠ ३०—३५ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘रामायण-कथाके अन्तर्गत युद्धकाण्डकी कथाका वर्णन’ नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ १० ⁠।।

## ग्यारहवाँ अध्याय

### उत्तरकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—जब रघुनाथजी अयोध्याके राजसिंहासनपर आसीन हो गये, तब अगस्त्य आदि महर्षि उनका दर्शन करनेके लिये गये। वहाँ उनका भलीभाँति स्वागत-सत्कार हुआ। तदनन्तर उन ऋषियोंने कहा—‘भगवन्! आप धन्य हैं, जो लङ्कामें विजयी हुए और इन्द्रजित्-जैसे राक्षसको मार गिराया। [अब हम उनकी उत्पत्ति-कथा बतलाते हैं, सुनिये—] ब्रह्माजीके पुत्र मुनिवर पुलस्त्य हुए और पुलस्त्यसे महर्षि विश्रवाका जन्म हुआ। उनकी दो पत्नियाँ थीं—पुण्योत्कटा और कैकसी। उनमें पुण्योत्कटा ज्येष्ठ थी। उसके गर्भसे धनाध्यक्ष कुबेरका जन्म हुआ। कैकसीके गर्भसे पहले रावणका जन्म हुआ, जिसके दस मुख और बीस भुजाएँ थीं। रावणने तपस्या की और ब्रह्माजीने उसे वरदान दिया, जिससे उसने समस्त देवताओंको जीत लिया। कैकसीके दूसरे पुत्रका नाम कुम्भकर्ण और तीसरेका विभीषण था। कुम्भकर्ण सदा नींदमें ही पड़ा रहता था; किंतु विभीषण बड़े धर्मात्मा हुए। इन तीनोंकी बहन शूर्पणखा हुई। रावणसे मेघनादका जन्म हुआ। उसने इन्द्रको जीत लिया था, इसलिये ‘इन्द्रजित्’ के नामसे उसकी प्रसिद्धि हुई। वह रावणसे भी अधिक बलवान् था। परंतु देवताओं आदिके कल्याणकी इच्छा रखनेवाले आपने लक्ष्मणके द्वारा उसका वध करा दिया।’ ऐसा कहकर वे अगस्त्य आदि ब्रह्मर्षि श्रीरघुनाथजीके द्वारा अभिनन्दित हो अपने-अपने आश्रमको चले गये। तदनन्तर देवताओंकी प्रार्थनासे प्रभावित श्रीरामचन्द्रजीके आदेशसे शत्रुघ्नने लवणासुरको मारकर एक पुरी बसायी, जो ‘मथुरा’ नामसे प्रसिद्ध हुई। तत्पश्चात् भरतने श्रीरामकी आज्ञा पाकर सिन्धु-तीर-निवासी शैलूष नामक बलोन्मत्त गन्धर्वका तथा उसके तीन करोड़ वंशजोंका अपने तीखे बाणोंसे संहार किया। फिर उस देशके [गान्धार और मद्र] दो विभाग करके, उनमें अपने पुत्र तक्ष और पुष्करको स्थापित कर दिया ⁠।।⁠ १—९ ⁠।।

इसके बाद भरत और शत्रुघ्न अयोध्यामें चले आये और वहाँ श्रीरघुनाथजीकी आराधना करते हुए रहने लगे। श्रीरामचन्द्रजीने दुष्ट पुरुषोंका युद्धमें संहार किया और शिष्ट पुरुषोंका दान आदिके द्वारा भलीभाँति पालन किया। उन्होंने लोकापवादके भयसे अपनी धर्मपत्नी सीताको वनमें छोड़ दिया था। वहाँ वाल्मीकि मुनिके आश्रममें उनके गर्भसे दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम कुश और लव थे। उनके उत्तम चरित्रोंको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको भलीभाँति निश्चय हो गया कि ये मेरे ही पुत्र हैं। तत्पश्चात् उन दोनोंको कोसलके दो राज्योंपर अभिषिक्त करके, ‘मैं ब्रह्म हूँ’ इसकी भावनापूर्वक ध्यान-योगमें स्थित होकर उन्होंने देवताओंकी प्रार्थनासे भाइयों और पुरवासियोंसहित अपने परमधाममें प्रवेश किया। अयोध्यामें ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करके वे अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान कर चुके थे। उनके बाद सीताके पुत्र कोसल जनपदके राजा हुए ⁠।।⁠ १०—१३ ⁠।।

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठजी! देवर्षि नारदसे यह कथा सुनकर महर्षि वाल्मीकिने विस्तारपूर्वक रामायण नामक महाकाव्यकी रचना की। जो इस प्रसङ्गको सुनता है, वह स्वर्गलोकको जाता है ⁠।।⁠ १४ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘रामायण-कथाके अन्तर्गत उत्तरकाण्डकी कथाका वर्णन’ नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ ११ ⁠।।

## बारहवाँ अध्याय

### हरिवंशका वर्णन एवं श्रीकृष्णावतारकी संक्षिप्त कथा

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं हरिवंशका वर्णन करूँगा। श्रीविष्णुके नाभि-कमलसे ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्माजीसे अत्रि, अत्रिसे सोम, सोमसे [बुध एवं बुधसे] पुरूरवा उत्पन्न हुए। पुरूरवासे आयु, आयुसे नहुष तथा नहुषसे ययातिका जन्म हुआ। ययातिकी पहली पत्नी देवयानीने यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया। उनकी दूसरी पत्नी शर्मिष्ठाके गर्भसे, जो वृषपर्वाकी पुत्री थी, द्रुह्यु, अनु और पूरु—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। यदुके वंशमें ‘यादव’ नामसे प्रसिद्ध क्षत्रिय हुए। उन सबमें भगवान् वासुदेव सर्वश्रेष्ठ थे। परम पुरुष भगवान् विष्णु ही इस पृथ्वीका भार उतारनेके लिये वसुदेव और देवकीके पुत्ररूपमें प्रकट हुए थे। भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे योग-निद्राने क्रमशः छः गर्भ, जो पूर्वजन्ममें हिरण्यकशिपुके पुत्र थे, देवकीके उदरमें स्थापित किये। देवकीके उदरसे सातवें गर्भके रूपमें बलभद्रजी प्रकट हुए थे। ये देवकीसे रोहिणीके गर्भमें खींचकर लाये गये थे, इसलिये [संकर्षण तथा] रौहिणेय कहलाये। तदनन्तर श्रावण मासके[[3]](#footnote-3) कृष्णपक्षकी अष्टमीको आधी रातके समय चार भुजाधारी भगवान् श्रीहरि प्रकट हुए। उस समय देवकी और वसुदेवने उनका स्तवन किया। फिर वे दो बाँहोंवाले नन्हें-से बालक बन गये। वसुदेवने कंसके भयसे अपने शिशुको यशोदाकी शय्यापर पहुँचा दिया और यशोदाकी नवजात बालिकाको देवकीकी शय्यापर लाकर सुला दिया। बच्चेके रोनेकी आवाज सुनकर कंस आ पहुँचा और देवकीके मना करनेपर भी उसने उस बालिकाको उठाकर शिलापर पटक दिया। उसने आकाशवाणीसे सुन रखा था कि देवकीके आठवें गर्भसे मेरी मृत्यु होगी। इसीलिये उसने देवकीके उत्पन्न हुए सभी शिशुओंको मार डाला था ⁠।।⁠ १—९ ⁠।।

कंसके द्वारा शिलापर पटकी हुई वह बालिका आकाशमें उड़ गयी और वहींसे इस प्रकार बोली—‘कंस! मुझे पटकनेसे तुम्हारा क्या लाभ हुआ? जिनके हाथसे तुम्हारा वध होगा वे देवताओंके सर्वस्वभूत भगवान् तो इस पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतार ले चुके’ ⁠।।⁠ १०-११ ⁠।।

ऐसा कहकर वह चली गयी। उसीने देवताओंकी प्रार्थनासे शुम्भ आदि दैत्योंका वध किया। तब इन्द्रने इस प्रकार स्तुति की—‘जो आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रकाली, भद्रा, क्षेम्या, क्षेमकरी तथा नैकबाहु[[4]](#footnote-4) आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं, उन जगदम्बाको मैं नमस्कार करता हूँ।’ जो तीनों समय इन नामोंका पाठ करता है, उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं।[[5]](#footnote-5) उधर कंसने भी (बालिकाकी बात सुनकर) नवजात शिशुओंका वध करनेके लिये पूतना आदिको सब ओर भेजा। कंस आदिसे डरे हुए वसुदेवने अपने दोनों पुत्रोंकी रक्षाके लिये उन्हें गोकुलमें यशोदापति नन्दजीको सौंप दिया था। वहाँ बलराम और श्रीकृष्ण—दोनों भाई गौओं तथा ग्वालबालोंके साथ विचरा करते थे। यद्यपि वे सम्पूर्ण जगत्‌के पालक थे, तो भी व्रजमें गोपालक बनकर रहे। एक बार श्रीकृष्णके ऊधमसे तंग आकर मैया यशोदाने उन्हें रस्सीसे ऊखलमें बाँध दिया। वे ऊखल घसीटते हुए दो अर्जुन-वृक्षोंके बीचसे निकले। इससे वे दोनों वृक्ष टूटकर गिर पड़े। एक दिन श्रीकृष्ण एक छकड़ेके नीचे सो रहे थे। वे माताका स्तनपान करनेकी इच्छासे अपने पैर फेंक-फेंककर रोने लगे। उनके पैरका हलका-सा आघात लगते ही छकड़ा उलट गया ⁠।।⁠ १२—१७ ⁠।।

पूतना अपना स्तन पिलाकर श्रीकृष्णको मारनेके लिये उद्यत थी; किंतु श्रीकृष्णने ही उसका काम तमाम कर दिया। उन्होंने वृन्दावनमें जानेके पश्चात् कालियनागको परास्त किया और उसे यमुनाके कुण्डसे निकालकर समुद्रमें भेज दिया। बलरामजीके साथ जा, गदहेका रूप धारण करनेवाले धेनुकासुरको मारकर, उन्होंने तालवनको क्षेमयुक्त स्थान बना दिया तथा वृषभरूपधारी अरिष्टासुर और अश्वरूपधारी केशीको मार डाला। फिर श्रीकृष्णने इन्द्रयागके उत्सवको बंद कराया और उसके स्थानमें गिरिराज गोवर्धनकी पूजा प्रचलित की। इससे कुपित हो इन्द्रने जो वर्षा आरम्भ की, उसका निवारण श्रीकृष्णने गोवर्धन पर्वतको धारण करके किया। अन्तमें महेन्द्रने आकर उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और उन्हें ‘गोविन्द’ की पदवी दी। फिर अपने पुत्र अर्जुनको उन्हें सौंपा। इससे संतुष्ट होकर श्रीकृष्णने पुनः इन्द्रयागका भी उत्सव कराया। तदनन्तर एक दिन वे दोनों भाई कंसका संदेश लेकर आये हुए अक्रूरके साथ रथपर बैठकर मथुरा चले गये। जाते समय श्रीकृष्णमें अनुराग रखनेवाली गोपियाँ, जिनके साथ वे भाँति-भाँतिकी मधुर लीलाएँ कर चुके थे, उन्हें बहुत देरतक निहारती रहीं। मार्गमें अक्रूरने उनकी स्तुति की। मथुरामें एक रजक (धोबी) को, जो बहुत बढ़-बढ़कर बातें बना रहा था, मारकर श्रीकृष्णने उससे सारे वस्त्र ले लिये ⁠।।⁠ १८—२३ ⁠।।

एक मालीके द्वारपर उन्होंने बलरामजीके साथ फूलकी मालाएँ धारण कीं और मालीको उत्तम वर दिया। कंसकी दासी कुब्जाने उनके शरीरमें चन्दनका लेप कर दिया, इससे प्रसन्न होकर उन्होंने उसका कुबड़ापन दूर कर दिया—उसे सुडौल एवं सुन्दरी बना दिया। आगे जानेपर रङ्गशालाके द्वारपर खड़े हुए कुवलयापीड नामक मतवाले हाथीको मारा और रङ्गभूमिमें प्रवेश करके श्रीकृष्णने मञ्चपर बैठे हुए कंस आदि राजाओंके समक्ष चाणूर नामक मल्लके साथ [उसके ललकारनेपर] कुश्ती लड़ी और बलरामने मुष्टिक नामवाले पहलवानके साथ दंगल शुरू किया। उन दोनों भाइयोंने चाणूर, मुष्टिक तथा अन्य पहलवानोंको भी [बात-की-बातमें] मार गिराया। तत्पश्चात् श्रीहरिने मथुराधिपति कंसको मारकर उसके पिता उग्रसेनको यदुवंशियोंका राजा बनाया। कंसके दो रानियाँ थीं—अस्ति और प्राप्ति। वे दोनों जरासन्धकी पुत्रियाँ थीं। उनकी प्रेरणासे जरासन्धने मथुरापुरीपर घेरा डाल दिया और यदुवंशियोंके साथ बाणोंसे युद्ध करने लगा। बलराम और श्रीकृष्ण जरासन्धको परास्त करके मथुरा छोड़कर गोमन्त पर्वतपर चले आये और द्वारका नगरीका निर्माण करके वहीं यदुवंशियोंके साथ रहने लगे। उन्होंने युद्धमें वासुदेव नाम धारण करनेवाले पौण्ड्रकको भी मारा तथा भूमिपुत्र नरकासुरका वध करके उसके द्वारा हरकर लायी हुई देवता, गन्धर्व तथा यक्षोंकी कन्याओंके साथ विवाह किया। श्रीकृष्णके सोलह हजार आठ रानियाँ थीं, उनमें रुक्मिणी आदि प्रधान थीं ⁠।।⁠ २४—३१ ⁠।।

इसके बाद नरकासुरका दमन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामाके साथ गरुडपर आरूढ़ हो स्वर्गलोकमें गये। वहाँसे इन्द्रको परास्त करके रत्नोंसहित मणिपर्वत तथा पारिजात वृक्ष उठा लाये और उन्हें सत्यभामाके भवनमें स्थापित कर दिया। श्रीकृष्णने सान्दीपनि मुनिसे अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा ग्रहण की थी। शिक्षा पानेके अनन्तर उन्होंने गुरुदक्षिणाके रूपमें गुरुके मरे हुए बालकको लाकर दिया था। इसके लिये उन्हें ‘पञ्चजन’ नामक दैत्यको परास्त करके यमराजके लोकमें भी जाना पड़ा था। वहाँ यमराजने उनकी बड़ी पूजा की थी। उन्होंने राजा मुचुकुन्दके द्वारा कालयवनका वध करवा दिया। उस समय मुचुकुन्दने भी भगवान्‌की पूजा की। भगवान् श्रीकृष्ण वसुदेव, देवकी तथा भगवद्भक्त ब्राह्मणोंका बड़ा आदर-सत्कार करते थे। बलभद्रजीके द्वारा रेवतीके गर्भसे निशठ और उल्मुक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। श्रीकृष्णद्वारा जाम्बवतीके गर्भसे साम्बका जन्म हुआ। इसी प्रकार अन्य रानियोंसे अन्यान्य पुत्र उत्पन्न हुए। रुक्मिणीके गर्भसे प्रद्युम्नका जन्म हुआ था। वे अभी छः दिनके थे, तभी शम्बरासुर उन्हें मायाबलसे हर ले गया। उसने बालकको समुद्रमें फेंक दिया। समुद्रमें एक मत्स्य उसे निगल गया। उस मत्स्यको एक मल्लाहने पकड़ा और शम्बरासुरको भेंट किया। फिर शम्बरासुरने उस मत्स्यको मायावतीके हवाले कर दिया। मायावतीने मत्स्यके पेटमें अपने पतिको देखकर बड़े आदरसे उसका पालन-पोषण किया। बड़े हो जानेपर मायावतीने प्रद्युम्नसे कहा—‘नाथ! मैं आपकी पत्नी रति हूँ और आप मेरे पति कामदेव हैं। पूर्वकालमें भगवान् शङ्करने आपको अनङ्ग (शरीररहित) कर दिया था। आपके न रहनेसे शम्बरासुर मुझे हर लाया है। मैंने उसकी पत्नी होना स्वीकार नहीं किया है। आप मायाके ज्ञाता हैं, अतः शम्बरासुरको मार डालिये’ ⁠।।⁠ ३२—३९ ⁠।।

यह सुनकर प्रद्युम्नने शम्बरासुरका वध किया और अपनी भार्या मायावतीके साथ वे श्रीकृष्णके पास चले गये। उनके आगमनसे श्रीकृष्ण और रुक्मिणीको बड़ी प्रसन्नता हुई। प्रद्युम्नसे उदारबुद्धि अनिरुद्धका जन्म हुआ। बड़े होनेपर वे उषाके स्वामी हुए। राजा बलिके बाण नामक पुत्र था। उषा उसीकी पुत्री थी। उसका निवासस्थान शोणितपुरमें था। बाणने बड़ी भारी तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने उसको अपना पुत्र मान लिया था। एक दिन शिवजीने बलोन्मत्त बाणासुरकी युद्धविषयक इच्छासे संतुष्ट होकर उससे कहा—‘बाण! जिस दिन तुम्हारे महलका मयूरध्वज अपने-आप टूटकर गिर जाय, उस दिन यह समझना कि तुम्हें युद्ध प्राप्त होगा।’ एक दिन कैलास पर्वतपर भगवती पार्वती भगवान् शङ्करके साथ क्रीडा कर रही थीं। उन्हें देखकर उषाके मनमें भी पतिकी अभिलाषा जाग्रत् हुई। पार्वतीजीने उसके मनोभावको समझकर कहा—‘वैशाख मासकी द्वादशी तिथिको रातके समय स्वप्नमें जिस पुरुषका तुम्हें दर्शन होगा, वही तुम्हारा पति होगा।’ पार्वतीजीकी यह बात सुनकर उषा बहुत प्रसन्न हुई। उक्त तिथिको जब वह अपने घरमें सो गयी, तो उसे वैसा ही स्वप्न दिखायी दिया। उषाकी एक सखी चित्रलेखा थी। वह बाणासुरके मन्त्री कुम्भाण्डकी कन्या थी। उसके बनाये हुए चित्रपटसे उषाने अनिरुद्धको पहचाना कि वे ही स्वप्नमें उससे मिले थे। उसने चित्रलेखाके ही द्वारा श्रीकृष्ण-पौत्र अनिरुद्धको द्वारकासे अपने यहाँ बुला मँगाया। अनिरुद्ध आये और उषाके साथ विहार करते हुए रहने लगे। इसी समय मयूरध्वजके रक्षकोंने बाणासुरको ध्वजके गिरनेकी सूचना दी। फिर तो अनिरुद्ध और बाणासुरमें भयंकर युद्ध हुआ ⁠।।⁠ ४०—४७ ⁠।।

नारदजीके मुखसे अनिरुद्धके शोणितपुर पहुँचनेका समाचार सुनकर, भगवान् श्रीकृष्ण प्रद्युम्न और बलभद्रको साथ ले, गरुडपर बैठकर वहाँ गये और अग्नि एवं माहेश्वर ज्वरको जीतकर शङ्करजीके साथ युद्ध करने लगे। श्रीकृष्ण और शङ्करमें परस्पर बाणोंके आघात-प्रत्याघातसे युक्त भीषण युद्ध होने लगा। नन्दी, गणेश और कार्तिकेय आदि प्रमुख वीरोंको गरुड आदिने तत्काल परास्त कर दिया। श्रीकृष्णने जृम्भणास्त्रका प्रयोग किया, जिससे भगवान् शङ्कर जँभाई लेते हुए सो गये। इसी बीचमें श्रीकृष्णने बाणासुरकी हजार भुजाएँ काट डालीं। जृम्भणास्त्रका प्रभाव कम होनेपर शिवजीने बाणासुरके लिये अभयदान माँगा, तब श्रीकृष्णने दो भुजाओंके साथ बाणासुरको जीवित छोड़ दिया और शङ्करजीसे कहा— ⁠।।⁠ ४८—५१ ⁠।।

श्रीकृष्ण बोले—भगवन्! आपने जब बाणासुरको अभयदान दिया है, तो मैंने भी दे दिया। हम दोनोंमें कोई भेद नहीं है। जो भेद मानता है, वह नरकमें पड़ता है[[6]](#footnote-6) ⁠।।⁠ ५२ ⁠।।

अग्निदेव कहते हैं—तदनन्तर शिव आदिने श्रीकृष्णका पूजन किया। वे अनिरुद्ध और उषा आदिके साथ द्वारकामें जाकर उग्रसेन आदि यादवोंके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे ⁠।।⁠ ५३ ⁠।।

अनिरुद्धके वज्र नामक पुत्र हुआ। उसने मार्कण्डेय मुनिसे सब विद्याओंका ज्ञान प्राप्त किया। बलभद्रजीने प्रलम्बासुरको मारा, यमुनाकी धाराको खींचकर फेर दिया, द्विविद नामक वानरका संहार किया तथा अपने हलके अग्रभागसे हस्तिनापुरको गङ्गामें झुकाकर कौरवोंके घमंडको चूर-चूर कर दिया। भगवान् श्रीकृष्ण अनेक रूप धारण करके अपनी रुक्मिणी आदि रानियोंके साथ विहार करते रहे। उन्होंने असंख्य पुत्रोंको जन्म दिया। [अन्तमें यादवोंका उपसंहार करके वे परमधामको पधारे।] जो इस हरिवंशका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण कामनाएँ प्राप्त करके अन्तमें श्रीहरिके समीप जाता है ⁠।।⁠ ५४—५६ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘हरिवंशका वर्णन’ नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ १२ ⁠।।

## तेरहवाँ अध्याय

### महाभारतकी संक्षिप्त कथा

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं श्रीकृष्णकी महिमाको लक्षित करानेवाला महाभारतका उपाख्यान सुनाता हूँ, जिसमें श्रीहरिने पाण्डवोंको निमित्त बनाकर इस पृथ्वीका भार उतारा था। भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। ब्रह्माजीसे अत्रि, अत्रिसे चन्द्रमा, चन्द्रमासे बुध और बुधसे इलानन्दन पुरूरवाका जन्म हुआ। पुरूरवासे आयु, आयुसे राजा नहुष और नहुषसे ययाति उत्पन्न हुए। ययातिसे पूरु हुए। पूरुके वंशमें भरत और भरतके कुलमें राजा कुरु हुए। कुरुके वंशमें शान्तनुका जन्म हुआ। शान्तनुसे गङ्गानन्दन भीष्म उत्पन्न हुए। उनके दो छोटे भाई और थे—चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य। ये शान्तनुसे सत्यवतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। शान्तनुके स्वर्गलोक चले जानेपर भीष्मने अविवाहित रहकर अपने भाई विचित्रवीर्यके राज्यका पालन किया। चित्राङ्गद बाल्यावस्थामें ही चित्राङ्गद नामवाले गन्धर्वके द्वारा मारे गये। फिर भीष्म संग्राममें विपक्षीको परास्त करके काशिराजकी दो कन्याओं—अम्बिका और अम्बालिकाको हर लाये। वे दोनों विचित्रवीर्यकी भार्याएँ हुईं। कुछ कालके बाद राजा विचित्रवीर्य राजयक्ष्मासे ग्रस्त हो स्वर्गवासी हो गये। तब सत्यवतीकी अनुमतिसे व्यासजीके द्वारा अम्बिकाके गर्भसे राजा धृतराष्ट्र और अम्बालिकाके गर्भसे पाण्डु उत्पन्न हुए। धृतराष्ट्रने गान्धारीके गर्भसे सौ पुत्रोंको जन्म दिया, जिनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था ⁠।।⁠ १—८ ⁠।।

राजा पाण्डु वनमें रहते थे। वे एक ऋषिके शापवश शतशृङ्ग मुनिके आश्रमके पास स्त्री-समागमके कारण मृत्युको प्राप्त हुए। [पाण्डु शापके ही कारण स्त्री-सम्भोगसे दूर रहते थे,] इसलिये उनकी आज्ञाके अनुसार कुन्तीके गर्भसे धर्मके अंशसे युधिष्ठिरका जन्म हुआ। वायुसे भीम और इन्द्रसे अर्जुन उत्पन्न हुए। पाण्डुकी दूसरी पत्नी माद्रीके गर्भसे अश्विनीकुमारोंके अंशसे नकुल-सहदेवका जन्म हुआ। [शापवश] एक दिन माद्रीके साथ सम्भोग होनेसे पाण्डुकी मृत्यु हो गयी और माद्री भी उनके साथ सती हो गयी। जब कुन्तीका विवाह नहीं हुआ था, उसी समय [सूर्यके अंशसे] उनके गर्भसे कर्णका जन्म हुआ था। वह दुर्योधनके आश्रयमें रहता था। दैवयोगसे कौरवों और पाण्डवोंमें वैरकी आग प्रज्वलित हो उठी। दुर्योधन बड़ी खोटी बुद्धिका मनुष्य था। उसने लाक्षाके बने हुए घरमें पाण्डवोंको रखकर आग लगाकर उन्हें जलानेका प्रयत्न किया; किंतु पाँचों पाण्डव अपनी माताके साथ उस जलते हुए घरसे बाहर निकल गये। वहाँसे एकचक्रा नगरीमें जाकर वे मुनिके वेषमें एक ब्राह्मणके घरमें निवास करने लगे। फिर बक नामक राक्षसका वध करके वे पाञ्चाल-राज्यमें, जहाँ द्रौपदीका स्वयंवर होनेवाला था, गये। वहाँ अर्जुनके बाहुबलसे मत्स्यभेद होनेपर पाँचों पाण्डवोंने द्रौपदीको पत्नीरूपमें प्राप्त किया। तत्पश्चात् दुर्योधन आदिको उनके जीवित होनेका पता चलनेपर उन्होंने कौरवोंसे अपना आधा राज्य भी प्राप्त कर लिया। अर्जुनने अग्निदेवसे दिव्य गाण्डीव धनुष और उत्तम रथ प्राप्त किया था। उन्हें युद्धमें भगवान् कृष्ण-जैसे सारथि मिले थे तथा उन्होंने आचार्य द्रोणसे ब्रह्मास्त्र आदि दिव्य आयुध और कभी नष्ट न होनेवाले बाण प्राप्त किये थे। सभी पाण्डव सब प्रकारकी विद्याओंमें प्रवीण थे ⁠।।⁠ ९—१६ ⁠।।

पाण्डुकुमार अर्जुनने श्रीकृष्णके साथ खाण्डव-वनमें इन्द्रके द्वारा की हुई वृष्टिका अपने बाणोंकी [छत्राकार] बाँधसे निवारण करते हुए अग्निको तृप्त किया था। पाण्डवोंने सम्पूर्ण दिशाओंपर विजय पायी। युधिष्ठिर राज्य करने लगे। उन्होंने प्रचुर सुवर्णराशिसे परिपूर्ण राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया। उनका यह वैभव दुर्योधनके लिये असह्य हो उठा। उसने अपने भाई दुःशासन और वैभवप्राप्त सुहृद् कर्णके कहनेसे शकुनिको साथ ले, द्यूत-सभामें जूएमें प्रवृत्त होकर, युधिष्ठिर और उनके राज्यको कपट-द्यूतके द्वारा हँसते-हँसते जीत लिया। जूएमें परास्त होकर युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार बारह वर्ष व्यतीत किये। वे वनमें भी पहलेहीकी भाँति प्रतिदिन बहुसंख्यक ब्राह्मणोंको भोजन कराते थे। [एक दिन उन्होंने] अठासी हजार द्विजोंसहित दुर्वासाको [श्रीकृष्ण-कृपासे] परितृप्त किया। वहाँ उनके साथ उनकी पत्नी द्रौपदी तथा पुरोहित धौम्यजी भी थे। बारहवाँ वर्ष बीतनेपर वे विराटनगरमें गये। वहाँ युधिष्ठिर सबसे अपरिचित रहकर ‘कङ्क’ नामक ब्राह्मणके रूपमें रहने लगे। भीमसेन रसोइया बने थे। अर्जुनने अपना नाम ‘बृहन्नला’ रखा था। पाण्डवपत्नी द्रौपदी रनिवासमें सैरन्ध्रीके रूपमें रहने लगी। इसी प्रकार नकुल-सहदेवने भी अपने नाम बदल लिये थे। भीमसेनने रात्रिकालमें द्रौपदीका सतीत्व-हरण करनेकी इच्छा रखनेवाले कीचकको मार डाला। तत्पश्चात् कौरव विराटकी गौओंको हरकर ले जाने लगे, तब उन्हें अर्जुनने परास्त किया। उस समय कौरवोंने पाण्डवोंको पहचान लिया। श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्राने अर्जुनसे अभिमन्यु नामक पुत्रको उत्पन्न किया था। उसे राजा विराटने अपनी कन्या उत्तरा ब्याह दी ⁠।।⁠ १७—२५ ⁠।।

धर्मराज युधिष्ठिर सात अक्षौहिणी सेनाके स्वामी होकर कौरवोंके साथ युद्ध करनेको तैयार हुए। पहले भगवान् श्रीकृष्ण परम क्रोधी दुर्योधनके पास दूत बनकर गये। उन्होंने ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके स्वामी राजा दुर्योधनसे कहा—‘राजन्! तुम युधिष्ठिरको आधा राज्य दे दो या उन्हें पाँच ही गाँव अर्पित कर दो; नहीं तो उनके साथ युद्ध करो।’ श्रीकृष्णकी बात सुनकर दुर्योधनने कहा—‘मैं उन्हें सुईकी नोकके बराबर भूमि भी नहीं दूँगा; हाँ, उनसे युद्ध अवश्य करूँगा।’ ऐसा कहकर वह भगवान् श्रीकृष्णको बंदी बनानेके लिये उद्यत हो गया। उस समय राजसभामें भगवान् श्रीकृष्णने अपने परम दुर्धर्ष विश्वरूपका दर्शन कराकर दुर्योधनको भयभीत कर दिया। फिर विदुरने अपने घर ले जाकर भगवान्‌का पूजन और सत्कार किया। तदनन्तर वे युधिष्ठिरके पास लौट गये और बोले—‘महाराज! आप दुर्योधनके साथ युद्ध कीजिये’ ⁠।।⁠ २६—२९ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘आदिपर्वसे आरम्भ करके [उद्योगपर्व-पर्यन्त] महाभारतकथाका संक्षिप्त वर्णन’ नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ १३ ⁠।।

## चौदहवाँ अध्याय

### कौरव और पाण्डवोंका युद्ध तथा उसका परिणाम

अग्निदेव कहते हैं—युधिष्ठिर और दुर्योधनकी सेनाएँ कुरुक्षेत्रके मैदानमें जा डटीं। अपने विपक्षमें पितामह भीष्म तथा आचार्य द्रोण आदि गुरुजनोंको देखकर अर्जुन युद्धसे विरत हो गये, तब भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा—“पार्थ! भीष्म आदि गुरुजन शोकके योग्य नहीं हैं। मनुष्यका शरीर विनाशशील है; किंतु आत्माका कभी नाश नहीं होता। यह आत्मा ही परब्रह्म है। ‘मैं ब्रह्म हूँ’—इस प्रकार तुम उस आत्माको समझो। कार्यकी सिद्धि और असिद्धिमें समानभावसे रहकर कर्मयोगका आश्रय ले क्षात्रधर्मका पालन करो।” श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुन रथारूढ़ हो युद्धमें प्रवृत्त हुए। उन्होंने शङ्खध्वनि की। दुर्योधनकी सेनामें सबसे पहले पितामह भीष्म सेनापति हुए। पाण्डवोंके सेनापति शिखण्डी थे। इन दोनोंमें भारी युद्ध छिड़ गया। भीष्मसहित कौरवपक्षके योद्धा उस युद्धमें पाण्डव-पक्षके सैनिकोंपर प्रहार करने लगे और शिखण्डी आदि पाण्डव-पक्षके वीर कौरव-सैनिकोंको अपने बाणोंका निशाना बनाने लगे। कौरव और पाण्डव-सेनाका वह युद्ध, देवासुर-संग्रामके समान जान पड़ता था। आकाशमें खड़े होकर देखनेवाले देवताओंको वह युद्ध बड़ा आनन्ददायक प्रतीत हो रहा था। भीष्मने दस दिनोंतक युद्ध करके पाण्डवोंकी अधिकांश सेनाको अपने बाणोंसे मार गिराया ⁠।।⁠ १—७ ⁠।।

दसवें दिन अर्जुनने वीरवर भीष्मपर बाणोंकी बड़ी भारी वृष्टि की। इधर द्रुपदकी प्रेरणासे शिखण्डीने भी पानी बरसानेवाले मेघकी भाँति भीष्मपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। दोनों ओरके हाथीसवार, घुड़सवार, रथी और पैदल एक-दूसरेके बाणोंसे मारे गये। भीष्मकी मृत्यु उनकी इच्छाके अधीन थी। उन्होंने युद्धका मार्ग दिखाकर वसु-देवताके कहनेपर वसुलोकमें जानेकी तैयारी की और बाणशय्यापर सो रहे। वे उत्तरायणकी प्रतीक्षामें भगवान् विष्णुका ध्यान और स्तवन करते हुए समय व्यतीत करने लगे। भीष्मके बाण-शय्यापर गिर जानेके बाद जब दुर्योधन शोकसे व्याकुल हो उठा, तब आचार्य द्रोणने सेनापतित्वका भार ग्रहण किया। उधर हर्ष मनाती हुई पाण्डवोंकी सेनामें धृष्टद्युम्न सेनापति हुए। उन दोनोंमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ, जो यमलोककी आबादीको बढ़ानेवाला था। विराट और द्रुपद आदि राजा द्रोणरूपी समुद्रमें डूब गये। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंसे युक्त दुर्योधनकी विशाल वाहिनी धृष्टद्युम्नके हाथसे मारी जाने लगी। उस समय द्रोण कालके समान जान पड़ते थे। इतनेहीमें उनके कानोंमें यह आवाज आयी कि ‘अश्वत्थामा मारा गया’। इतना सुनते ही आचार्य द्रोणने अस्त्र-शस्त्र त्याग दिये। ऐसे समयमें धृष्टद्युम्नके बाणोंसे आहत होकर वे पृथ्वीपर गिर पड़े ⁠।।⁠ ८—१४ ⁠।।

द्रोण बड़े ही दुर्धर्ष थे। वे सम्पूर्ण क्षत्रियोंका विनाश करके पाँचवें दिन मारे गये। दुर्योधन पुनः शोकसे आतुर हो उठा। उस समय कर्ण उसकी सेनाका कर्णधार हुआ। पाण्डव-सेनाका आधिपत्य अर्जुनको मिला। कर्ण और अर्जुनमें भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्रोंकी मार-काटसे युक्त महाभयानक युद्ध हुआ, जो देवासुर-संग्रामको भी मात करनेवाला था। कर्ण और अर्जुनके संग्राममें कर्णने अपने बाणोंसे शत्रु-पक्षके बहुत-से वीरोंका संहार कर डाला; किंतु दूसरे दिन अर्जुनने उसे मार गिराया ⁠।।⁠ १५—१७ ⁠।।

तदनन्तर राजा शल्य कौरव-सेनाके सेनापति हुए; किंतु वे युद्धमें आधे दिनतक ही टिक सके। दोपहर होते-होते राजा युधिष्ठिरने उन्हें मार गिराया। दुर्योधनकी प्रायः सारी सेना युद्धमें मारी गयी थी। अन्ततोगत्वा उसका भीमसेनके साथ युद्ध हुआ। उसने पाण्डव-पक्षके पैदल आदि बहुत-से सैनिकोंका वध करके भीमसेनपर धावा किया। उस समय गदासे प्रहार करते हुए दुर्योधनको भीमसेनने मौतके घाट उतार दिया। दुर्योधनके अन्य छोटे भाई भी भीमसेनके ही हाथसे मारे गये थे। महाभारत-संग्रामके उस अठारहवें दिन रात्रिकालमें महाबली अश्वत्थामाने पाण्डवोंकी सोयी हुई एक अक्षौहिणी सेनाको सदाके लिये सुला दिया। उसने द्रौपदीके पाँचों पुत्रों, उसके पाञ्चालदेशीय बन्धुओं तथा धृष्टद्युम्नको भी जीवित नहीं छोड़ा। द्रौपदी पुत्रहीन होकर रोने-बिलखने लगी। तब अर्जुनने सींकके अस्त्रसे अश्वत्थामाको परास्त करके उसके मस्तककी मणि निकाल ली। [उसे मारा जाता देख द्रौपदीने ही अनुनय-विनय करके उसके प्राण बचाये।] ⁠।।⁠ १८—२२ ⁠।।

इतनेपर भी दुष्ट अश्वत्थामाने उत्तराके गर्भको नष्ट करनेके लिये उसपर अस्त्रका प्रयोग किया। वह गर्भ उसके अस्त्रसे प्रायः दग्ध हो गया था; किंतु भगवान् श्रीकृष्णने उसको पुनः जीवन-दान दिया। उत्तराका वही गर्भस्थ शिशु आगे चलकर राजा परीक्षित्‌के नामसे विख्यात हुआ। कृतवर्मा, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा—ये तीन कौरवपक्षीय वीर उस संग्रामसे जीवित बचे। दूसरी ओर पाँच पाण्डव, सात्यकि तथा भगवान् श्रीकृष्ण—ये सात ही जीवित रह सके; दूसरे कोई नहीं बचे। उस समय सब ओर अनाथा स्त्रियोंका आर्तनाद व्याप्त हो रहा था। भीमसेन आदि भाइयोंके साथ जाकर युधिष्ठिरने उन्हें सान्त्वना दी तथा रणभूमिमें मारे गये सभी वीरोंका दाह-संस्कार करके उनके लिये जलाञ्जलि दे धन आदिका दान किया। तत्पश्चात् कुरुक्षेत्रमें शरशय्यापर आसीन शान्तनुनन्दन भीष्मके पास जाकर युधिष्ठिरने उनसे समस्त शान्तिदायक धर्म, राजधर्म (आपद्धर्म), मोक्षधर्म तथा दानधर्मकी बातें सुनीं। फिर वे राजसिंहासनपर आसीन हुए। इसके बाद उन शत्रुमर्दन राजाने अश्वमेध-यज्ञ करके उसमें ब्राह्मणोंको बहुत धन दान किया। तदनन्तर द्वारकासे लौटे हुए अर्जुनके मुखसे मूसलकाण्डके कारण प्राप्त हुए शापसे पारस्परिक युद्धद्वारा यादवोंके संहारका समाचार सुनकर युधिष्ठिरने परीक्षित्‌को राजासनपर बिठाया और स्वयं भाइयोंके साथ महाप्रस्थान कर स्वर्गलोकको चले गये ⁠।।⁠ २३—२७ ⁠।।[[7]](#footnote-7)

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘भीष्मपर्वसे लेकर अन्ततककी महाभारत-कथाका संक्षेपसे वर्णन’ नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ १४ ⁠।।

## पंद्रहवाँ अध्याय

### यदुकुलका संहार और पाण्डवोंका स्वर्गगमन

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्मन्! जब युधिष्ठिर राजसिंहासनपर विराजमान हो गये, तब धृतराष्ट्र गृहस्थ-आश्रमसे वानप्रस्थ-आश्रममें प्रविष्ट हो वनमें चले गये। [अथवा ऋषियोंके एक आश्रमसे दूसरे आश्रमोंमें होते हुए वे वनको गये।] उनके साथ देवी गान्धारी और पृथा (कुन्ती) भी थीं। विदुरजी दावानलसे दग्ध हो स्वर्ग सिधारे। इस प्रकार भगवान् विष्णुने पृथ्वीका भार उतारा और धर्मकी स्थापना तथा अधर्मका नाश करनेके लिये पाण्डवोंको निमित्त बनाकर दानव-दैत्य आदिका संहार किया। तत्पश्चात् भूमिका भार बढ़ानेवाले यादवकुलका भी ब्राह्मणोंके शापके बहाने मूसलके द्वारा संहार कर डाला। अनिरुद्धके पुत्र वज्रको राजाके पदपर अभिषिक्त किया। तदनन्तर देवताओंके अनुरोधसे प्रभासक्षेत्रमें श्रीहरि स्वयं ही स्थूल शरीरकी लीलाका संवरण करके अपने धामको पधारे ⁠।।⁠ १—४ ⁠।।

वे इन्द्रलोक और ब्रह्मलोकमें स्वर्गवासी देवताओंद्वारा पूजित होते हैं। बलभद्रजी शेषनागके स्वरूप थे; अतः उन्होंने पातालरूपी स्वर्गका आश्रय लिया। अविनाशी भगवान् श्रीहरि ध्यानी पुरुषोंके ध्येय हैं। उनके अन्तर्धान हो जानेपर समुद्रने उनके निजी निवासस्थानको छोड़कर शेष द्वारकापुरीको अपने जलमें डुबा दिया। अर्जुनने मरे हुए यादवोंका दाह-संस्कार करके उनके लिये जलाञ्जलि दी और धन आदिका दान किया। भगवान् श्रीकृष्णकी रानियोंको, जो पहले अप्सराएँ थीं और अष्टावक्रके शापसे मानवीरूपमें प्रकट हुई थीं, लेकर हस्तिनापुरको चले। मार्गमें डंडे लिये हुए ग्वालोंने अर्जुनका तिरस्कार करके उन सबको छीन लिया। यह भी अष्टावक्रके शापसे ही सम्भव हुआ था। इससे अर्जुनके मनमें बड़ा शोक हुआ। फिर महर्षि व्यासके सान्त्वना देनेपर उन्हें यह निश्चय हुआ कि ‘भगवान् श्रीकृष्णके समीप रहनेसे ही मुझमें बल था।’ हस्तिनापुरमें आकर उन्होंने भाइयोंसहित राजा युधिष्ठिरसे, जो उस समय प्रजावर्गका पालन करते थे, यह सब समाचार निवेदन किया। वे बोले—‘भैया! वही धनुष है, वे ही बाण हैं, वही रथ है और वे ही घोड़े हैं; किंतु भगवान् श्रीकृष्णके बिना सब कुछ उसी प्रकार नष्ट हो गया, जैसे अश्रोत्रियको दिया हुआ दान।’ यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने राज्यपर परीक्षित्‌को स्थापित कर दिया ⁠।।⁠ ५—११ ⁠।।

इसके बाद बुद्धिमान् राजा संसारकी अनित्यताका विचार करके द्रौपदी तथा भाइयोंको साथ ले महाप्रस्थानके पथपर अग्रसर हुए। मार्गमें वे श्रीहरिके अष्टोत्तरशत नामोंका जप करते हुए यात्रा करते थे। उस महापथमें क्रमशः द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन और भीमसेन एक-एक करके गिर पड़े। इससे राजा शोकमग्न हो गये। तदनन्तर वे इन्द्रके द्वारा लाये हुए रथपर आरूढ़ हो [दिव्यरूपधारी] भाइयोंसहित स्वर्गको चले गये। वहाँ उन्होंने दुर्योधन आदि सभी धृतराष्ट्रपुत्रोंको देखा। तदनन्तर [उनपर कृपा करनेके लिये अपने धामसे पधारे हुए] भगवान् वासुदेवका भी दर्शन किया। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। यह मैंने तुम्हें महाभारतका प्रसङ्ग सुनाया है। जो इसका पाठ करेगा, वह स्वर्गलोकमें सम्मानित होगा ⁠।।⁠ १२—१५ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘आश्रमवासिक पर्वसे लेकर स्वर्गारोहण-पर्यन्त महाभारत-कथाका संक्षिप्त वर्णन’ नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ १५ ⁠।।

## सोलहवाँ अध्याय

### बुद्ध और कल्कि-अवतारोंकी कथा

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं बुद्धावतारका वर्णन करूँगा, जो पढ़ने और सुननेवालोंके मनोरथको सिद्ध करनेवाला है। पूर्वकालमें देवताओं और असुरोंमें घोर संग्राम हुआ। उसमें दैत्योंने देवताओंको परास्त कर दिया। तब देवतालोग ‘त्राहि-त्राहि’ पुकारते हुए भगवान्‌की शरणमें गये। भगवान् मायामोहमय रूपमें आकर राजा शुद्धोदनके पुत्र हुए। उन्होंने दैत्योंको मोहित किया और उनसे वैदिक धर्मका परित्याग करा दिया। वे बुद्धके अनुयायी दैत्य ‘बौद्ध’ कहलाये। फिर उन्होंने दूसरे लोगोंसे वेद-धर्मका त्याग करवाया। इसके बाद माया-मोह ही ‘आर्हत’ रूपसे प्रकट हुआ। उसने दूसरे लोगोंको भी ‘आर्हत’ बनाया। इस प्रकार उनके अनुयायी वेद-धर्मसे वञ्चित होकर पाखण्डी बन गये। उन्होंने नरकमें ले जानेवाले कर्म करना आरम्भ कर दिया। वे सब-के-सब कलियुगके अन्तमें वर्णसंकर होंगे और नीच पुरुषोंसे दान लेंगे। इतना ही नहीं, वे लोग डाकू और दुराचारी भी होंगे। वाजसनेय (बृहदारण्यक)-मात्र ही ‘वेद’ कहलायेगा। वेदकी दस-पाँच शाखाएँ ही प्रमाणभूत मानी जायँगी। धर्मका चोला पहने हुए सब लोग अधर्ममें ही रुचि रखनेवाले होंगे। राजारूपधारी म्लेच्छ मनुष्योंका ही भक्षण करेंगे ⁠।।⁠ १—७ ⁠।।

तदनन्तर भगवान् कल्कि प्रकट होंगे। वे श्रीविष्णुयशाके पुत्ररूपसे अवतीर्ण हो याज्ञवल्क्यको अपना पुरोहित बनायेंगे। उन्हें अस्त्र-शस्त्र-विद्याका पूर्ण परिज्ञान होगा। वे हाथमें अस्त्र-शस्त्र लेकर म्लेच्छोंका संहार कर डालेंगे तथा चारों वर्णों और समस्त आश्रमोंमें शास्त्रीय मर्यादा स्थापित करेंगे। समस्त प्रजाको धर्मके उत्तम मार्गमें लगायेंगे। उसके बाद श्रीहरि कल्किरूपका परित्याग करके अपने धाममें चले जायँगे। फिर तो पूर्ववत् सत्ययुगका साम्राज्य होगा। साधुश्रेष्ठ! सभी वर्ण और आश्रमके लोग अपने-अपने धर्ममें दृढ़तापूर्वक लग जायँगे। इस प्रकार सम्पूर्ण कल्पों तथा मन्वन्तरोंमें श्रीहरिके अवतार होते हैं। उनमेंसे कुछ हो चुके हैं, कुछ आगे होनेवाले हैं; उन सबकी कोई नियत संख्या नहीं है। जो मनुष्य श्रीविष्णुके अंशावतार तथा पूर्णावतारसहित दस अवतारोंके चरित्रोंका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है तथा निर्मलहृदय होकर परिवारसहित स्वर्गको जाता है। इस प्रकार अवतार लेकर श्रीहरि धर्मकी व्यवस्था और अधर्मका निराकरण करते हैं। वे ही जगत्‌की सृष्टि आदिके कारण हैं ⁠।।⁠ ८—१४ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘बुद्ध तथा कल्कि—इन दो अवतारोंका वर्णन’ नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ १६ ⁠।।

## सत्रहवाँ अध्याय

### जगत्‌की सृष्टिका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं जगत्‌की सृष्टि आदिका, जो श्रीहरिकी लीलामात्र है, वर्णन करूँगा; सुनो। श्रीहरि ही स्वर्ग आदिके रचयिता हैं। सृष्टि और प्रलय आदि उन्हींके स्वरूप हैं। सृष्टिके आदिकारण भी वे ही हैं। वे ही निर्गुण हैं और वे ही सगुण हैं। सबसे पहले सत्स्वरूप अव्यक्त ब्रह्म ही था; उस समय न तो आकाश था और न रात-दिन आदिका ही विभाग था। तदनन्तर सृष्टिकालमें परमपुरुष श्रीविष्णुने प्रकृतिमें प्रवेश करके उसे क्षुब्ध (विकृत) कर दिया। फिर प्रकृतिसे महत्तत्त्व और उससे अहंकार प्रकट हुआ। अहंकार तीन प्रकारका है—वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और भूतादिरूप तामस। तामस अहंकारसे शब्द-तन्मात्रावाला आकाश उत्पन्न हुआ। आकाशसे स्पर्श-तन्मात्रावाले वायुका प्रादुर्भाव हुआ। वायुसे रूप-तन्मात्रावाला अग्नितत्त्व प्रकट हुआ। अग्निसे रस-तन्मात्रावाले जलकी उत्पत्ति हुई और जलसे गन्ध-तन्मात्रावाली भूमिका प्रादुर्भाव हुआ। यह सब तामस अहंकारसे होनेवाली सृष्टि है। इन्द्रियाँ तैजस अर्थात् राजस अहंकारसे प्रकट हुई हैं। दस इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता और ग्यारहवीं इन्द्रिय मन (-के भी अधिष्ठाता देवता)—ये वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहंकारकी सृष्टि हैं। तत्पश्चात् नाना प्रकारकी प्रजाको उत्पन्न करनेकी इच्छावाले भगवान् स्वयम्भूने सबसे पहले जलकी ही सृष्टि की और उसमें अपनी शक्ति (वीर्य)-का आधान किया। जलको ‘नार’ कहा गया है; क्योंकि वह नरसे उत्पन्न हुआ है। ‘नार’ (जल) ही पूर्वकालमें भगवान्‌का ‘अयन’ (निवास-स्थान) था; इसलिये भगवान्‌को ‘नारायण’ कहा गया है ⁠।।⁠ १—७ ⁠।।

स्वयम्भू श्रीहरिने जो वीर्य स्थापित किया था, वह जलमें सुवर्णमय अण्डके रूपमें प्रकट हुआ। उसमें साक्षात् स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी प्रकट हुए, ऐसा हमने सुना है। भगवान् हिरण्यगर्भने एक वर्षतक उस अण्डके भीतर निवास करके उसके दो भाग किये। एकका नाम ‘द्युलोक’ हुआ और दूसरेका ‘भूलोक’। उन दोनों अण्ड-खण्डोंके बीचमें उन्होंने आकाशकी सृष्टि की। जलके ऊपर तैरती हुई पृथ्वीको रखा और दसों दिशाओंके विभाग किये। फिर सृष्टिकी इच्छावाले प्रजापतिने वहाँ काल, मन, वाणी, काम, क्रोध तथा रति आदिकी तत्तद्‌रूपसे सृष्टि की। उन्होंने आदिमें विद्युत्, वज्र, मेघ, रोहित इन्द्रधनुष, पक्षियों तथा पर्जन्यका निर्माण किया। तत्पश्चात् यज्ञकी सिद्धिके लिये मुखसे ऋक्, यजु और सामवेदको प्रकट किया। उनके द्वारा साध्यगणोंने देवताओंका यजन किया। फिर ब्रह्माजीने अपनी भुजासे ऊँचे-नीचे (या छोटे-बड़े) भूतोंको उत्पन्न किया, सनत्कुमारकी उत्पत्ति की तथा क्रोधसे प्रकट होनेवाले रुद्रको जन्म दिया। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ—इन सात ब्रह्मपुत्रोंको ब्रह्माजीने निश्चय ही अपने मनसे प्रकट किया। साधुश्रेष्ठ! ये तथा रुद्रगण प्रजावर्गकी सृष्टि करते हैं। ब्रह्माजीने अपने शरीरके दो भाग किये। आधे भागसे वे पुरुष हुए और आधेसे स्त्री बन गये; फिर उस नारीके गर्भसे उन्होंने प्रजाओंकी सृष्टि की। (ये ही स्वायम्भुव मनु तथा शतरूपाके नामसे प्रसिद्ध हुए। इनसे ही मानवीय सृष्टि हुई।) ⁠।।⁠ ८—१७ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘जगत्‌की सृष्टिका वर्णन’ नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ १७ ⁠।।

## अठारहवाँ अध्याय

### स्वायम्भुव मनुके वंशका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—मुने! स्वायम्भुव मनुसे उनकी तपस्विनी भार्या शतरूपाने प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र और एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न की। वह कमनीया कन्या (देवहूति) कर्दम ऋषिकी भार्या हुई। राजा प्रियव्रतसे सम्राट् कुक्षि और विराट नामक सामर्थ्यशाली पुत्र उत्पन्न हुए। उत्तानपादसे सुरुचिके गर्भसे उत्तमनामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सुनीतिके गर्भसे ध्रुवका जन्म हुआ। हे मुने! कुमार ध्रुवने सुन्दर कीर्ति बढ़ानेके लिये तीन\* हजार दिव्य वर्षोंतक तप किया। उसपर प्रसन्न होकर भगवान् विष्णुने उसे सप्तर्षियोंके आगे स्थिर स्थान (ध्रुवपद) दिया। ध्रुवके इस अभ्युदयको देखकर शुक्राचार्यने उनके सुयशका सूचक यह श्लोक पढ़ा—‘अहो! इस ध्रुवकी तपस्याका कितना प्रभाव है, इसका शास्त्र-ज्ञान कितना अद्भुत है, जिसे आज सप्तर्षि भी आगे करके स्थित हैं।’ उस ध्रुवसे उनकी पत्नी शम्भुने श्लिष्टि और भव्य नामक पुत्र उत्पन्न किये। श्लिष्टिसे उसकी पत्नी सुच्छायाने क्रमशः रिपु, रिपुंजय, पुष्य, वृकल और वृकतेजा—इन पाँच निष्पाप पुत्रोंको अपने गर्भमें धारण किया। रिपुके वीर्यसे बृहतीने चाक्षुष और सर्वतेजाको अपने गर्भमें स्थान दिया ⁠।।⁠ १—७ ⁠।।

चाक्षुषने वीरण प्रजापतिकी कन्या पुष्करिणीके गर्भसे मनुको जन्म दिया। मनुसे नड्‌वलाके गर्भसे दस उत्तम पुत्र उत्पन्न हुए। [उनके नाम ये हैं—] ऊरु, पूरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, कवि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न और अभिमन्यु। ऊरुके अंशसे आग्नेयीने अङ्ग, सुमना, स्वाति, क्रतु, अङ्गिरा और गय नामक महान् तेजस्वी छः पुत्र उत्पन्न किये। अङ्गसे सुनीथाने एक ही संतान वेनको जन्म दिया। वह प्रजाओंकी रक्षा न करके सदा पापमें ही लगा रहता था। उसे मुनियोंने कुशोंसे मार डाला। तदनन्तर ऋषियोंने संतानके लिये वेनके दायें हाथका मन्थन किया। हाथका मन्थन होनेपर राजा पृथु प्रकट हुए। उन्हें देखकर मुनियोंने कहा—‘ये महान् तेजस्वी राजा अवश्य ही समस्त प्रजाको आनन्दित करेंगे तथा महान् यश प्राप्त करेंगे।’ क्षत्रियवंशके पूर्वज वेन-कुमार राजा पृथु अपने तेजसे सबको दग्ध करते हुए-से धनुष और कवच धारण किये हुए ही प्रकट हुए थे; वे सम्पूर्ण प्रजाकी रक्षा करने लगे ⁠।।⁠ ८—१४ ⁠।।

राजसूय-यज्ञमें दीक्षित होनेवाले नरेशोंमें वे सबसे पहले भूपाल थे। उनसे दो पुत्र उत्पन्न हुए। स्तुतिकर्ममें निपुण अद्भुतकर्मा सूत और मागधोंने उनका स्तवन किया। वे प्रजाओंका रञ्जन करनेके कारण ‘राजा’ नामसे विख्यात हुए। उन्होंने प्रजाओंकी जीवन-रक्षाके निमित्त अन्नकी उपज बढ़ानेके लिये गोरूपधारिणी पृथ्वीका दोहन किया। उस समय एक साथ ही देवता, मुनिवृन्द, गन्धर्व, अप्सरागण, पितर, दानव, सर्प, लता, पर्वत और मनुष्यों आदिके द्वारा अपने-अपने विभिन्न पात्रोंमें दुही जानेवाली पृथिवीने सबको इच्छानुसार दूध दिया, जिससे सबने प्राण धारण किये। पृथुके जो दो धर्मज्ञ पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम थे अन्तर्धि और पालित। अन्तर्धान (अन्तर्धि)-के अंशसे उनकी शिखण्डिनी नामवाली पत्नीने ‘हविर्धान’ को जन्म दिया। अग्निकुमारी धिषणाने हविर्धानके अंशसे छः पुत्रोंको उत्पन्न किया। उनके नाम ये हैं—प्राचीनबर्हिष्, शुक्र, गय, कृष्ण, व्रज और अजिन। राजा प्राचीनबर्हिष् प्रायः यज्ञमें ही लगे रहते थे, जिससे उस समय पृथिवीपर दूर-दूरतक पूर्वाग्र कुश फैल गये थे। इससे वे ऐश्वर्यशाली राजा ‘प्राचीनबर्हिष्’ नामसे विख्यात हुए। वे एक महान् प्रजापति थे ⁠।।⁠ १५—२१ ⁠।।

प्राचीनबर्हिष्‌से उनकी पत्नी समुद्र-कन्या सवर्णाने दस पुत्रोंको अपने गर्भमें धारण किया। वे सभी ‘प्रचेता’ नामसे प्रसिद्ध हुए और सब-के-सब धनुर्वेदमें पारंगत थे। वे एक समान धर्मका आचरण करते हुए समुद्रके जलमें रहकर दस हजार वर्षोंतक महान् तपमें लगे रहे। अन्तमें भगवान् विष्णुसे प्रजापति होनेका वरदान पाकर वे संतुष्ट हो जलसे बाहर निकले। उस समय प्रायः समस्त भूमण्डल और आकाश बड़े-बड़े सघन वृक्षोंसे व्याप्त हो गया था। यह देख उन्होंने अपने मुखसे प्रकट अग्नि और वायुके द्वारा सब वृक्षोंको जला दिया। तब वृक्षोंका यह संहार देख राजा सोम इन प्रचेताओंके पास जाकर बोले— “आपलोग अपना कोप शान्त करें; ये वृक्षगण आपको एक ‘मारिषा’ नामवाली सुन्दरी कन्या अर्पण करेंगे। यह कन्या तपस्वी मुनि कण्डुके अंशसे प्रम्लोचा अप्सराके गर्भसे [स्वेद-बिन्दुके रूपमें] प्रकट हुई है। मैंने ही भविष्यकी बातें जानकर इसे कन्यारूपमें उत्पन्न कर पाला-पोसा है। इसके गर्भसे दक्ष उत्पन्न होंगे, जो प्रजाकी वृद्धि करेंगे” ⁠।।⁠ २२—२७ ⁠।।

प्रचेताओंने उस कन्याको ग्रहण किया। तत्पश्चात् उसके गर्भसे दक्ष उत्पन्न हुए। दक्षने चर, अचर, द्विपद और चतुष्पद आदि प्राणियोंकी मानसिक सृष्टि करके अन्तमें बहुत-सी स्त्रियोंको उत्पन्न किया। उनमेंसे दसको तो उन्होंने धर्मराजके अर्पण किया और तेरह कन्याएँ कश्यपको दीं। सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको, दो बहुपुत्रको और दो कन्याएँ अङ्गिराको दीं। पूर्वकालमें मानसिक संकल्पसे सृष्टि होती थी। उसके बाद उन दक्ष-कन्याओंसे मैथुनद्वारा देवता और नाग आदि प्रकट हुए। अब मैं धर्मराजसे उनकी दस पत्नियोंके गर्भसे जो संतानें हुईं, उस धर्मसर्गका वर्णन करूँगा। विश्वा नामवाली पत्नीसे विश्वेदेव प्रकट हुए। साध्याने साध्योंको जन्म दिया। मरुत्वतीसे मरुत्वान् और वसुसे वसुगण प्रकट हुए। भानुसे भानु और मुहूर्तासे मुहूर्त नामक पुत्र उत्पन्न हुए। धर्मराजके द्वारा लम्बासे घोष नामक पुत्र हुआ और यामि नामक पत्नीसे नागवीथी नामवाली कन्या उत्पन्न हुई। पृथिवीका सम्पूर्ण विषय भी मरुत्वतीसे ही प्रकट हुआ। संकल्पाके गर्भसे संकल्पोंकी सृष्टि हुई। चन्द्रमासे उनकी नक्षत्ररूपिणी पत्नियोंके गर्भसे आठ पुत्र हुए ⁠।।⁠ २८—३४ ⁠।।

उनके नाम ये हैं—आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु हैं। आपके वैतण्ड्य, श्रम, शान्त और मुनि नामक पुत्र हुए। ध्रुवका पुत्र लोकान्तकारी काल हुआ और सोमका पुत्र वर्चा हुआ। धरकी पत्नी मनोहराके गर्भसे द्रविण, हुतहव्यवह, शिशिर, प्राण और रमण उत्पन्न हुए। अनिलका पुत्र पुरोजव और अनल (अग्नि)-का अविज्ञात था। अग्निका पुत्र कुमार हुआ, जो सरकंडोंकी ढेरीपर उत्पन्न हुआ। उसके पीछे शाख, विशाख और नैगमेय नामक पुत्र हुए। कुमार कृत्तिकाके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण ‘कार्तिकेय’ कहलाये तथा कृत्तिकाके दूसरे पुत्र सनत्कुमार नामक यति हुए। प्रत्यूषसे देवलका जन्म हुआ और प्रभाससे विश्वकर्माका। ये विश्वकर्मा देवताओंके बढ़ई थे और हजारों प्रकारकी शिल्पकारीका काम करते थे। उनके ही निर्माण किये हुए शिल्प और भूषण आदिके सहारे आज भी मनुष्य अपनी जीविका चलाते हैं। सुरभीने कश्यपजीके अंशसे ग्यारह रुद्रोंको उत्पन्न किया तथा हे साधुश्रेष्ठ! सतीने अपनी तपस्या एवं महादेवजीके अनुग्रहसे सम्भावित होकर चार पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम हैं—अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा और रुद्र। त्वष्टाके पुत्र महायशस्वी श्रीमान् विश्वरूप हुए। हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, सर्प और कपाली—ये ग्यारह रुद्र प्रधान हैं। यों तो सैकड़ों-लाखों रुद्र हैं, जिनसे यह चराचर जगत् व्याप्त है ⁠।।⁠ ३५—४५ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘वैवस्वत मनुके वंशका वर्णन’ नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ १८ ⁠।।

## उन्नीसवाँ अध्याय

### कश्यप आदिके वंशका वर्णन

अग्निदेव बोले—हे मुने! अब मैं अदिति आदि दक्ष-कन्याओंसे उत्पन्न हुई कश्यपजीकी सृष्टिका वर्णन करता हूँ—चाक्षुष मन्वन्तरमें जो तुषित नामक बारह देवता थे, वे ही पुनः इस वैवस्वत मन्वन्तरमें कश्यपके अंशसे अदितिके गर्भमें आये थे। वे विष्णु, शक्र (इन्द्र), त्वष्टा, धाता, अर्यमा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, भग और अंशु नामक बारह आदित्य[[8]](#footnote-8) हुए। अरिष्टनेमिकी चार पत्नियोंसे सोलह संतानें उत्पन्न हुईं। विद्वान् बहुपुत्रके [उनकी दो पत्नियोंसे कपिला, लोहिता आदिके भेदसे] चार प्रकारकी विद्युत्स्वरूपा कन्याएँ उत्पन्न हुईं। अङ्गिरा मुनिसे (उनकी दो पत्नियोंद्वारा) श्रेष्ठ ऋचाएँ हुईं तथा कृशाश्वके भी [उनकी दो पत्नियोंसे] देवताओंके दिव्य आयुध[[9]](#footnote-9) उत्पन्न हुए ⁠।।⁠ १—४ ⁠।।

जैसे आकाशमें सूर्यके उदय और अस्तभाव बारंबार होते रहते हैं, उसी प्रकार देवतालोग युग-युगमें (कल्प-कल्पमें) उत्पन्न [एवं विनष्ट] होते रहते हैं।[[10]](#footnote-10) कश्यपजीसे उनकी पत्नी दितिके गर्भसे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक पुत्र उत्पन्न हुए। फिर सिंहिका नामवाली एक कन्या भी हुई, जो विप्रचित्ति नामक दानवकी पत्नी हुई। उसके गर्भसे राहु आदिकी उत्पत्ति हुई, जो ‘सैंहिकेय’ नामसे विख्यात हुए। हिरण्यकशिपुके चार पुत्र हुए, जो अपने बल-पराक्रमके कारण विख्यात थे। इनमें पहला ह्राद, दूसरा अनुह्राद और तीसरे प्रह्राद हुए, जो महान् विष्णुभक्त थे और चौथा संह्राद था। ह्रादका पुत्र ह्रद हुआ। संह्रादके पुत्र आयुष्मान् शिवि और वाष्कल थे। प्रह्रादका पुत्र विरोचन हुआ और विरोचनसे बलिका जन्म हुआ। हे महामुने! बलिके सौ पुत्र हुए, जिनमें बाणासुर ज्येष्ठ था। पूर्वकल्पमें इस बाणासुरने भगवान् उमापतिको [भक्तिभावसे] प्रसन्न कर उन परमेश्वरसे यह वरदान प्राप्त किया था कि ‘मैं आपके पास ही विचरता रहूँगा।’ हिरण्याक्षके पाँच पुत्र थे—शम्बर, शकुनि, द्विमूर्धा, शङ्कु और आर्य। कश्यपजीकी दूसरी पत्नी दनुके गर्भसे सौ दानवपुत्र उत्पन्न हुए ⁠।।⁠ ५—११ ⁠।।

इनमें स्वर्भानुकी कन्या सुप्रभा थी और पुलोमा दानवकी पुत्री थी शची। उपदानवकी कन्या हयशिरा थी और वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा। पुलोमा और कालका—ये दो वैश्वानरकी कन्याएँ थीं। ये दोनों कश्यपजीकी पत्नी हुईं। इन दोनोंके करोड़ों पुत्र थे। प्रह्रादके वंशमें चार करोड़ ‘निवातकवच’ नामक दैत्य हुए। कश्यपजीकी ताम्रा नामवाली पत्नीसे छः पुत्र हुए। इनके अतिरिक्त काकी, श्येनी, भासी, गृध्रिका और शुचिग्रीवा आदि भी कश्यपजीकी भार्याएँ थीं, उनसे काक आदि पक्षी उत्पन्न हुए। ताम्राके पुत्र घोड़े और ऊँट थे। विनताके अरुण और गरुड़ नामक दो पुत्र हुए। सुरसासे हजारों साँप उत्पन्न हुए और कद्रूके गर्भसे भी शेष, वासुकि और तक्षक आदि सहस्रों नाग हुए। क्रोधवशाके गर्भसे दंशनशील दाँतवाले सर्प प्रकट हुए। धरासे जल-पक्षी उत्पन्न हुए। सुरभिसे गाय-भैंस आदि पशुओंकी उत्पत्ति हुई। इराके गर्भसे तृण आदि उत्पन्न हुए। खसासे यक्ष-राक्षस और मुनिके गर्भसे अप्सराएँ प्रकट हुईं। इसी प्रकार अरिष्टाके गर्भसे गन्धर्व उत्पन्न हुए। इस तरह कश्यपजीसे स्थावर-जङ्गम जगत्‌की उत्पत्ति हुई ⁠।।⁠ १२—१८ ⁠।।

इन सबके असंख्य पुत्र हुए। देवताओंने दैत्योंको युद्धमें जीत लिया। अपने पुत्रोंके मारे जानेपर दितिने कश्यपजीको सेवासे संतुष्ट किया। वह इन्द्रका संहार करनेवाले पुत्रको पाना चाहती थी; उसने कश्यपजीसे अपना वह अभिमत वर प्राप्त कर लिया। जब वह गर्भवती और व्रतपालनमें तत्पर थी, उस समय एक दिन भोजनके बाद बिना पैर धोये ही सो गयी। तब इन्द्रने यह छिद्र (त्रुटि या दोष) ढूँढ़कर उसके गर्भमें प्रविष्ट हो उस गर्भके टुकड़े-टुकड़े कर दिये; (किंतु व्रतके प्रभावसे उनकी मृत्यु नहीं हुई।) वे सभी अत्यन्त तेजस्वी और इन्द्रके सहायक उनचास मरुत् नामक देवता हुए। मुने! यह सारा वृत्तान्त मैंने सुना दिया। श्रीहरि-स्वरूप ब्रह्माजीने पृथुको नरलोकके राजपदपर अभिषिक्त करके क्रमशः दूसरोंको भी राज्य दिये—उन्हें विभिन्न समूहोंका राजा बनाया। अन्य सबके अधिपति (तथा परिगणित अधिपतियोंके भी अधिपति) साक्षात् श्रीहरि ही हैं ⁠।।⁠ १९—२२ ⁠।।

ब्राह्मणों और ओषधियोंके राजा चन्द्रमा हुए। जलके स्वामी वरुण हुए। राजाओंके राजा कुबेर हुए। द्वादश सूर्यों (आदित्यों)-के अधीश्वर भगवान् विष्णु थे। वसुओंके राजा पावक और मरुद्गणोंके स्वामी इन्द्र हुए। प्रजापतियोंके स्वामी दक्ष और दानवोंके अधिपति प्रह्राद हुए। पितरोंके यमराज और भूत आदिके स्वामी सर्वसमर्थ भगवान् शिव हुए तथा शैलों (पर्वतों)-के राजा हिमवान् हुए और नदियोंका स्वामी सागर हुआ। गन्धर्वोंके चित्ररथ, नागोंके वासुकि, सर्पोंके तक्षक और पक्षियोंके गरुड राजा हुए। श्रेष्ठ हाथियोंका स्वामी ऐरावत हुआ और गौओंका अधिपति साँड़। वनचर जीवोंका स्वामी शेर हुआ और वनस्पतियोंका प्लक्ष (पकड़ी)। घोड़ोंका स्वामी उच्चैःश्रवा हुआ। सुधन्वा पूर्व दिशाका रक्षक हुआ। दक्षिण दिशामें शङ्खपद और पश्चिममें केतुमान् रक्षक नियुक्त हुए। इसी प्रकार उत्तर दिशामें हिरण्यरोमक राजा हुआ। यह प्रतिसर्गका वर्णन किया गया ⁠।।⁠ २३—२९ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘प्रतिसर्गविषयक कश्यपवंशका वर्णन’ नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ १९ ⁠।।

## बीसवाँ अध्याय

### सर्गका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—मुने! (प्रकृतिसे) पहले महत्तत्त्वकी सृष्टि हुई, इसे ब्राह्मसर्ग समझना चाहिये। दूसरी तन्मात्राओंकी सृष्टि हुई, इसे भूतसर्ग कहा गया है। तीसरी वैकारिक सृष्टि है, इसे ऐन्द्रियकसर्ग कहते हैं। इस प्रकार यह बुद्धिपूर्वक प्रकट हुआ प्राकृतसर्ग तीन प्रकारका है। चौथे प्रकारकी सृष्टिको ‘मुख्यसर्ग’ कहते हैं। ‘मुख्य’ नाम है—स्थावरों (वृक्ष-पर्वत आदि)-का। जो ‘तिर्यक्स्रोता’ कहा गया है, अर्थात् जिससे पशु-पक्षियोंकी उत्पत्ति हुई है, वह तैर्यग्योन्य-सर्ग पाँचवाँ है। ऊर्ध्व स्रोताओंकी सृष्टिको देव-सर्ग कहते हैं, यह छठा सर्ग है। इसके पश्चात् अर्वाक्स्रोताओंकी सृष्टि हुई—यही सातवाँ मानव-सर्ग है। आठवाँ अनुग्रह-सर्ग है, जो सात्त्विक और तामस भी है। ये अन्तवाले पाँच ‘वैकृतसर्ग’ हैं और आरम्भके तीन ‘प्राकृतसर्ग’ कहे गये हैं। प्राकृत और वैकृत सर्ग तथा नवें प्रकारका कौमार-सर्ग—ये कुल नौ सर्ग ब्रह्माजीसे प्रकट हुए, जो इस जगत्‌के मूल कारण हैं। ख्याति आदि दक्ष-कन्याओंसे भृगु आदि महर्षियोंने ब्याह किया। कुछ लोग नित्य, नैमित्तिक और प्राकृत—इस भेदसे तीन प्रकारकी सृष्टि मानते हैं। जो प्रतिदिन होनेवाले अवान्तर-प्रलयसे प्रतिदिन जन्म लेते रहते हैं, वह ‘नित्यसर्ग’ कहा गया है ⁠।।⁠ १—८ ⁠।।

भृगुसे उनकी पत्नी ख्यातिने धाता-विधाता नामक दो देवताओंको जन्म दिया तथा लक्ष्मी नामकी कन्या भी उत्पन्न की, जो भगवान् विष्णुकी पत्नी हुईं। इन्द्रने अपने अभ्युदयके लिये इन्हींका स्तवन किया था। धाता और विधाताके क्रमशः प्राण और मृकण्डु नामक दो पुत्र हुए। मृकण्डुसे मार्कण्डेयका जन्म हुआ। उनसे वेदशिरा उत्पन्न हुए। मरीचिके सम्भूतिके गर्भसे पौर्णमास नामक पुत्र हुआ और अङ्गिराके स्मृतिके गर्भसे अनेक पुत्र तथा सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति नामक चार कन्याएँ हुईं। अत्रिके अंशसे अनसूयाने सोम, दुर्वासा और दत्तात्रेय नामक पुत्रोंको जन्म दिया। इनमें दत्तात्रेय महान् योगी थे। पुलस्त्य मुनिकी पत्नी प्रीतिके गर्भसे दत्तोलि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुलहसे क्षमाके गर्भसे सहिष्णु एवं सर्वपादिकका[[11]](#footnote-11) जन्म हुआ। क्रतुके सन्नतिसे बालखिल्य नामक साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए, जो अँगूठेके पोरुओंके बराबर और महान् तेजस्वी थे। वसिष्ठसे ऊर्जाके गर्भसे राजा, गात्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनघ, शुक्र और सुतपा—ये सात ऋषि प्रकट हुए ⁠।।⁠ ९—१५ ⁠।।

स्वाहा एवं अग्निसे पावक, पवमान और शुचि नामक पुत्र हुए। इसी प्रकार अजसे अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, अनग्नि एवं साग्नि पितर हुए। पितरोंसे स्वधाके गर्भसे मेना और वैधारिणी नामक दो कन्याएँ हुईं। अधर्मकी पत्नी हिंसा हुई; उन दोनोंसे अमृत नामक पुत्र और निकृति नामवाली कन्याकी उत्पत्ति हुई। (इन दोनोंने परस्पर विवाह किया और) इनसे भय तथा नरकका जन्म हुआ। क्रमशः माया और वेदना इनकी पत्नियाँ हुईं। इनमेंसे मायाने (भयके सम्पर्कसे) समस्त प्राणियोंके प्राण लेनेवाले मृत्युको जन्म दिया और वेदनाने नरकके संयोगसे दुःख नामक पुत्र उत्पन्न किया। इसके पश्चात् मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोधकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजीसे एक रोता हुआ पुत्र हुआ, जो रुदन करनेके कारण ‘रुद्र’ नामसे प्रसिद्ध हुआ। तथा हे द्विज! उन पितामह (ब्रह्माजी)-ने उसे भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव आदि नामोंसे पुकारा। रुद्रकी पत्नी सतीने अपने पिता दक्षपर कोप करनेके कारण देहत्याग किया और हिमवान्‌की कन्या-रूपमें प्रकट होकर पुनः वे शंकरजीकी ही धर्मपत्नी हुईं। किसी समय नारदजीने ऋषियोंके प्रति विष्णु आदि देवताओंकी पूजाका विधान बतलाया था। स्नानादिपूर्वक की जानेवाली उन पूजाओंका विधिवत् अनुष्ठान करके स्वायम्भुव मनु आदिने भोग और मोक्ष—दोनों प्राप्त किये थे ⁠।।⁠ १६—२३ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘जगत्-सृष्टिका वर्णन’ नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ २० ⁠।।

## इक्कीसवाँ अध्याय

### विष्णु आदि देवताओंकी सामान्य पूजाका विधान

नारदजी बोले—अब मैं विष्णु आदि देवताओंकी सामान्य पूजाका वर्णन करता हूँ तथा समस्त कामनाओंको देनेवाले पूजा-सम्बन्धी मन्त्रोंको भी बतलाता हूँ। भगवान् विष्णुके पूजनमें सर्वप्रथम परिवारसहित भगवान् अच्युतको नमस्कार करके पूजन आरम्भ करे, इसी प्रकार पूजा-मण्डपके द्वारदेशमें क्रमशः दक्षिण-वाम भागमें धाता और विधाताका तथा गङ्गा और यमुनाका भी पूजन करे। फिर शङ्खनिधि और पद्मनिधि—इन दो निधियोंकी, द्वारलक्ष्मीकी, वास्तु-पुरुषकी तथा आधारशक्ति, कूर्म, अनन्त, पृथिवी, धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यकी पूजा करे। तदनन्तर अधर्म आदिका (अर्थात् अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्यका) पूजन करे तथा एक कमलकी भावना करके उसके मूल, नाल, पद्म, केसर और कर्णिकाओंकी पूजा करे। फिर ऋग्वेद आदि चारों वेदोंकी, सत्ययुग आदि युगोंकी, सत्त्व आदि गुणोंकी और सूर्य आदिके मण्डलकी पूजा करे। इसी प्रकार विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा आदि जो शक्तियाँ हैं, उनकी पूजा करे तथा प्रह्वी, सत्या, ईशा, अनुग्रहा, निर्मलमूर्ति दुर्गा, सरस्वती, गण (गणेश), क्षेत्रपाल और वासुदेव (संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध) आदिका पूजन करे। इनके बाद हृदय, सिर, चूडा (शिखा), वर्म (कवच), नेत्र आदि अङ्गोंकी, फिर शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म नामक अस्त्रोंकी, श्रीवत्स, कौस्तुभ एवं वनमालाकी तथा लक्ष्मी, पुष्टि, गरुड़ और गुरुदेवकी पूजा करे। तत्पश्चात् इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, जल (वरुण), वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा और अनन्त—इन दिक्पालोंकी, इनके अस्त्रोंकी, कुमुद आदि विष्णुपार्षदों या द्वारपालोंकी और विष्वक्सेनकी आवरण-मण्डल आदिमें पूजा आदि करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है ⁠।।⁠ १—८ ⁠।।

अब भगवान् शिवकी सामान्य पूजा बतायी जाती है—इसमें पहले नन्दीका पूजन करना चाहिये, फिर महाकालका। तदनन्तर क्रमशः दुर्गा, यमुना, गण आदिका, वाणी, श्री, गुरु, वास्तुदेव, आधारशक्ति आदि और धर्म आदिका अर्चन करे। फिर वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकरिणी, बलविकरिणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी तथा कल्याणमयी मनोन्मनी—इन नौ शक्तियोंका क्रमसे पूजन करे। ‘हां हं हां शिवमूर्तये नमः।’—इस मन्त्रसे हृदयादि अङ्ग और ईशान आदि मुखसहित शिवकी पूजा करे। ‘हौं शिवाय हौं।’ इत्यादिसे केवल शिवकी अर्चना करे और ‘हां’ इत्यादिसे ईशानादि[[12]](#footnote-12) पाँच मुखोंकी आराधना करे। ‘ह्रीं गौर्यै नमः।’ इससे गौरीका और ‘गं गणपतये नमः।’ इस मन्त्रसे गणपतिकी, नाम-मन्त्रोंसे इन्द्र आदि दिक्पालोंकी, चण्डकी और हृदय, सिर आदिकी भी पूजा करे ⁠।।⁠ ९—१२ ⁠।।

अब क्रमशः सूर्यकी पूजाके मन्त्र बताये जाते हैं। इसमें नन्दी सर्वप्रथम पूजनीय हैं। फिर क्रमशः पिङ्गल, उच्चैःश्रवा और अरुणकी पूजा करे। तत्पश्चात् प्रभूत, विमल, सोम, दोनों संध्याकाल, परसुख और स्कन्द आदिकी मध्यमें पूजा करे। इसके बाद दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता तथा सर्वतोमुखी—इन नौ शक्तियोंकी पूजा होनी चाहिये। तत्पश्चात् ‘ॐ ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाय सौराय पीठाय नमः।’ इस मन्त्रसे सूर्यके आसनका स्पर्श और पूजन करे। फिर ‘ॐ खं खखोल्काय नमः।’ इस मन्त्रसे सूर्यदेवकी मूर्तिकी उद्भावना करके उसका अर्चन करे। तत्पश्चात् ‘ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः।’ इस मन्त्रसे सूर्यदेवकी पूजा करे। इसके बाद हृदयादिका पूजन करे—‘ॐ आं नमः।’ इससे हृदयकी ‘ॐ अर्काय नमः।’ इससे सिरकी पूजा करे। इसी प्रकार अग्नि, ईश और वायुमें अधिष्ठित सूर्यदेवका भी पूजन करे। फिर ‘ॐ भूर्भुवः स्वः ज्वालिन्यै शिखायै नमः।’ इससे शिखाकी, ‘ॐ हुं कवचाय नमः।’ इससे कवचकी, ‘ॐ भां नेत्राभ्यां नमः।’ इससे नेत्रकी और ‘ॐ रम् अर्कास्त्राय नमः।’ इससे अस्त्रकी पूजा करे। इसके बाद सूर्यकी शक्ति रानी संज्ञाकी तथा उनसे प्रकट हुई छायादेवीकी पूजा करे। फिर चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु—क्रमशः इन ग्रहोंका और सूर्यके प्रचण्ड तेजका पूजन करे। अब संक्षेपसे पूजन बतलाते हैं—देवताके आसन, मूर्ति, मूल, हृदय आदि अङ्ग और परिचारक इनकी ही पूजा होती है ⁠।।⁠ १३—१९ ⁠।।

भगवान् विष्णुके आसनका पूजन ‘ॐ श्रीं श्रीं श्रीधरो हरिः ह्रीं।’ इस मन्त्रसे करना चाहिये। इसी मन्त्रसे भगवान् विष्णुकी मूर्तिका भी पूजन करे। यह सर्वमूर्तिमन्त्र है। इसीको त्रैलोक्यमोहन मन्त्र भी कहते हैं। भगवान्‌के पूजनमें ‘ॐ क्लीं हृषीकेशाय नमः।’ ‘ॐ हुं विष्णवे नमः।’—इन मन्त्रोंका उपयोग करे। सम्पूर्ण दीर्घ स्वरोंके द्वारा हृदय आदिकी पूजा करे; जैसे—‘ॐ आं हृदयाय नमः।’ इससे हृदयकी, ‘ॐ ईं शिरसे नमः।’ इससे सिरकी, ‘ॐ ऊं शिखायै नमः।’ इससे शिखाकी, ‘ॐ एं कवचाय नमः।’ इससे कवचकी, ‘ॐ ऐं नेत्राभ्यां नमः।’ इससे नेत्रोंकी और ‘ॐ औं अस्त्राय नमः।’ इससे अस्त्रकी पूजा करे। पाँचवीं अर्थात् परिचारकोंकी पूजा संग्राम आदिमें विजय आदि देनेवाली है। परिचारकोंमें चक्र, गदा, शङ्ख, मुसल, खड्ग, शार्ङ्गधनुष, पाश, अंकुश, श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, ‘श्रीं’ इस बीजसे युक्त श्री—महालक्ष्मी, गरुड, गुरुदेव और इन्द्रादि देवताओंका पूजन किया जाता है। (इनके पूजनमें प्रणवसहित नामके आदि अक्षरमें अनुस्वार लगाकर चतुर्थी विभक्तियुक्त नामके अन्तमें ‘नमः’ जोड़ना चाहिये। जैसे ‘ॐ चं चक्राय नमः।’ ‘ॐ गं गदायै नमः ⁠।’ इत्यादि) सरस्वतीके आसनकी पूजामें ‘ॐ ऐं देव्यै सरस्वत्यै नमः।’ इस मन्त्रका उपयोग करे और उनकी मूर्तिके पूजनमें ‘ॐ ह्रीं देव्यै सरस्वत्यै नमः।’ इस मन्त्रसे काम ले। हृदय आदिके लिये पूर्ववत् मन्त्र हैं। सरस्वतीके परिचारकोंमें लक्ष्मी, मेधा, कला, तुष्टि, पुष्टि, गौरी, प्रभा, मति, दुर्गा, गण, गुरु और क्षेत्रपालकी पूजा करे ⁠।।⁠ २०—२४ ⁠।।

तथा ‘ॐ गं गणपतये नमः।’—इस मन्त्रसे गणेशकी, ‘ॐ ह्रीं गौर्यै नमः।’ इस मन्त्रसे गौरीकी, ‘ॐ श्रीं श्रियै नमः।’ इससे श्रीकी, ‘ॐ ह्रीं त्वरितायै नमः।’ इस मन्त्रसे त्वरिताकी, ‘ॐ ऐं क्लीं सौं त्रिपुरायै नमः।’ इस मन्त्रसे त्रिपुराकी पूजा करे। इस प्रकार ‘त्रिपुरा’ शब्द भी चतुर्थी विभक्त्यन्त हो और अन्तमें ‘नमः’ शब्दका प्रयोग हो। जिन देवताओंके लिये कोई विशेष मन्त्र नहीं बतलाया गया है, उनके नामके आदिमें प्रणव लगावे। नामके आदि अक्षरमें अनुस्वार लगाकर उसे बीजके रूपमें रखे तथा पूर्ववत् नामके अन्तमें चतुर्थी विभक्ति और ‘नमः’ शब्द जोड़ ले। पूजन और जपमें प्रायः सभी मन्त्र ‘ॐकारयुक्त बताये गये हैं।

अन्तमें तिल और घी आदिसे होम करे। इस प्रकार ये देवता और मन्त्र धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष—चारों पुरुषार्थ देनेवाले हैं। जो पूजाके इन मन्त्रोंका पाठ करेगा, वह समस्त भोगोंका उपभोग कर अन्तमें देवलोकको प्राप्त होगा ⁠।।⁠ २५—२७ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘विष्णु आदि देवताओंकी सामान्य पूजाके विधानका वर्णन’ नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ २१ ⁠।।

## बाईसवाँ अध्याय

### पूजाके अधिकारकी सिद्धिके लिये सामान्यतः स्नान-विधि

नारदजी बोले—विप्रवरो! पूजन आदि क्रियाओंके लिये पहले स्नान-विधिका वर्णन करता हूँ। पहले नृसिंह-सम्बन्धी बीज या मन्त्रसे[[13]](#footnote-13) मृत्तिका हाथमें ले। उसे दो भागोंमें विभक्त कर एक भागके द्वारा (नाभिसे लेकर पैरोंतक लेपन करे, फिर दूसरे भागके द्वारा) अपने अन्य सब अङ्गोंमें लेपन कर मल-स्नान सम्पन्न करे। तदनन्तर शुद्ध स्नानके लिये जलमें डुबकी लगाकर आचमन करे। ‘नृसिंह’-मन्त्रसे न्यास करके आत्मरक्षा करे। इसके बाद (तन्त्रोक्त रीतिसे) विधि-स्नान करे[[14]](#footnote-14) और प्राणायामादिपूर्वक हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए ‘ॐ नमो नारायणाय’ इस अष्टाक्षर-मन्त्रसे हाथमें मिट्टी लेकर उसके तीन भाग करे। फिर नृसिंह-मन्त्रके जपपूर्वक (उन तीनों भागोंसे तीन बार) दिग्बन्ध[[15]](#footnote-15) करे। इसके बाद ‘ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।’ इस वासुदेव-मन्त्रका जप करके संकल्पपूर्वक तीर्थ-जलका स्पर्श करे। फिर वेद आदिके मन्त्रोंसे अपने शरीरका और आराध्यदेवकी प्रतिमा या ध्यानकल्पित विग्रहका मार्जन करे। इसके बाद अघमर्षण-मन्त्रका जपकर वस्त्र पहनकर आगेका कार्य करे। पहले अङ्गन्यास कर मार्जन-मन्त्रोंसे मार्जन करे। इसके बाद हाथमें जल लेकर नारायण-मन्त्रसे प्राण-संयम करके जलको नासिकासे लगाकर सूँघे। फिर भगवान्‌का ध्यान करते हुए जलका परित्याग कर दे। इसके बाद अर्घ्य देकर (‘ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।’ इस) द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप करे। फिर अन्य देवता आदिका भक्तिपूर्वक तर्पण करे। योगपीठ आदिके क्रमसे दिक्पालतकके मन्त्रों और देवताओंका, ऋषियोंका, पितरोंका, मनुष्योंका तथा स्थावरपर्यन्त सम्पूर्ण भूतोंका तर्पण करके आचमन करे। फिर अङ्गन्यास करके अपने हृदयमें मन्त्रोंका उपसंहार कर पूजन-मन्दिरमें प्रवेश करे। इसी प्रकार अन्य पूजाओंमें भी मूल आदि मन्त्रोंसे स्नान-कार्य सम्पन्न करे ⁠।।⁠ १—९ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘पूजाके लिये सामान्यतः स्नान-विधिका वर्णन’ नामक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ २२ ⁠।।

## तेईसवाँ अध्याय

### देवताओं तथा भगवान् विष्णुकी सामान्य पूजा-विधि

नारदजी बोले—ब्रह्मर्षियो! अब मैं पूजाकी विधिका वर्णन करूँगा, जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। हाथ-पैर धोकर, आसनपर बैठकर आचमन करे। फिर मौनभावसे रहकर सब ओरसे अपनी रक्षा करे। पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके स्वस्तिकासन या पद्मासन आदि कोई-सा आसन बाँधकर स्थिर बैठे और नाभिके मध्यभागमें स्थित धूएँके समान वर्णवाले, प्रचण्ड वायुरूप ‘यं’ बीजका चिन्तन करते हुए अपने शरीरसे सम्पूर्ण पापोंको भावनाद्वारा पृथक् करे। फिर हृदय-कमलके मध्यमें स्थित तेजकी राशिभूत ‘क्ष्रौं’ बीजका ध्यान करते हुए ऊपर, नीचे तथा अगल-बगलमें फैली हुई अग्निकी प्रचण्ड ज्वालाओंसे उस पापको जला डाले। इसके बाद बुद्धिमान् पुरुष आकाशमें स्थित चन्द्रमाकी आकृतिके समान किसी शान्त ज्योतिका ध्यान करे और उससे प्रवाहित होकर हृदय-कमलमें व्याप्त होनेवाली सुधामय सलिलकी धाराओंसे, जो सुषुम्ना-योनिके मार्गसे शरीरकी सब नाडियोंमें फैल रही हैं, अपने निष्पाप शरीरको आप्लावित करे। इस प्रकार शरीरकी शुद्धि करके तत्त्वोंका नाश करे। फिर हस्तशुद्धि करे। इसके लिये पहले दोनों हाथोंमें अस्त्र एवं व्यापकमुद्रा करे और दाहिने अँगूठेसे आरम्भ करके करतल और करपृष्ठतक न्यास करे ⁠।।⁠ १—६ ⁠।।

इसके बाद एक-एक अक्षरके क्रमसे बारह अङ्गोंवाले द्वादशाक्षर मूल-मन्त्रका अपने देहमें बारह मन्त्र-वाक्योंद्वारा न्यास करे। हृदय, सिर, शिखा, कवच, अस्त्र, नेत्र, उदर, पीठ, बाहु, ऊरु, घुटना, पैर—ये शरीरके बारह स्थान हैं, इनमें ही द्वादशाक्षरके एक-एक वर्णका न्यास करे। (यथा—ॐ ॐ नमः हृदये ⁠। ॐ नं नमः शिरसि ⁠। ॐ मों नमः शिखायाम् ⁠। इत्यादि)। फिर मुद्रा समर्पणकर भगवान् विष्णुका स्मरण करे और अष्टोत्तरशत (१०८) मन्त्रका जप करके पूजन करे ⁠।।⁠ ७-८ ⁠।।

बायें भागमें जलपात्र और दाहिने भागमें पूजाका सामान रखकर ‘अस्त्राय फट्।’ मन्त्रसे उसको धो दे; इसके पश्चात् गन्ध और पुष्प आदिसे युक्त दो अर्घ्यपात्र रखे। फिर हाथमें जल लेकर ‘अस्त्राय फट्।’ इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर योगपीठको सींच दे। उसके मध्य भागमें सर्वव्यापी चेतन ज्योतिर्मय परमेश्वर श्रीहरिका ध्यान करके उस योगपीठपर पूर्व आदि दिशाओंके क्रमसे धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अग्नि आदि दिक्पाल तथा अधर्म आदिके विग्रहकी स्थापना करे। उस पीठपर कच्छप, अनन्त, पद्म, सूर्य आदि मण्डल और विमला आदि शक्तियोंकी कमलके केसरके रूपमें और ग्रहोंकी कर्णिकामें स्थापना करे। पहले अपने हृदयमें ध्यान करे। फिर मण्डलमें आवाहन करके पूजन करे। (आवाहनके अनन्तर) क्रमशः अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदिको पुण्डरीकाक्ष-विद्या (‘ॐ नमो भगवते पुण्डरीकाक्षाय।’—इस मन्त्र)-से अर्पण करे ⁠।।⁠ ९—१४ ⁠।।

मण्डलके पूर्व आदि द्वारोंपर भगवान्‌के विग्रहकी सेवामें रहनेवाले पार्षदोंकी पूजा करे। पूर्वके दरवाजेपर गरुडकी, दक्षिणद्वारपर चक्रकी, उत्तरवाले द्वारपर गदाकी और ईशान तथा अग्निकोणमें शङ्ख एवं धनुषकी स्थापना करे। भगवान्‌के बायें-दायें दो तूणीर, बायें भागमें तलवार और चर्म (ढाल), दाहिने भागमें लक्ष्मी और वाम भागमें पुष्टि देवीकी स्थापना करे। भगवान्‌के सामने वनमाला, श्रीवत्स और कौस्तुभको स्थापित करे। मण्डलके बाहर दिक्पालोंकी स्थापना करे। मण्डलके भीतर और बाहर स्थापित किये हुए सभी देवताओंकी उनके नाम-मन्त्रोंसे पूजा करे। सबके अन्तमें भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये ⁠।।⁠ १५—१७ ⁠।।

अङ्गोंसहित पृथक्-पृथक् बीज-मन्त्रोंसे और सभी बीज-मन्त्रोंको एक साथ पढ़कर भी भगवान्‌का अर्चन करे। मन्त्र-जप करके भगवान्‌की परिक्रमा करे और स्तुतिके पश्चात् अर्घ्य-समर्पण कर हृदयमें भगवान्‌की स्थापना कर ले। फिर यह ध्यान करे कि ‘परब्रह्म भगवान् विष्णु मैं ही हूँ’ (—इस प्रकार अभेदभावसे चिन्तन करके पूजन करना चाहिये)। भगवान्‌का आवाहन करते समय ‘आगच्छ’ (भगवन्! आइये।) इस प्रकार पढ़ना चाहिये और विसर्जनके समय ‘क्षमस्व’ (हमारी त्रुटियोंको क्षमा कीजियेगा।)—ऐसी योजना करनी चाहिये ⁠।।⁠ १८-१९ ⁠।।

इस प्रकार अष्टाक्षर आदि मन्त्रोंसे पूजा करके मनुष्य मोक्षका भागी होता है। यह भगवान्‌के एक विग्रहका पूजन बताया गया। अब नौ व्यूहोंके पूजनकी विधि सुनो ⁠।।⁠ २० ⁠।।

दोनों अँगूठों और तर्जनी आदिमें वासुदेव, बलभद्र आदिका न्यास करे। इसके बाद शरीरमें अर्थात् सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य अङ्ग, जानु और चरण आदि अङ्गोंमें न्यास करे। फिर मध्यमें एवं पूर्व आदि दिशाओंमें पूजन करे। इस प्रकार एक पीठपर एक व्यूहके क्रमसे पूर्ववत् नौ व्यूहोंके लिये नौ पीठोंकी स्थापना करे। नौ कमलोंमें नौ मूर्तियोंके द्वारा पूर्ववत् नौ व्यूहोंका पूजन करे। कमलके मध्यभागमें जो भगवान्‌का स्थान है, उसमें वासुदेवकी पूजा करे ⁠।।⁠ २१—२३ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘सामान्य पूजा-विषयक वर्णन’ नामक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुअ ⁠।।⁠ २३ ⁠।।

## चौबीसवाँ अध्याय

### कुण्ड-निर्माण एवं अग्नि-स्थापन-सम्बन्धी कार्य आदिका वर्णन

नारदजी कहते हैं—महर्षियो! अब मैं अग्नि-सम्बन्धी कार्यका वर्णन करूँगा, जिससे मनुष्य सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंका भागी होता है। चौबीस अङ्गुलकी चौकोर भूमिको सूतसे नापकर चिह्न बना दे। फिर उस क्षेत्रको सब ओरसे बराबर खोदे। दो अङ्गुल भूमि चारों ओर छोड़कर खोदे हुए कुण्डकी मेखला बनावे। मेखलाएँ तीन होती हैं, जो ‘सत्त्व, रज और तम’ नामसे कही गयी हैं। उनका मुख पूर्व, अर्थात् बाह्य दिशाकी ओर रहना चाहिये। मेखलाओंकी अधिकतम ऊँचाई बारह अङ्गुलकी रखे, अर्थात् भीतरकी ओरसे पहली मेखलाकी ऊँचाई बारह अङ्गुल रहनी चाहिये। (उसके बाह्यभागमें दूसरी मेखलाकी ऊँचाई आठ अङ्गुलकी और उसके भी बाह्यभागमें तीसरी मेखलाकी ऊँचाई चार अङ्गुलकी रहनी चाहिये।) इसकी चौड़ाई क्रमशः आठ, दो और चार अङ्गुलकी होती है ⁠।।⁠ १—३ ⁠।।[[16]](#footnote-16)

योनि सुन्दर बनायी जाय। उसकी लंबाई दस अङ्गुलकी हो। वह आगे-आगेकी ओर क्रमशः छः, चार और दो अङ्गुल ऊँची रहे अर्थात् उसका पिछला भाग छः अङ्गुल, उससे आगेका भाग चार अङ्गुल और उससे भी आगेका भाग दो अङ्गुल ऊँचा होना चाहिये। योनिका स्थान कुण्डकी पश्चिम दिशाका मध्यभाग है। उसे आगेकी ओर क्रमशः नीची बनाना चाहिये। उसकी आकृति पीपलके पत्तेकी-सी होनी चाहिये। उसका कुछ भाग कुण्डमें प्रविष्ट रहना चाहिये। योनिका आयाम चार अङ्गुलका रहे और नाल पंद्रह अङ्गुल बड़ा हो। योनिका मूलभाग तीन अङ्गुल और उससे आगेका भाग छः अङ्गुल विस्तृत हो। यह एक हाथ लंबे-चौड़े कुण्डका लक्षण कहा गया है। दो हाथ या तीन हाथके कुण्डमें नियमानुसार सब वस्तुएँ तदनुरूप द्विगुण या त्रिगुण बढ़ जायँगी ⁠।।⁠ ४—६ ⁠।।[[17]](#footnote-17)

अब मैं एक या तीन मेखलावाले गोल और अर्धचन्द्राकार आदि कुण्डोंका वर्णन करता हूँ। चौकोर कुण्डके आधे भाग, अर्थात् ठीक बीचो-बीचमें सूत रखकर उसे किसी कोणकी सीमातक ले जाय; मध्यभागसे कोणतक ले जानेमें सामान्य दिशाओंकी अपेक्षा वह सूत जितना बढ़ जाय, उसके आधे भागको प्रत्येक दिशामें बढ़ाकर स्थापित करे और मध्यस्थानसे उन्हीं बिन्दुओंपर सूतको सब ओर घुमावे तो गोल आकार बन जायगा।[[18]](#footnote-18) कुण्डार्धसे बढ़ा हुआ जो कोणभागार्ध है, उसे उत्तर दिशामें बढ़ाये तथा उसी सीधमें पूर्व और पश्चिम दिशामें भी बाहरकी ओर यत्नपूर्वक बढ़ाकर चिह्न कर दे। फिर मध्यस्थानमें सूतका एक सिरा रखकर दूसरा छोर पूर्व दिशावाले चिह्नपर रखे और उसे दक्षिणकी ओरसे घुमाते हुए पश्चिम दिशाके चिह्नतक ले जाय। इससे अर्धचन्द्राकार चिह्न बन जायगा। फिर उस क्षेत्रको खोदनेपर सुन्दर अर्धचन्द्र-कुण्ड तैयार हो जायगा ⁠।।⁠ ७—९ ⁠।।[[19]](#footnote-19)

कमलकी आकृतिवाले गोल कुण्डकी मेखलापर दलाकार चिह्न बनाये जायँ। होमके लिये एक सुन्दर स्रुक् तैयार करे, जो अपने बाहुदण्डके बराबर हो। उसके दण्डका मूलभाग चतुरस्र हो। उसका माप सात या पाँच अङ्गुलका बताया गया है। उस चतुरस्रके तिहाई भागको खुदवाकर गर्त बनावे। उसके मध्यभागमें उत्तम शोभायमान वृत्त हो। उक्त गर्तको नीचेसे ऊपरतक तथा अगल-बगलमें बराबर खुदावे। बाहरका अर्धभाग छीलकर साफ करा दे (उसपर रंदा करा दे)। चारों ओर चौथाई अङ्गुल, जो शेषके आधेका आधा भाग है, भीतरसे भी छीलकर साफ (चिकना) करा दे। शेषार्धभागद्वारा उक्त खातकी सुन्दर मेखला बनवावे। मेखलाके भीतरी भागमें उस खातका कण्ठ तैयार करावे, जिसका सारा विस्तार मेखलाकी तीन चौथाईके बराबर हो। कण्ठकी चौड़ाई एक या डेढ़ अङ्गुलके मापकी हो। उक्त स्रुक्‌के अग्रभागमें उसका मुख रहे, जिसका विस्तार चार या पाँच अङ्गुलका हो ⁠।।⁠ १०—१४ ⁠।।

मुखका मध्य भाग तीन या दो अङ्गुलका हो। उसे सुन्दर एवं शोभायमान बनाया जाय। उसकी लंबाई भी चौड़ाईके ही बराबर हो। उस मुखका मध्य भाग नीचा और परम सुन्दर होना चाहिये। स्रुक्‌के कण्ठदेशमें एक ऐसा छेद रहे, जिसमें कनिष्ठिका अङ्गुलि प्रविष्ट हो जाय। कुण्ड (अर्थात् स्रुक्‌के मुख)-का शेष भाग अपनी रुचिके अनुसार विचित्र शोभासे सम्पन्न किया जाय। स्रुक्‌के अतिरिक्त एक स्रुवा भी आवश्यक है, जिसकी लंबाई दण्डसहित एक हाथकी हो। उसके डंडेको गोल बनाया जाय। उस गोल डंडेकी मोटाई दो अङ्गुलकी हो। उसे खूब सुन्दर बनाना चाहिये। स्रुवाका मुख-भाग कैसा हो? यह बताया जाता है। थोड़ी-सी कीचड़में गाय अथवा बछड़ेका पैर पड़नेपर जैसा पदचिह्न उभर आता है, ठीक वैसा ही स्रुवाका मुख बनाया जाय, अर्थात् उस मुखका मध्य भाग दो भागोंमें विभक्त रहे। उपर्युक्त अग्निकुण्डको गोबरसे लीपकर उसके भीतरकी भूमिपर बीचमें एक अङ्गुल मोटी एक रेखा खींचे, जो दक्षिणसे उत्तरकी ओर गयी हो। उस रेखाको ‘वज्र’ की संज्ञा दी गयी है। उस प्रथम उत्तराग्र रेखापर उसके दक्षिण और उत्तर पार्श्वमें दो पूर्वाग्र रेखाएँ खींचे। इन दोनों रेखाओंके बीचमें पुनः तीन पूर्वाग्र रेखाएँ खींचे। इनमें पहली रेखा दक्षिण भागमें हो और शेष दो क्रमशः उसके उत्तरोत्तर भागमें खींची जायँ। मन्त्रज्ञ पुरुष इस प्रकार उल्लेखन (रेखाकरण) करके उस भूमिका अभ्युक्षण (सेचन) करे। फिर प्रणवके उच्चारणपूर्वक भावनाद्वारा एक विष्टर (आसन)-की कल्पना करके उसके ऊपर वैष्णवी शक्तिका आवाहन एवं स्थापन करे ⁠।।⁠ १५—२० ⁠।।

देवीके स्वरूपका इस प्रकार ध्यान करे—‘वे दिव्य रूपवाली हैं और दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हैं।’ तत्पश्चात् यह चिन्तन करे कि ‘देवीको संतुष्ट करनेके लिये अग्निदेवके रूपमें साक्षात् श्रीहरि पधारे हैं।’ साधक (उन दोनोंका पूजन करके शुद्ध कांस्यादि-पात्रमें रखी और ऊपरसे शुद्ध कांस्यादि पात्रद्वारा ढकी हुई अग्निको लाकर, क्रव्याद-अंशको अलग करके, ईक्षणादिसे शोधित उस\*) अग्निको कुण्डके भीतर स्थापित करे। तत्पश्चात् उस अग्निमें प्रादेशमात्र (अँगूठेसे लेकर तर्जनीके अग्रभागके बराबरकी) समिधाएँ देकर कुशोंद्वारा तीन बार परिसमूहन करे। अग्निको लाकर, क्रव्याद-अंशको अलग करके, ईक्षणादिसे शोधित उस\*) अग्निको कुण्डके भीतर स्थापित करे। तत्पश्चात् उस अग्निमें प्रादेशमात्र (अँगूठेसे लेकर तर्जनीके अग्रभागके बराबरकी) समिधाएँ देकर कुशोंद्वारा तीन बार परिसमूहन करे। फिर पूर्वादि सभी दिशाओंमें कुशास्तरण करके अग्निकी उत्तर दिशामें पश्चिमसे आरम्भ करके क्रमशः पूर्वादि दिशामें पात्रासादन करे—समिधा, कुशा, स्रुक्, स्रुवा, आज्यस्थाली, चरुस्थाली तथा कुशाच्छादित घी, (प्रणीतापात्र, प्रोक्षणीपात्र) आदि वस्तुएँ रखे। इसके बाद प्रणीताको सामने रखकर उसे जलसे भर दे और कुशासे प्रणीताका जल लेकर प्रोक्षणीपात्रका प्रोक्षण करे। तदनन्तर उसे बायें हाथमें लेकर दाहिने हाथमें गृहीत प्रणीताके जलसे भर दे। प्रणीता और हाथके बीचमें पवित्रीका अन्तर रहना चाहिये। प्रोक्षणीमें गिराते समय प्रणीताके जलको भूमिपर नहीं गिरने देना चाहिये। प्रोक्षणीमें अग्निदेवका ध्यान करके उसे कुण्डकी योनिके समीप अपने सामने रखे। फिर उस प्रोक्षणीके जलसे आसादित वस्तुओंको तीन बार सींचकर समिधाओंके बोझको खोलकर उसके बन्धनको सरकाकर सामने रखे। प्रणीतापात्रमें पुष्प छोड़कर उसमें भगवान् विष्णुका ध्यान करके उसे अग्निसे उत्तर दिशामें कुशके ऊपर स्थापित कर दे (और अग्नि तथा प्रणीताके मध्य भागमें प्रोक्षणीपात्रको कुशापर रख दे) ⁠।।⁠ २१—२५ ⁠।।

तदनन्तर आज्यस्थालीको घीसे भरकर अपने आगे रखे। फिर उसे आगपर चढ़ाकर सम्प्लवन एवं उत्पवनकी क्रियाद्वारा घीका संस्कार करे। (उसकी विधि इस प्रकार है—) प्रादेशमात्र लंबे दो कुश हाथमें ले। उनके अग्रभाग खण्डित न हुए हों तथा उनके गर्भमें दूसरा कुश अङ्‌कुरित न हुआ हो। दोनों हाथोंको उत्तान रखे और उनके अङ्गुष्ठ एवं कनिष्ठिका अङ्गुलिसे उन कुशोंको पकड़े रहे। इस तरह उन कुशोंद्वारा घीको थोड़ा-थोड़ा उठाकर ऊपरकी ओर तीन बार उछाले। प्रज्वलित तृण आदि लेकर घीको देखे और उसमें कोई अपद्रव्य (खराब वस्तु) हो तो उसे निकाल दे। इसके बाद तृण अग्निमें फेंककर उस घीको आगपरसे उतार ले और सामने रखे। फिर स्रुक् और स्रुवाको लेकर उनके द्वारा होम-सम्बन्धी कार्य करे। पहले जलसे उनको धो ले। फिर अग्निसे तपाकर सम्मार्जन कुशोंद्वारा उनका मार्जन करे (उन कुशोंके अग्रभागोंद्वारा स्रुक्-स्रुवाके भीतरी भागका तथा मूल भागसे उनके बाह्य भागका मार्जन करना चाहिये)। तत्पश्चात् पुनः उन्हें जलसे धोकर आगसे तपावे और अपने दाहिने भागमें स्थापित कर दे। उसके बाद साधक प्रणवसे ही अथवा देवताके नामके आदिमें ‘प्रणव’ तथा अन्तमें ‘नमः’ पद लगाकर उसके उच्चारणपूर्वक होम करे ⁠।।⁠ २६—२९ ⁠।।

हवनसे पहले अग्निके गर्भाधानसे लेकर सम्पूर्ण संस्कार अङ्ग-व्यवस्थाके अनुसार सम्पन्न करने चाहिये। मतान्तरके अनुसार नामान्तव्रत, व्रतबन्धान्तव्रत (यज्ञोपवीतान्त), समावर्तनान्त अथवा यज्ञाधिकारान्त संस्कार अङ्गानुसार करने चाहिये। साधक सर्वत्र प्रणवका उच्चारण करते हुए पूजनोपचार अर्पित करे और अपने वैभवके अनुसार प्रत्येक संस्कारके लिये अङ्ग-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा होम करे। पहला गर्भाधान-संस्कार है, दूसरा पुंसवन, तीसरा सीमन्तोन्नयन, चौथा जातकर्म, पाँचवाँ नामकरण, छठा चूडाकरण, सातवाँ व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत), आठवाँ वेदारम्भ, नवाँ समावर्तन तथा दसवाँ पत्नीसंयोग (विवाह-) संस्कार है, जो यज्ञके लिये अधिकार प्रदान करनेवाला है। क्रमशः एक-एक संस्कार-कर्मका चिन्तन और तदनुरूप पूजन करते हुए हृदय आदि अङ्ग-मन्त्रोंद्वारा प्रति कर्मके लिये आठ-आठ आहुतियाँ अर्पित करे\* ⁠।।⁠ ३०—३५ ⁠।।

तदनन्तर साधक मूलमन्त्रद्वारा स्रुवासे पूर्णाहुति दे। उस समय मन्त्रके अन्तमें ‘वौषट्’ पद लगाकर प्लुतस्वरसे सुस्पष्ट मन्त्रोच्चारण करना चाहिये। इस तरह वैष्णव-अग्निका संस्कार करके उसपर विष्णु-देवताके निमित्त चरु पकावे। वेदीपर भगवान् विष्णुकी स्थापना एवं आराधना करके मन्त्रोंका स्मरण करते हुए उनका पूजन करे। अङ्ग और आवरण-देवताओंसहित इष्टदेव श्रीहरिको आसन आदि उपचार अर्पित करते हुए उत्तम रीतिसे उनकी पूजा करनी चाहिये। फिर गन्ध-पुष्पोंद्वारा अर्चना करके सुरश्रेष्ठ नारायणदेवका ध्यान करनेके अनन्तर अग्निमें समिधाका आधान करे और अग्नीश्वर श्रीहरिके समीप ‘आघार’ संज्ञक दो घृताहुतियाँ दे। इनमेंसे एकको तो वायव्यकोणमें दे और दूसरीको नैर्ऋत्यकोणमें। यही इनके लिये क्रम है। तत्पश्चात् ‘आज्यभाग’ नामक दो आहुतियाँ क्रमशः दक्षिण और उत्तर दिशामें दे और उनमें अग्निदेवके दायें-बायें नेत्रकी भावना करे। शेष सब आहुतियोंको इन्हींके बीचमें मन्त्रोच्चारणपूर्वक देना चाहिये। जिस क्रमसे देवताओंकी पूजा की गयी हो, उसी क्रमसे उनके लिये आहुति देनेका विधान है। घीसे इष्टदेवकी मूर्तिको तृप्त करे। इष्टदेव-सम्बन्धी हवन-संख्याकी अपेक्षा दशांशसे अङ्ग-देवताओंके लिये होम करे। घृत आदिसे, समिधाओंसे अथवा घृताक्त तिलोंसे सदा यजनीय देवताओंके लिये एक-एक सहस्र या एक-एक शत आहुतियाँ देनी चाहिये। इस प्रकार होमान्त-पूजन समाप्त करके स्नानादिसे शुद्ध हुए शिष्योंको गुरु बुलाकर अपने आगे बिठावे। वे सभी शिष्य उपवासव्रत किये हों। उनमें पाश-बद्ध पशुकी भावना करके उनका प्रोक्षण करे ⁠।।⁠ ३६—४२ ⁠।।

तदनन्तर उन सब शिष्योंको भावनाद्वारा अपने आत्मासे संयुक्त करके अविद्या और कर्मके बन्धनोंसे आबद्ध हो लिङ्गशरीरका अनुवर्तन करनेवाले चैतन्य (जीव)-का, जो लिङ्गशरीरके साथ बँधा हुआ है, ध्यानमार्गसे साक्षात्कार करके उसका सम्यक् प्रोक्षण करनेके पश्चात् वायुबीज (यं)-के द्वारा उसके शरीरका शोषण करे। इसके बाद अग्निबीज (रं)-के चिन्तनसे अग्नि प्रकट करके यह भावना करे कि ‘ब्रह्माण्ड’ संज्ञक सारी सृष्टि दग्ध होकर भस्मकी पर्वताकार राशिके समान स्थित है। तत्पश्चात् भावनाद्वारा ही जलबीज (वं)-के चिन्तनसे अपार जलराशि प्रकट करके उस भस्मराशिको बहा दे और संसार अब वाणीमात्रमें ही शेष रह गया है—ऐसा स्मरण करे। तदनन्तर वहाँ (लं) बीजस्वरूपा भगवान्‌की पार्थिवी शक्तिका न्यास करे। फिर ध्यानद्वारा देखे कि समस्त तन्मात्राओंसे आवृत शुभ पार्थिव-तत्त्व विराजमान है। उससे एक अण्ड प्रकट हुआ है, जो उसीके आधारपर स्थित है और वही उसका उपादान भी है। उस अण्डके भीतर प्रणवस्वरूपा मूर्तिका चिन्तन करे ⁠।।⁠ ४३—४७ ⁠।।

तदनन्तर अपने आत्मामें स्थित पूर्वसंस्कृत लिङ्गशरीरका उस पुरुषमें संक्रमण करावे, अर्थात् यह भावना करे कि वह पुरुष लिङ्गशरीरसे युक्त है। उसके उस शरीरमें सभी इन्द्रियोंके आकार पृथक्-पृथक् अभिव्यक्त हैं तथा वह पुरुष क्रमशः बढ़ता और पुष्ट होता जा रहा है। फिर ध्यानमें देखे कि वह अण्ड एक वर्षतक बढ़कर और पुष्ट होकर फूट गया है। उसके दो टुकड़े हो गये हैं। उसमें ऊपरवाला टुकड़ा द्युलोक है और नीचेवाला भूलोक। इन दोनोंके बीचमें प्रजापति पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ है। इस प्रकार वहाँ उत्पन्न हुए प्रजापतिका ध्यान करके पुनः प्रणवसे उन शिशुरूप प्रजापतिका प्रोक्षण करे। फिर यथास्थान पूर्वोक्त न्यास करके उनके शरीरको मन्त्रमय बना दे। उनके ऊपर विष्णुहस्त रखे और उन्हें वैष्णव माने। इस तरह एक अथवा बहुत-से लोगोंके जन्मका ध्यानद्वारा प्रत्यक्ष करे (शिष्योंके भी नूतन दिव्य जन्मकी भावना करे)। तदनन्तर मूलमन्त्रसे शिष्योंके दोनों हाथ पकड़कर मन्त्रोपदेष्टा गुरु नेत्रमन्त्र (वौषट्)-के उच्चारणपूर्वक नूतन एवं छिद्ररहित वस्त्रसे उनके नेत्रोंको बाँध दे। फिर देवाधिदेव भगवान्‌की यथोचित पूजा सम्पन्न करके तत्त्वज्ञ आचार्य हाथमें पुष्पाञ्जलि धारण करनेवाले उन शिष्योंको अपने पास पूर्वाभिमुख बैठावे ⁠।।⁠ ४८—५३ ⁠।।

इस प्रकार गुरुद्वारा दिव्य नूतन जन्म पाकर वे शिष्य भी श्रीहरिको पुष्पाञ्जलि अर्पित करके पुष्प आदि उपचारोंसे उनका पूजन करें। तदनन्तर पुनः वासुदेवकी अर्चना करके वे गुरुके चरणोंका पूजन करें। दक्षिणारूपमें उन्हें अपना सर्वस्व अथवा आधी सम्पत्ति समर्पित कर दें। इसके बाद गुरु शिष्योंको आवश्यक शिक्षा दें और वे (शिष्य) नाम-मन्त्रोंद्वारा श्रीहरिका पूजन करें। फिर मण्डलमें विराजमान शङ्ख, चक्र, गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्वक्सेनका यजन करें, जो द्वारपालके रूपमें अपनी तर्जनी अङ्गुलिसे लोगोंको तर्जना देते हुए अनुचित क्रियासे रोक रहे हैं। इसके बाद श्रीहरिकी प्रतिमाका विसर्जन करे। भगवान् विष्णुका सारा निर्माल्य विष्वक्सेनको अर्पित कर दे। तदनन्तर प्रणीताके जलसे अपना और अग्निकुण्डका अभिषेक करके वहाँके अग्निदेवको अपने आत्मामें लीन कर ले। इसके पश्चात् विष्वक्सेनका विसर्जन करे। ऐसा करनेसे भोगकी इच्छा रखनेवाला साधक सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुको पा लेता है और मुमुक्षु पुरुष श्रीहरिमें विलीन होता—सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है ⁠।।⁠ ५४—५८ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘कुण्डनिर्माण और अग्नि-स्थापनसम्बन्धी कार्य आदिका वर्णन’ विषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ २४ ⁠।।

## पचीसवाँ अध्याय

### वासुदेव, संकर्षण आदिके मन्त्रोंका निर्देश तथा एक व्यूहसे लेकर द्वादश व्यूहतकके व्यूहोंका एवं पञ्चविंश और षड्‌विंश व्यूहका वर्णन

नारदजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं वासुदेव आदिके आराधनीय मन्त्रोंका लक्षण बता रहा हूँ। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार व्यूह-मूर्तियोंके नामके आदिमें ॐ, फिर क्रमशः ‘अ आ अं अः’ ये चार बीज तथा ‘नमो भगवते’ पद जोड़ने चाहिये और अन्तमें ‘नमः’ पदको जोड़ देना चाहिये। ऐसा करनेसे इनके पृथक्-पृथक् चार मन्त्र बन जाते हैं।[[20]](#footnote-20) इसके बाद नारायण-मन्त्र है, जिसका स्वरूप है—‘ॐ नमो नारायणाय।’, ‘ॐ तत्सद् ब्रह्मणे ॐ नमः।’—यह ब्रह्ममन्त्र है। ‘ॐ विष्णवे नमः।’—यह विष्णुमन्त्र है। ‘ॐ क्ष्रौं ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमः।’—यह नरसिंहमन्त्र है। ‘ॐ भूर्नमो भगवते वराहाय।’—यह भगवान् वराहका मन्त्र है। ये सभी मन्त्रराज हैं। उपर्युक्त नौ मन्त्रोंके वासुदेव आदि नौ नायक हैं, जो उपासकोंके वल्लभ (इष्टदेवता) हैं। इनकी अङ्ग-कान्ति क्रमशः जवाकुसुमके सदृश अरुण, हल्दीके समान पीली, नीली, श्यामल, लोहित, मेघ-सदृश, अग्नितुल्य तथा मधुके समान पिङ्गल है। तन्त्रवेत्ता पुरुषोंको स्वरके बीजोंद्वारा क्रमशः पृथक्-पृथक् ‘हृदय’ आदि अङ्गोंकी कल्पना करनी चाहिये। उन बीजोंके अन्तमें अङ्गोंके नाम रहने चाहिये—(यथा—‘ॐ आं हृदयाय नमः ⁠। ॐ ईं शिरसे स्वाहा ⁠। ॐ ऊं शिखायै वषट्।’ इत्यादि) ⁠।।⁠ १—५ ⁠।।

जिनके आदिमें व्यञ्जन अक्षर होते हैं, उनके लक्षण अन्य प्रकारके हैं। दीर्घ स्वरोंके संयोगसे उनके भिन्न-भिन्न रूप होते हैं। उनके अन्तमें अङ्गोंके नाम होते हैं और उन अङ्ग-नामोंके अन्तमें ‘नमः’ आदि पद जुड़े होते हैं। (यथा—‘क्लां हृदयाय नमः ⁠। क्लीं शिरसे स्वाहा।’ इत्यादि।) ह्रस्व स्वरोंसे युक्त बीजवाले अङ्ग ‘उपाङ्ग’ कहलाते हैं। देवताके नाम-सम्बन्धी अक्षरोंको पृथक्-पृथक् करके, उनमेंसे प्रत्येकके अन्तमें बिन्द्वात्मक बीजका योग करके उनसे अङ्गन्यास करना भी उत्तम माना गया है। अथवा नामके आदि अक्षरको दीर्घ स्वरों एवं ह्रस्व स्वरोंसे युक्त करके अङ्ग-उपाङ्गकी कल्पना करे और उनके द्वारा क्रमशः न्यास करे। हृदय आदि अङ्गोंकी कल्पनाके लिये व्यञ्जनोंका यही क्रम है। देवताके मन्त्रका जो अपना स्वर-बीज है, उसके अन्तमें उसका अपना नाम देकर अङ्ग-सम्बन्धी नामोंद्वारा पृथक्-पृथक् वाक्यरचना करके उससे युक्त हृदयादि द्वादश अङ्गोंकी कल्पना करे। पाँचसे लेकर बारह अङ्गोंतकके न्यास-वाक्यकी कल्पना करके सिद्धिके अनुरूप उनका जप करे। हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र—ये छः अङ्ग हैं। मूलमन्त्रके बीजोंका इन अङ्गोंमें न्यास करना चाहिये। बारह अङ्ग ये हैं—हृदय, सिर, शिखा, हाथ, नेत्र, उदर, पीठ, बाहु, ऊरु, जानु, जङ्घा और पैर। इनमें क्रमशः न्यास करना चाहिये। ‘कं टं पं शं वैनतेयाय नमः।’—यह गरुडसम्बन्धी बीजमन्त्र है। ‘खं ठं फं षं गदायै नमः।’—यह गदा-मन्त्र है। ‘गं डं वं सं पुष्ट्यै नमः।’—यह पुष्टिदेवी-सम्बन्धी मन्त्र है। ‘घं टं भं हं श्रियै नमः।’—यह श्रीमन्त्र है। ‘चं णं मं क्षं’—यह पाञ्चजन्य (शङ्ख)-का मन्त्र है। ‘छं तं पं कौस्तुभाय नमः।’—यह कौस्तुभ-मन्त्र है। ‘जं खं वं सुदर्शनाय नमः।’—यह सुदर्शनचक्रका मन्त्र है। ‘सं वं दं लं श्रीवत्साय नमः।’—यह श्रीवत्स-मन्त्र है ⁠।।⁠ ६—१४ ⁠।।

‘ॐ वं वनमालायै नमः।’—यह वनमालाका और ‘ॐ पं० पद्मनाभाय नमः।’—यह पद्म या पद्मनाभका मन्त्र है। बीजरहित पदवाले मन्त्रोंका अङ्गन्यास उनके पदोंद्वारा ही करना चाहिये। नामसंयुक्त जात्यन्त[[21]](#footnote-21) पदोंद्वारा हृदय आदि पाँच अङ्गोंमें पृथक्-पृथक् न्यास करे। पहले प्रणवका उच्चारण, फिर हृदय आदि पूर्वोक्त पाँचों अङ्गोंके नाम; क्रम यह है। (उदाहरणके लिये यों समझना चाहिये—‘ॐ हृदयाय नमः।’ इत्यादि।) पहले प्रणव तथा हृदय-मन्त्रका उच्चारण करे। (अर्थात्—‘ॐ हृदयाय नमः’ कहकर हृदयका स्पर्श करे।) फिर ‘पराय शिरसे स्वाहा’ बोलकर मस्तकका स्पर्श करे। तत्पश्चात् इष्टदेवका नाम लेकर शिखाको छूये। अर्थात् ‘वासुदेवाय शिखायै वषट्।’—बोलकर शिखाका स्पर्श करे। इसके बाद ‘आत्मने कवचाय हुम्।’—बोलकर कवच-न्यास करे। पुनः देवताका नाम लेकर, अर्थात् ‘वासुदेवाय अस्त्राय फट्।’—बोलकर अस्त्र-न्यासकी क्रिया पूरी करे। आदिमें ‘ॐकारादि’ जो नामात्मक पद है, उसके अन्तमें ‘नमः’ पद जोड़ दे और उस नामात्मक पदको चतुर्थ्यन्त करके बोले। एक व्यूहसे लेकर पड्‌विंश व्यूहतकके लिये यह समान मन्त्र है। कनिष्ठासे लेकर सभी अङ्गुलियोंमें हाथके अग्रभागमें प्रकृतिका अपने शरीरमें ही पूजन करे। ‘पराय’ पदसे एकमात्र परम पुरुष परमात्माका बोध होता है। वही एकसे दो हो जाता है, अर्थात् प्रकृति और पुरुष—दो व्यूहोंमें अभिव्यक्त होता है। ‘ॐ परायाग्न्यात्मने नमः।’—यह व्यापक-मन्त्र है। वसु, अर्क (सूर्य) और अग्नि—ये त्रिव्यूहात्मक मूर्तियाँ हैं—इन तीनोंमें अग्निका न्यास करके हाथ और सम्पूर्ण शरीरमें व्यापक-न्यास करे ⁠।।⁠ १५—२० ⁠।।

वायु और अर्कका क्रमशः दायें और बायें दोनों हाथोंकी अँगुलियोंमें न्यास करे तथा हृदयमें मूर्तिमान् अग्निका चिन्तन करे। त्रिव्यूह-चिन्तनका यही क्रम है। चतुर्व्यूहमें चारों वेदोंका न्यास होता है। ऋग्वेदका सम्पूर्ण देह तथा हाथमें व्यापक-न्यास करना चाहिये। अङ्गुलियोंमें यजुर्वेदका, हथेलियोंमें अथर्ववेदका तथा हृदय और चरणोंमें शीर्षस्थानीय सामवेदका न्यास करे। पञ्चव्यूहमें पहले आकाशका पूर्ववत् शरीर और हाथमें व्यापक-न्यास करे। फिर अँगुलियोंमें भी आकाशका न्यास करके वायु, ज्योति, जल और पृथ्वीका क्रमशः मस्तक, हृदय, गुह्य और चरण—इन अङ्गोंमें न्यास करे। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन पाँच तत्त्वोंको ‘पञ्चव्यूह’ कहा गया है। मन, श्रवण, त्वचा, नेत्र, रसना और नासिका—इन छः इन्द्रियोंको षड्व्यूहकी संज्ञा दी गयी है। मनका व्यापक-न्यास करके शेष पाँचका अङ्गुष्ठ आदिके क्रमसे पाँचों अँगुलियोंमें तथा सिर, मुख, हृदय, गुह्य और चरण—इन पाँच अङ्गोंमें भी न्यास करे। यह ‘करणात्मक व्यूहका न्यास’ कहा गया है। आदिमूर्ति जीव सर्वत्र व्यापक है। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक—ये सात लोक ‘सप्तव्यूह’ कहे गये हैं। इनमेंसे प्रथम भूर्लोकका हाथ एवं सम्पूर्ण शरीरमें न्यास करे। भुवर्लोक आदि पाँच लोकोंका अङ्गुष्ठ आदिके क्रमसे पाँचों अङ्गुलियोंमें तथा सातवें सत्यलोकका हथेलीमें न्यास करे। इस प्रकार यह लोकात्मक सप्त व्यूह है, जिसका पूर्वोक्त क्रमसे शरीरमें न्यास किया जाता है। अब यज्ञात्मक सप्तव्यूहका परिचय दिया जाता है। सप्तयज्ञस्वरूप यज्ञपुरुष परमात्मदेव श्रीहरि सम्पूर्ण शरीर एवं सिर, ललाट, मुख, हृदय, गुह्य और चरणमें स्थित हैं, अर्थात् उन अङ्गोंमें उनका न्यास करना चाहिये। वे यज्ञ इस प्रकार हैं—अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम—ये छः यज्ञ तथा सातवें यज्ञात्मा—इन सात रूपोंको ‘यज्ञमय सप्तव्यूह’ कहा गया है ⁠।।⁠ २१—२८ ⁠।।

बुद्धि, अहंकार, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये आठ तत्त्व अष्टव्यूहरूप हैं। इनमेंसे बुद्धितत्त्वका हाथ और शरीरमें व्यापक-न्यास करे। फिर उपर्युक्त आठों तत्त्वोंका क्रमशः चरणोंके तलवों, मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य देश और पैर—इन आठ अङ्गोंमें न्यास करना चाहिये। इन सबको ‘अष्टव्यूहात्मक पुरुष’ कहा गया है। जीव, बुद्धि, अहंकार, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध-गुण—इनका समुदाय ‘नवव्यूह’ है। इनमेंसे जीवका दोनों हाथोंके अँगूठोंमें न्यास करे और शेष आठ तत्त्वोंका क्रमशः दाहिने हाथकी तर्जनीसे लेकर बायें हाथकी तर्जनीतक आठ अंगुलियोंमें न्यास करे। सम्पूर्ण देह, सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य, जानु और पाद—इन नौ स्थानोंमें उपर्युक्त नौ तत्त्वोंका न्यास करके इन्द्रका पूर्ववत् व्यापक-न्यास किया जाय तो यही ‘दशव्यूहात्मक न्यास’ हो जाता है ⁠।।⁠ २९—३३ ⁠।।

दोनों अङ्गुष्ठोंमें, तलद्वयमें, तर्जनी आदि आठ अँगुलियोंमें तथा सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य (उपस्थ और गुदा), जानुद्वय और पादद्वय—इन ग्यारह अङ्गोंमें ग्यारह इन्द्रियात्मक तत्त्वोंका जो न्यास किया जाता है, उसे ‘एकादशव्यूह-न्यास’ कहा गया है। वे ग्यारह तत्त्व इस प्रकार हैं—मन, श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, वाक्, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ। मनका व्यापक-न्यास करे। अङ्गुष्ठद्वयमें श्रवणेन्द्रियका न्यास करके शेष त्वचा आदि आठ तत्त्वोंका तर्जनी आदि आठ अँगुलियोंमें न्यास करना चाहिये। शेष जो ग्यारहवाँ तत्त्व (उपस्थ) है, उसका तलद्वयमें न्यास करे। मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, चरण, गुह्य, ऊरुद्वय, जङ्घा, गुल्फ और पैर—इन ग्यारह अङ्गोंमें भी पूर्वोक्त ग्यारह तत्त्वोंका क्रमशः न्यास करे। विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, केशव, नारायण, माधव और गोविन्द—यह ‘द्वादशात्मक व्यूह’ है। इनमेंसे विष्णुका तो व्यापक-न्यास करे और शेष भगवन्नामोंका अङ्गुष्ठ आदि दस अँगुलियों एवं करतलमें न्यास करके, फिर पादतल, दक्षिण पाद, दक्षिण जानु, दक्षिण कटि, सिर, शिखा, वक्ष, वाम कटि, मुख, वाम जानु और वाम पादादिमें भी न्यास करना चाहिये ⁠।।⁠ ३४—३९ ⁠।।

यह द्वादशव्यूह हुआ। अब पञ्चविंश एवं षड्‌विंश व्यूहका परिचय दिया जाता है। पुरुष, बुद्धि, अहंकार, मन, चित्त, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, वाक्, हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ, भूमि, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पचीस तत्त्व हैं। इनमेंसे पुरुषका सर्वाङ्गमें व्यापक-न्यास करके, दसका अङ्गुष्ठ आदिमें न्यास करे। शेषका करतल, सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य, ऊरु, जानु, पैर, उपस्थ, हृदय और मूर्धामें क्रमशः न्यास करे। इन्हींमें सर्वप्रथम परमपुरुष परमात्माको सम्मिलित करके उनका पूर्ववत् व्यापक-न्यास कर दिया जाय तो षड्‌विंश व्यूहका न्यास सम्पन्न हो जाता है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि अष्टदल-कमलचक्रमें प्रकृतिका चिन्तन करके उसका पूजन करे। उस कमलके पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दलोंमें हृदय आदि चार अङ्गोंका न्यास करे। अग्निकोण आदिके दलोंमें अस्त्र एवं वैनतेय (गरुड) आदिको पूर्ववत् स्थापित करे। इसी तरह पूर्वादि दिशाओंमें इन्द्रादि दिक्‌पालोंका चिन्तन करे। इन सबके ध्यान-पूजनकी विधि एक-सी है। (सूर्य, सोम और अग्निरूप) त्रिव्यूहमें अग्निका स्थान मध्यमें है। पूर्वादि दिशाओंके दलोंमें जिनका आवास है, उन देवताओंके साथ कमलकी कर्णिकामें नाभस (आकाशकी भाँति व्यापक आत्मा) तथा मानस (अन्तरात्मा) विराजमान हैं ⁠।।⁠ ४०—४८ ⁠।।

साधकको चाहिये कि वह सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये तथा राज्यपर विजय पानेके लिये विश्वरूप (परमात्मा)-का यजन करे। सम्पूर्ण व्यूहों, हृदय आदि पाँचों अङ्गों, गरुड आदि तथा इन्द्र आदि दिक्‌पालोंके साथ ही उन श्रीहरिकी पूजाका विधान है। ऐसा करनेवाला उपासक सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर सकता है। अन्तमें विष्वक्सेनकी नाम-मन्त्रसे पूजा करे। नामके साथ ‘रौं’ बीज लगा ले, अर्थात् ‘रौं विष्वक्सेनाय नमः।’ बोलकर उनके लिये पूजनोपचार अर्पित करे ⁠।।⁠ ४९-५० ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘वासुदेवादि मन्त्रोंके लक्षण [तथा न्यास]-का वर्णन’ नामक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ २५ ⁠।।

## छब्बीसवाँ अध्याय

### मुद्राओंके लक्षण

नारदजी कहते हैं—मुनिगण! अब मैं मुद्राओंका लक्षण बताऊँगा। सांनिध्य[[22]](#footnote-22) (संनिधापिनी) आदि[[23]](#footnote-23) मुद्राके प्रकार-भेद हैं। पहली मुद्रा अञ्जलि[[24]](#footnote-24) है, दूसरी वन्दनी[[25]](#footnote-25) है और तीसरी हृदयानुगा है। बायें हाथकी मुट्ठीसे दाहिने हाथके अँगूठेको बाँध ले और बायें अङ्गुष्ठको ऊपर उठाये रखे। सारांश यह है कि बायें और दाहिने—दोनों हाथोंके अँगूठे ऊपरकी ओर ही उठे रहें। यही ‘हृदयानुगा’ मुद्रा है। (इसीको कोई ‘संरोधिनी’[[26]](#footnote-26) और कोई ‘निष्ठुरा’[[27]](#footnote-27) कहते हैं)। व्यूहार्चनमें ये तीन मुद्राएँ साधारण हैं। अब आगे ये असाधारण (विशेष) मुद्राएँ बतायी जाती हैं। दोनों हाथोंमें अँगूठेसे कनिष्ठातककी तीन अँगुलियोंको नवाकर कनिष्ठा आदिको क्रमशः मुक्त करनेसे आठ मुद्राएँ बनती हैं। ‘अ क च ट त प य श’—ये जो आठ वर्ग हैं, उनके जो पूर्व बीज (अं कं चं टं इत्यादि) हैं, उनको ही सूचित करनेवाली उक्त आठ मुद्राएँ हैं—ऐसा निश्चय करे। फिर पाँचों अँगुलियोंको ऊपर करके हाथको सम्मुख करनेसे जो नवीं मुद्रा बनती है, वह नवम बीज (क्षं)-के लिये है ⁠।।⁠ १—४ ⁠।।

दाहिने हाथके ऊपर बायें हाथको उतान रखकर उसे धीरे-धीरे नीचेको झुकाये। यह वराहकी मुद्रा मानी गयी है। ये क्रमशः अङ्गोंकी मुद्राएँ हैं। बायीं मुट्ठीमें बँधी हुई एक-एक अँगुलीको क्रमशः मुक्त करे और पहलेकी मुक्त हुई अँगुलीको फिर सिकोड़ ले। बायें हाथमें ऐसा करनेके बाद दाहिने हाथमें भी यही क्रिया करे। बायीं मुट्ठीके अँगूठेको ऊपर उठाये रखे। ऐसा करनेसे मुद्राएँ सिद्ध होती हैं ⁠।।⁠ ५—७ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘मुद्रालक्षण-वर्णन’ नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ २६ ⁠।।

## सत्ताईसवाँ अध्याय

### शिष्योंको दीक्षा देनेकी विधिका वर्णन

नारदजी कहते हैं—महर्षिगण! अब मैं सब कुछ देनेवाली दीक्षाका वर्णन करूँगा। कमलाकार मण्डलमें श्रीहरिका पूजन करे। दशमी तिथिको समस्त यज्ञ-सम्बन्धी द्रव्यका संग्रह एवं संस्कार (शुद्धि) करके रख ले। नरसिंह-बीज-मन्त्र (क्ष्रौं)-से सौ बार उसे अभिमन्त्रित करके, उस मन्त्रके अन्तमें ‘फट्’ लगाकर बोले तथा राक्षसोंका विनाश करनेके उद्देश्यसे सब ओर सरसों छींटे। फिर वहाँ सर्वस्वरूपा प्रासादरूपिणी शक्तिका न्यास करे। सर्वौषधियोंका संग्रह करके बिखेरनेके उपयोगमें आनेवाली सरसों आदि वस्तुओंको शुभ पात्रमें रखकर साधक वासुदेव-मन्त्रसे उनका सौ बार अभिमन्त्रण करे। तदनन्तर वासुदेवसे लेकर नारायणपर्यन्त पूर्वोक्त पाँच मूर्तियों (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा नारायण)-के मूल-मन्त्रोंद्वारा पञ्चगव्य तैयार करे और कुशाग्रसे पञ्चगव्य छिड़ककर उस भूमिका प्रोक्षण करे। फिर वासुदेव-मन्त्रसे उत्तान हाथके द्वारा समस्त विकिर वस्तुओंको सब ओर बिखेरे। उस समय पूर्वाभिमुख खड़ा हो, मन-ही-मन भगवान् विष्णुका चिन्तन करते हुए तीन बार उन विकिर वस्तुओंको सब ओर छींटे। तत्पश्चात् वर्धनीसहित कलशपर स्थापित भगवान् विष्णुका अङ्गसहित पूजन करे। अस्त्र-मन्त्रसे वर्धनीको सौ बार अभिमन्त्रित करके अविच्छिन्न जलधारासे सींचते हुए उसे ईशानकोणकी ओर ले जाय। कलशको पीछे ले जाकर विकिरपर स्थापित करे। विकिर-द्रव्योंको कुशद्वारा एकत्र करके कुम्भेश और कर्करीका यजन करे ⁠।।⁠ १—८ ⁠।।

पञ्चरत्नयुक्त सवस्त्र वेदीपर श्रीहरिकी पूजा करे। अग्निमें भी उनकी अर्चना करके पूर्ववत् मन्त्रोंद्वारा उनका संतर्पण करे। तत्पश्चात् पुण्डरीक[[28]](#footnote-28)-मन्त्रसे उखा (पात्रविशेष)-का प्रक्षालन करके उसके भीतर सुगन्धयुक्त घी पोत दे। इसके बाद साधक उसमें गायका दूध भरकर वासुदेव-मन्त्रसे उसका अवेक्षण करे और संकर्षण-मन्त्रसे सुसंस्कृत किये गये दूधमें घृताक्त चावल छोड़ दे। इसके बाद प्रद्युम्न-मन्त्रसे करछुलद्वारा उस दूध और चावलका आलोडन करके धीरे-धीरे उसे उलाटे-पलाटे। जब खीर या चरु पक जाय, तब आचार्य अनिरुद्ध-मन्त्र पढ़कर उसे आगसे नीचे उतार दे। तदनन्तर उसपर जल छिड़के और घृतालेपन करके हाथमें भस्म लेकर उसके द्वारा नारायण-मन्त्रसे ललाट एवं पार्श्व-भागोंमें ऊर्ध्व-पुण्ड्र करे। इस प्रकार सुन्दर संस्कारयुक्त चरुके चार भाग करके एक भाग इष्टदेवको अर्पित करे, दूसरा भाग कलशको चढ़ावे, तीसरे भागसे अग्निमें तीन बार आहुति दे और चौथे भागको गुरु शिष्योंके साथ बैठकर खाय; इससे आत्मशुद्धि होती है। (दूसरे दिन एकादशीको) प्रातःकाल ऐसे वृक्षसे दाँतन ले, जो दूधवाला हो। उस दाँतनको नारायण-मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर ले। उसका दन्तशुद्धिके लिये उपयोग करके फिर उसे त्याग दे। अपने पातकका स्मरण करके पूर्व, अग्निकोण, उत्तर अथवा ईशानकोणकी ओर मुँह करके अच्छी तरह स्नान करे। फिर ‘शुभ’ एवं ‘सिद्ध’ की भावना करके, अर्थात् ‘मैं निष्पाप एवं शुद्ध होकर शुभ सिद्धिकी ओर अग्रसर हुआ हूँ’—ऐसा अनुभव करके आचमन-प्राणायामके पश्चात् मन्त्रोपदेष्टा गुरु भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करके उनकी परिक्रमाके पश्चात् पूजागृहमें प्रवेश करे ⁠।।⁠ ९—१७ ⁠।।

प्रार्थना इस प्रकार करे—‘देव! संसार-सागरमें मग्न पशुओंको पाशसे छुटकारा दिलानेके लिये आप ही शरणदाता हैं। आप सदा अपने भक्तोंपर वात्सल्यभाव रखते हैं। देवदेव! आज्ञा दीजिये, प्राकृत पाश-बन्धनोंसे बँधे हुए इन पशुओंको आज आपकी कृपासे मैं मुक्त करूँगा।’ देवेश्वर श्रीहरिसे इस प्रकार प्रार्थना करके पूजागृहमें प्रविष्ट हो, गुरु पूर्ववत् अग्नि आदिकी धारणाओंद्वारा शिष्यभूत समस्त पशुओंका शोधन करके संस्कार करनेके पश्चात्, उनका वासुदेवादि मूर्तियोंसे संयोग करे। शिष्योंके नेत्र बाँधकर उन्हें मूर्तियोंकी ओर देखनेका आदेश दे। शिष्य उन मूर्तियोंकी ओर पुष्पाञ्जलि फेंकें, तदनुसार गुरु उनका नाम-निर्देश करें। पूर्ववत् शिष्योंसे क्रमशः मूर्तियोंका मन्त्ररहित पूजन करावे। जिस शिष्यके हाथका फूल जिस मूर्तिपर गिरे, गुरु उस शिष्यका वही नाम रखे। कुमारी कन्याके हाथसे काता हुआ लाल रंगका सूत लेकर उसे छः गुना करके बट दे। उस छः गुने सूतकी लंबाई पैरके अँगूठेसे लेकर शिखातककी होनी चाहिये। फिर उसे भी मोड़कर तिगुना कर ले। उक्त त्रिगुणित सूतमें प्रक्रिया-भेदसे स्थित उस प्रकृति देवीका चिन्तन करे, जिसमें सम्पूर्ण विश्वका लय होता है और जिससे ही समस्त जगत्‌का प्रादुर्भाव हुआ करता है। उस सूत्रमें प्राकृतिक पाशोंको तत्त्वकी संख्याके अनुसार ग्रथित करे, अर्थात् २४ गाँठें लगाकर उनको प्राकृतिक पाशोंके प्रतीक समझे। फिर उस ग्रन्थियुक्त सूतको प्यालेमें रखकर कुण्डके पास स्थापित कर दे। तदनन्तर सभी तत्त्वोंका चिन्तन करके गुरु उनका शिष्यके शरीरमें न्यास करे। तत्त्वोंका वह न्यास सृष्टि-क्रमके अनुसार प्रकृतिसे लेकर पृथिवीपर्यन्त होना चाहिये ⁠।।⁠ १८—२६ ⁠।।

तीन, पाँच, दस अथवा बारह जितने भी सूत्र-भेद सम्भव हों, उन सब सूत्र-भेदोंके द्वारा बटे हुए उस सूत्रको ग्रथित करके देना चाहिये। तत्त्वचिन्तक पुरुषोंके लिये यही उचित है। हृदयसे लेकर अस्त्रपर्यन्त पाँच अङ्ग-सम्बन्धी मन्त्र पढ़कर सम्पूर्ण भूतोंको प्रकृतिक्रमसे (अर्थात् कार्य-तत्त्वका कारण-तत्त्वमें लयके क्रमसे) तन्मात्रास्वरूपमें लीन करके उस मायामय सूत्रमें और पशु (जीव-)-के शरीरमें भी प्रकृति, लिङ्गशक्ति, कर्ता, बुद्धि तथा मनका उपसंहार करे। तदनन्तर पञ्चतन्मात्र, बुद्धि, कर्म और पञ्चमहाभूत—इन बारह रूपोंमें अभिव्यक्त द्वादशात्माका सूत्र और शिष्यके शरीरमें चिन्तन करे। तत्पश्चात् इच्छानुसार सृष्टिकी सम्पात-विधिसे हवन करके, सृष्टि-क्रमसे एक-एकके लिये सौ-सौ आहुतियाँ देकर पूर्णाहुति करे। प्यालेमें रखे हुए ग्रथित सूत्रको ऊपरसे ढककर उसे कुम्भेशको अर्पित करे। फिर यथोचित रीतिसे अधिवासन करके भक्त शिष्यको दीक्षा दे। करनी, कैंची, धूल या बालू, खड़िया मिट्टी और अन्य उपयोगी वस्तुओंका भी संग्रह करके उन सबको उसके वामभागमें स्थापित कर दे। फिर मूल-मन्त्रसे उनका स्पर्श करके अधिवासित करे। तत्पश्चात् श्रीहरिके स्मरणपूर्वक कुशोंपर भूतोंके लिये बलि दे और कहे—‘नमो भूतेभ्यः।’ इसके बाद चँदोवों, कलशों और लड्‌डुओंसे मण्डपको सुसज्जित करके मण्डलके भीतर भगवान् विष्णुका पूजन करे। फिर अग्निको घीसे तृप्त करके, शिष्योंको पास बुलाकर बद्धपद्मासनसे बिठावे और दीक्षा दे। बारी-बारीसे उन सबका प्रोक्षण करके विष्णुहस्तसे उनके मस्तकका स्पर्श करे। प्रकृतिसे विकृतिपर्यन्त, अधिभूत और अधिदैवतसहित सम्पूर्ण सृष्टिको आध्यात्मिक करके अर्थात् सबको अपने आत्मामें स्थित मानकर, हृदयमें ही क्रमशः उसका संहार करे ⁠।।⁠ २७—३६ ⁠।।

इससे तन्मात्रस्वरूप हुई सारी सृष्टि जीवके समान हो जाती है। इसके बाद कुम्भेश्वरसे प्रार्थना करके गुरु पूर्वोक्त सूत्रका संस्कार करनेके अनन्तर, अग्निके समीप आ उसको अपने पास ही रख ले। फिर मूल मन्त्रसे सृष्टीशके लिये सौ आहुतियाँ दे। इसके बाद उदासीनभावसे स्थित सृष्टीशको पूर्णाहुति अर्पित करके गुरु श्वेत रज (बालू) हाथमें लेकर उसे मूल-मन्त्रसे सौ बार अभिमन्त्रित करे। फिर उससे शिष्यके हृदयपर ताडन करे। उस समय वियोगवाची क्रियापदसे युक्त बीज-मन्त्रों एवं क्रमशः पादादि इन्द्रियोंसे घटित वाक्यकी योजना करके अन्तमें ‘हुं फट्’ का उच्चारण करे[[29]](#footnote-29)। इस प्रकार पृथिवी आदि तत्त्वोंका वियोग कराकर आचार्य भावनाद्वारा उन्हें अग्निमें होम दे। इस तरह कार्य-तत्त्वोंका कारण-तत्त्वोंमें होम अथवा लय करते हुए क्रमशः अखिल तत्त्वोंके आश्रयभूत श्रीहरिमें सबका लय कर दे। विद्वान् पुरुष इसी क्रमसे सब तत्त्वोंको श्रीहरितक पहुँचाकर, उन सम्पूर्ण तत्त्वोंके अधिष्ठानका स्मरण करे। उक्त रीतिसे ताडनद्वारा भूतों और इन्द्रियोंसे वियोग कराकर शुद्ध हुए शिष्यको अपनावे और प्रकृतिसे उसकी समताका सम्पादन करके पूर्वोक्त अग्निमें उसके उस प्राकृतभावका भी हवन कर दे। फिर गर्भाधान, जातकर्म, भोग और लयका अनुष्ठान करके उस-उस कर्मके निमित्त वहाँ आठ-आठ बार शुद्ध‍यर्थ होम करे। तदनन्तर आचार्य पूर्णाहुतिद्वारा शुद्ध तत्त्वका उद्धार करके अव्याकृत प्रकृतिपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्‌का क्रमानुसार परम तत्त्वमें लय कर दे। उस परम तत्त्वको भी ज्ञानयोगसे परमात्मामें विलीन करके बन्धनमुक्त हुए जीवको अविनाशी परमात्मपदमें प्रतिष्ठित करे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष यह अनुभव करे कि ‘शिष्य शुद्ध, बुद्ध, परमानन्द-संदोहमें निमग्न एवं कृतकृत्य हो चुका है।’ ऐसा चिन्तन करनेके पश्चात् गुरु पूर्णाहुति दे। इस प्रकार दीक्षा-कर्मकी समाप्ति होती है ⁠।।⁠ ३७—४७ ⁠।।

अब मैं उन प्रयोग-सम्बन्धी मन्त्रोंका वर्णन करता हूँ, जिनसे दीक्षा, होम और लय सम्पादित होते हैं। ‘ॐ यं भूतानि वियुङ्‌‌क्ष्व हुं फट्।’ (अर्थात् भूतोंको मुझसे अलग करो।)—इस मन्त्रसे ताडन करनेका विधान है। इसके द्वारा भूतोंसे वियोजन (बिलगाव) होता है। यहाँ वियोजनके दो मन्त्र हैं। एक तो वही है, जिसका ऊपर वर्णन हुआ है और दूसरा इस प्रकार है—‘ॐ यं भूतान्यापातयेऽहम्।’ (मैं भूतोंको अपनेसे दूर गिराता हूँ)। इस मन्त्रसे ‘आपातन’ (वियोजन) करके पुनः दिव्य प्रकृतिसे यों संयोजन किया जाता है। उसके लिये मन्त्र सुनो—‘ॐ यं भूतानि युङ्क्ष्व।’ अब होम-मन्त्रका वर्णन करता हूँ। उसके बाद पूर्णाहुतिका मन्त्र बताऊँगा। ‘ॐ भूतानि संहर स्वाहा।’—यह होम-मन्त्र है और ‘ॐ अं ॐ नमो भगवते वासुदेवाय अं वौषट्।’—यह पूर्णाहुति-मन्त्र है। पूर्णाहुतिके पश्चात् तत्त्वमें शिष्यको संयुक्त करे। विद्वान् पुरुष इसी तरह समस्त तत्त्वोंका क्रमशः शोधन करे। तत्त्वोंके अपने-अपने बीजके अन्तमें ‘नमः’ पद जोड़कर ताडनादिपूर्वक तत्त्व-शुद्धिका सम्पादन करे ⁠।।⁠ ४८—५३ ⁠।।

‘ॐ रां (नमः) कर्मेन्द्रियाणि।’, ‘ॐ दें (नमः) बुद्धीन्द्रियाणि।’—इन पदोंके अन्तमें ‘वियुङ्‌क्ष्व हुं फट्।’ की संयोजना करे। पूर्वोक्त ‘यं’ बीजके समान ही इन उपर्युक्त बीजोंसे भी ताडन आदिका प्रयोग होता है। ‘ॐ सुं गन्धतन्मात्रे बिम्बं युङ्‌क्ष्व हुं फट्।’, ‘ॐ सं पाहि हां ॐ स्वं स्वं युङ्‌क्ष्व प्रकृत्या अं जं हुं गन्धतन्मात्रे संहर स्वाहा।’—ये क्रमशः संयोजन और होमके मन्त्र हैं। तदनन्तर पूर्णाहुतिका विधान है। इसी प्रकार उत्तरवर्ती कर्मोंमें भी प्रयोग किया जाता है। ‘ॐ रां रसतन्मात्रे ⁠। ॐ तें रूपतन्मात्रे ⁠। ॐ वं स्पर्शतन्मात्रे ⁠। ॐ यं शब्दतन्मात्रे ⁠। ॐ मं नमः ⁠। ॐ सों अहंकारे ⁠। ॐ नं बुद्धौ। ॐ ॐ प्रकृतौ।’ यह दीक्षायोग एकव्यूहात्मक मूर्तिके लिये संक्षेपसे बताया गया है। नवव्यूहादिक मूर्तियोंके विषयमें भी ऐसा ही प्रयोग है। मनुष्य प्रकृतिको दग्ध करके उसे निर्वाणस्वरूप परमात्मामें लीन कर दे। फिर भूतोंकी शुद्धि करके कर्मेन्द्रियोंका शोधन करे ⁠।।⁠ ५४—५९ ⁠।।

तत्पश्चात् ज्ञानेन्द्रियोंका, तन्मात्राओंका, मन, बुद्धि एवं अहंकारका तथा लिङ्गात्माका शोधन करके सबके अन्तमें पुनः प्रकृतिकी शुद्धि करे। ‘शुद्ध हुआ प्राकृत पुरुष ईश्वरीय धाममें प्रतिष्ठित है। उसने सम्पूर्ण भोगोंका अनुभव कर लिया है और अब वह मुक्तिपदमें स्थित है।’—इस प्रकार ध्यान करे और पूर्णाहुति दे। यह अधिकार-प्रदान करनेवाली दीक्षा है। पूर्वोक्त मन्त्रके अङ्गोंद्वारा आराधना करके, तत्त्वसमूहको समभाव (प्रकृत्यवस्था)-में पहुँचाकर, क्रमशः इसी रीतिसे शोधन करके, अन्तमें साधक अपनेको सम्पूर्ण सिद्धियोंसे युक्त परमात्मरूपसे स्थित अनुभव करते हुए पूर्णाहुति दे—यह साधकविषयक दीक्षा कही गयी है। यदि यज्ञोपयोगी द्रव्यका सम्पादन (संग्रह) न हो सके, अथवा अपनेमें असमर्थता हो तो समस्त उपकरणोंसहित श्रेष्ठ गुरु पूर्ववत् इष्टदेवका पूजन करके, तत्काल उन्हें अधिवासित करके, द्वादशी तिथिमें शिष्यको दीक्षा दे दे। जो गुरुभक्त, विनयशील एवं समस्त शारीरिक सद्गुणोंसे सम्पन्न हो, ऐसा शिष्य यदि अधिक धनवान् न हो तो वेदीपर इष्टदेवका पूजनमात्र करके दीक्षा ग्रहण करे। आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक, सम्पूर्ण अध्वाका सृष्टिक्रमसे शिष्यके शरीरमें चिन्तन करके, गुरु पहले बारी-बारीसे आठ आहुतियोंद्वारा एक-एककी तृप्ति करनेके पश्चात्, सृष्टिमान् हो, वासुदेव आदि विग्रहोंका उनके निज-निज मन्त्रोंद्वारा पूजन एवं हवन करे और हवन-पूजनके पश्चात् अग्नि आदिका विसर्जन कर दे। तत्पश्चात् पूर्वोक्त होमद्वारा संहारक्रमसे तत्त्वोंका शोधन करे ⁠।।⁠ ६०—६८ ⁠।।

दीक्षाकर्ममें पहले जिन सूत्रोंमें गाँठें बाँधी गयी थीं, उनकी वे गाँठें खोल, गुरु उन्हें शिष्यके शरीरसे लेकर, क्रमशः उन तत्त्वोंका शोधन करे। प्राकृतिक अग्नि एवं आधिदैविक विष्णुमें अशुद्ध-मिश्रित शुद्ध-तत्त्वको लीन करके पूर्णाहुतिद्वारा शिष्यको उस तत्त्वसे संयुक्त करे। इस प्रकार शिष्य प्रकृतिभावको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् गुरु उसके प्राकृतिक गुणोंको भावनाद्वारा दग्ध करके उसे उनसे छुटकारा दिलावे। ऐसा करके वे शिशुस्वरूप उन शिष्योंको अधिकारमें नियुक्त करें। तदनन्तर भावमें स्थित हुआ आचार्य भक्तिभावसे शरणमें आये हुए यतियों तथा निर्धन शिष्यको ‘शक्ति’ नामवाली दूसरी दीक्षा दे। वेदीपर भगवान् विष्णुकी पूजा करके पुत्र (शिष्यविशेष)-को अपने पास बिठा ले। फिर शिष्य देवताके सम्मुख हो तिर्यग्-दिशाकी ओर मुँह करके स्वयं बैठे। गुरु शिष्यके शरीरमें अपने ही पर्वोंसे कल्पित सम्पूर्ण अध्वाका ध्यान करके आधिदैविक यजनके लिये प्रेरित करनेवाले इष्टदेवका भी ध्यानयोगके द्वारा चिन्तन करे। फिर पूर्ववत् ताडन आदिके द्वारा क्रमशः सम्पूर्ण तत्त्वोंका वेदीगत श्रीहरिमें शोधन करे। ताडनद्वारा तत्त्वोंका वियोजन करके उन्हें आत्मामें गृहीत करे और पुनः इष्टदेवके साथ उनका संयोजन एवं शोधन करके, स्वभावतः ग्रहण करनेके अनन्तर ले आकर क्रमशः शुद्ध तत्त्वके साथ संयुक्त करे। सर्वत्र ध्यानयोग एवं उत्तान मुद्राद्वारा शोधन करे ⁠।।⁠ ६९—७७ ⁠।।

सम्पूर्ण तत्त्वोंकी शुद्धि हो जानेपर जब प्रधान (प्रकृति) तथा परमेश्वर स्थित रह जायँ, तब पूर्वोक्त रीतिसे प्रकृतिको दग्ध करके शुद्ध हुए शिष्योंको परमेश्वरपदमें प्रतिष्ठित करे। श्रेष्ठ गुरु साधकको इस तरह सिद्धिमार्गसे ले चले। अधिकारारूढ़ गृहस्थ भी इसी प्रकार आलस्य छोड़कर समस्त कर्मोंका अनुष्ठान करे। जबतक राग (आसक्ति) का सर्वथा नाश न हो जाय, तबतक आत्म-शुद्धिका सम्पादन करता रहे। जब यह अनुभव हो जाय कि ‘मेरे हृदयका राग सर्वथा क्षीण हो गया है’, तब पापसे शुद्ध हुआ संयमशील पुरुष अपने पुत्र या शिष्यको अधिकार सौंपकर मायामय पाशको दग्ध करके संन्यास ले, आत्मनिष्ठ हो, देहपातकी प्रतीक्षा करता रहे। अपनी सिद्धिसम्बन्धी किसी चिह्नको दूसरोंपर व्यक्त न होने दे ⁠।।⁠ ७८—८१ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘सर्वदीक्षा-विधि-कथन’ नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ २७ ⁠।।

## अट्ठाईसवाँ अध्याय

### आचार्यके अभिषेकका विधान

नारदजी कहते हैं—महर्षियो! अब मैं आचार्यके अभिषेकका वर्णन करूँगा, जिसे पुत्र अथवा पुत्रोपम श्रद्धालु शिष्य सम्पादित कर सकता है। इस अभिषेकसे साधक सिद्धिका भागी होता है और रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है। राजाको राज्य और स्त्रीको पुत्रकी प्राप्ति होती है। इससे अन्तःकरणके मलका नाश होता है। मिट्टीके बहुत-से घड़ोंमें उत्तम रत्न रखकर एक स्थानपर स्थापित करे। पहले एक घड़ा बीचमें रखे; फिर उसके चारों ओर घट स्थापित करे। इस तरह एक सहस्र या एक सौ आवृत्तिमें उन सबकी स्थापना करे। फिर मण्डपके भीतर कमलाकार मण्डलमें पूर्व और ईशानकोणके मध्यभागमें पीठ या सिंहासनपर भगवान् विष्णुको स्थापित करके पुत्र एवं साधक आदिका सकलीकरण करे। तदनन्तर शिष्य या पुत्र भगवत्पूजनपूर्वक गुरुकी अर्चना करके उन कलशोंके जलसे उनका अभिषेक करे। उस समय गीत-वाद्यका उत्सव होता रहे। फिर योगपीठ आदि गुरुको अर्पित कर दे और प्रार्थना करे—‘गुरुदेव! आप हम सब मनुष्योंको कृपापूर्वक अनुगृहीत करें।’ गुरु भी उनको समय-दीक्षाके अनुकूल आचारका उपदेश दे। इससे गुरु और साधक भी सम्पूर्ण मनोरथोंके भागी होते हैं ⁠।।⁠ १—५ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘आचार्यके अभिषेककी विधिका वर्णन’ नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ २८ ⁠।।

## उन्तीसवाँ अध्याय

### मन्त्र-साधन-विधि, सर्वतोभद्रादि मण्डलोंके लक्षण

नारदजी कहते हैं—मुनिवरो! साधकको चाहिये कि वह देव-मन्दिर आदिमें मन्त्रकी साधना करे। घरके भीतर शुद्ध भूमिपर मण्डलमें परमेश्वर श्रीहरिका विशेष पूजन करके चौकोर क्षेत्रमें मण्डल आदिकी रचना करे। दो सौ छप्पन कोष्ठोंमें ‘सर्वतोभद्र मण्डल’ लिखे। (क्रम यह है कि पूर्वसे पश्चिमकी ओर तथा उत्तरसे दक्षिणकी ओर बराबर सत्रह रेखाएँ खींचे। ऐसा करनेसे दो सौ छप्पन कोष्ठ हो जायँगे। उनमेंसे बीचके छत्तीस कोष्ठोंको एक करके उनके द्वारा कमल बनावे, अथवा उसे कमलका क्षेत्र निश्चित करे। इस कमलक्षेत्रके बाहर चारों ओरकी एक-एक पंक्तिको मिटाकर उसके द्वारा पीठकी कल्पना करे, अथवा उसे पीठ समझे। फिर पीठसे भी बाहरकी दो-दो पंक्तियोंका मार्जन करके, उनके द्वारा ‘वीथी’ की कल्पना करे। फिर चारों दिशाओंमें द्वार-निर्माण करे। पूर्वोक्त पद्मक्षेत्रमें सब ओर बाहरके बारहवें भागको छोड़ दे और सर्व-मध्य-स्थानपर सूत्र रखकर, पद्म-निर्माणके लिये विभागपूर्वक समान अन्तर रखते हुए, सूत घुमाकर, तीन वृत्त बनावे। इस तरह उस चौकोर क्षेत्रको वर्तुल (गोल) बना दे। इन तीनोंमेंसे प्रथम तो कर्णिकाका क्षेत्र है, दूसरा केसरका क्षेत्र है और तीसरा दल-संधियोंका क्षेत्र है। शेष चौथा अंश दलाग्रभागका स्थान है। कोणसूत्रोंको फैलाकर कोणसे दिशाके मध्यभागतक ले जाय तथा केसरके अग्रभागमें सूत रखकर दल-संधियोंको चिह्नित करे ⁠।।⁠ १—६ ⁠।। फिर सूत गिराकर अष्टदलोंका निर्माण करे। दलोंके मध्यगत अन्तरालका जो मान है, उसे मध्यमें रखकर उससे दलाग्रको घुमावे। तदनन्तर उसके भी अग्रभागको घुमावे। उनके अन्तराल-मानको उनके पार्श्वभागमें रखकर बाह्यक्रमसे एक-एक दलमें दो-दो केसरोंका उल्लेख करे। यह सामान्यतः कमलका चिह्न है। अब द्वादशदल कमलका वर्णन किया जाता है। कर्णिकार्धमानसे पूर्व दिशाकी ओर सूत रखकर क्रमशः सब ओर घुमावे। उसके पार्श्वभागमें भ्रमणयोगसे छः कुण्डलियाँ होंगी और बारह मत्स्यचिह्न बनेंगे। उनके द्वारा द्वादशदल कमल सम्पन्न होगा। पञ्चदल आदिकी सिद्धिके लिये भी इसी प्रकार मत्स्यचिह्नोंसे कमल बनाकर, आकाशरेखासे बाहर जो पीठभाग है, वहाँके कोष्ठोंको मिटा दे। पीठभागके चारों कोणोंमें तीन-तीन कोष्ठकोंको उस पीठके पायोंके रूपमें कल्पित करे। अवशिष्ट जो चारों दिशाओंमें दो-दो जोड़े, अर्थात् चार-चार कोष्ठक हैं, उन सबको मिटा दे। वे पीठके पाटे हैं। पीठके बाहर चारों दिशाओंकी दो-दो पंक्तियोंको वीथी (मार्ग)-के लिये सर्वथा लुप्त कर दे (मिटा दे); तदनन्तर चारों दिशाओंमें चार द्वारोंकी कल्पना करे। (वीथीके बाहर जो दो पंक्तियाँ शेष हैं, उनमेंसे भीतरवाली पंक्तिके मध्यवर्ती दो-दो कोष्ठ और बाहरवाली पंक्तिके मध्यवर्ती चार-चार कोष्ठोंको एक करके द्वार बनाने चाहिये।) ⁠।।⁠ ७—१४ ⁠।। द्वारोंके पार्श्वभागोंमें विद्वान् पुरुष आठ शोभा-स्थानोंकी कल्पना करे और शोभाके पार्श्वभागमें उपशोभा-स्थान बनाये। उपशोभाओंकी संख्या भी उतनी ही बतायी गयी है, जितनी कि शोभाओंकी। उपशोभाओंके समीपके स्थान ‘कोण’ कहे गये हैं। तदनन्तर चारों दिशाओंमें दो-दो मध्यवर्ती कोष्ठकोंका और उससे बाह्य पंक्तिके चार-चार मध्यवर्ती कोष्ठकोंका द्वारके लिये चिन्तन करे। उन सबको एकत्र करके मिटा दे—इस तरह चार द्वार बन जाते हैं। द्वारके दोनों पार्श्वोंमें क्षेत्रकी बाह्य-पंक्तिके एक-एक और भीतरी पंक्तिके तीन-तीन कोष्ठोंको ‘शोभा’ बनानेके लिये मिटा दे। शोभाके पार्श्वभागमें उसके विपरीत करनेसे, अर्थात् क्षेत्रकी बाह्य-पंक्तिके तीन-तीन और भीतरी पंक्तिके एक-एक कोष्ठको मिटानेसे उपशोभाका निर्माण होता है। तत्पश्चात् कोणके भीतर और बाहरके तीन-तीन कोष्ठोंका भेद मिटाकर—एक करके चिन्तन करे[[30]](#footnote-30) ⁠।।⁠ १५—१८ ⁠।। इस प्रकार सोलह-सोलह कोष्ठोंसे बननेवाले दो सौ छप्पन कोष्ठवाले मण्डलका वर्णन हुआ। इसी तरह दूसरे मण्डल भी बन सकते हैं। बारह-बारह कोष्ठोंसे (एक सौ चौवालीस) कोष्ठकोंका जो मण्डल बनता है, उसमें भी मध्यवर्ती छत्तीस पदों (कोष्ठों)-का कमल होता है। इसमें वीथी नहीं होती[[31]](#footnote-31)। एक पंक्ति पीठके लिये होती है। शेष दो पंक्तियोंद्वारा पूर्ववत् द्वार और शोभाकी कल्पना होती है। (इसमें उपशोभा नहीं देखी जाती। अवशिष्ट छः पदोंद्वारा कोणोंकी कल्पना करनी चाहिये।)[[32]](#footnote-32) एक हाथके मण्डलमें बारह अङ्गुलका कमल-क्षेत्र होता है। दो हाथके मण्डलमें कमलका स्थान एक हाथ लंबा-चौड़ा होता है। तदनुसार वृद्धि करके द्वार आदिके साथ मण्डलकी रचना करे। दो हाथका पीठ-रहित चतुरस्रमण्डल हो तो उसमें चक्राकार कमल (चक्राब्ज)-का निर्माण करे। नौ अङ्गुलोंका ‘पद्मार्ध’ कहा गया है। तीन अङ्गुलोंकी ‘नाभि’ मानी गयी है। आठ अङ्गुलोंके ‘अरे’ बनावे और चार अङ्गुलोंकी ‘नेमि’। क्षेत्रके तीन भाग करके, फिर भीतरसे प्रत्येकके दो भाग करे। भीतरके जो पाँच कोष्ठक हैं, उनको अरे या आरे बनानेके लिये आस्फालित (मार्जित) करके उनके ऊपर ‘अरे’ अङ्कित करे। वे अरे इन्दीवरके दलोंकी-सी आकृतिवाले हों, अथवा मातुलिङ्ग (बिजौरा नीबू)-के आकारके हों या कमलदलके समान विस्तृत हों, अथवा अपनी इच्छाके अनुसार उनकी आकृति अङ्कित करे। अरोंकी संधियोंके बीचमें सूत रखकर उसे बाहरकी नेमितक ले जाय और चारों ओर घुमावे। अरेके मूलभागको उसके संधि-स्थानमें सूत रखकर घुमावे तथा अरेके मध्यमें सूत्र-स्थापन करके उस मध्यभागके सब ओर समभावसे सूतको घुमावे। इस तरह घुमानेसे मातुलिङ्गके समान ‘अरे’ बन जायँगे ⁠।।⁠ १९—२६ ⁠।। चौदह पदोंके क्षेत्रको सात भागोंमें बाँटकर पुनः दो-दो भागोंमें बाँटे अथवा पूर्वसे पश्चिम तथा उत्तरसे दक्षिणकी ओर पंद्रह-पंद्रह समान रेखाएँ खींचे। ऐसा करनेसे एक सौ छियानबे कोष्ठक सिद्ध होंगे। वे जो कोष्ठक हैं, उनमेंसे बीचके चार कोष्ठोंद्वारा ‘भद्रमण्डल’ लिखे। उसके चारों ओर वीथीके लिये स्थान छोड़ दे। फिर सम्पूर्ण दिशाओंमें कमल लिखे। उन कमलोंके चारों ओर वीथीके लिये एक-एक कोष्ठका मार्जन कर दे। तत्पश्चात् मध्यके दो-दो कोष्ठ ग्रीवाभागके लिये विलुप्त कर दे। फिर बाहरके जो चार कोष्ठ हैं, उनमेंसे तीन-तीनको सब ओर मिटा दे। बाहरका एक-एक कोष्ठ ग्रीवाके पार्श्वभागमें शेष रहने दे। उसे द्वार-शोभाकी संज्ञा दी गयी है। बाह्य कोणोंमें सातको छोड़कर भीतर-भीतरके तीन-तीन कोष्ठोंका मार्जन कर दे। इसे ‘नवनाल’ या ‘नवनाभ-मण्डल’ कहते हैं। उसकी नौ नाभियोंमें नवव्यूहस्वरूप श्रीहरिका पूजन करे। पचीस व्यूहोंका जो मण्डल है, वह विश्वव्यापी है, अथवा सम्पूर्ण रूपोंमें व्याप्त है। बत्तीस हाथ अथवा कोष्ठवाले क्षेत्रको बत्तीससे ही बराबर-बराबर विभक्त कर दे; अर्थात् ऊपरसे नीचेको तैंतीस रेखाएँ खींचकर उनपर तैंतीस आड़ी रेखाएँ खींचे। इससे एक हजार चौबीस कोष्ठक बनेंगे। उनमेंसे बीचके सोलह कोष्ठोंद्वारा ‘भद्रमण्डल’ की रचना करे। फिर चारों ओरकी एक-एक पंक्ति छोड़ दे। तत्पश्चात् आठों दिशाओंमें सोलह कोष्ठकोंद्वारा आठ भद्रमण्डल लिखे। इसे ‘भद्राष्टक’ की संज्ञा दी गयी है ⁠।।⁠ २७—३४ ⁠।। उसके बादकी भी एक पंक्ति मिटाकर पुनः पूर्ववत् सोलह भद्रमण्डल लिखे। तदनन्तर सब ओरकी एक-एक पंक्ति मिटाकर प्रत्येक दिशामें तीन-तीनके क्रमसे बारह द्वारोंकी रचना करे। बाहरके छः कोष्ठ मिटाकर बीचके पार्श्वभागोंके चार मिटा दे। फिर भीतरके चार और बाहरके दो कोष्ठ ‘शोभा’ के लिये मिटावे। इसके बाद उपद्वारकी सिद्धिके लिये भीतरके तीन और बाहरके पाँच कोष्ठोंका मार्जन करे। तत्पश्चात् पूर्ववत् ‘शोभा’ की कल्पना करे। कोणोंमें बाहरके सात और भीतरके तीन कोष्ठ मिटा दे। इस प्रकार जो पञ्चविंशतिका व्यूहमण्डल तैयार होता है, उसके भीतरकी कमलकर्णिकामें परब्रह्म परमात्माका यजन करे। फिर पूर्वादि दिशाओंके कमलोंमें क्रमशः वासुदेव आदिका पूजन करे। तत्पश्चात् पूर्ववर्ती कमलपर भगवान् वराहका पूजन करके क्रमशः सम्पूर्ण (अर्थात् पचीस) व्यूहोंकी पूजा करे। यह क्रम तबतक चलता रहे, जबतक छब्बीसवें तत्त्व—परमात्माका पूजन न सम्पन्न हो जाय। इस विषयमें प्रचेताका मत यह है कि एक ही मण्डलमें इन सम्पूर्ण कथित-व्यूहोंका क्रमशः पूजन-यज्ञ सम्पन्न होना चाहिये। परंतु ‘सत्य’ का कथन है कि मूर्तिभेदसे भगवान्‌के व्यक्तित्वमें भेद हो जाता है; अतः सबका पृथक्-पृथक् पूजन करना उचित है। बयालीस कोष्ठवाले मण्डलको आड़ी रेखाद्वारा क्रमशः विभक्त करे। पहले एक-एकके सात भाग करे; फिर प्रत्येकके तीन-तीन भाग और उसके भी दो-दो भाग करे। इस प्रकार एक हजार सात सौ चौंसठ कोष्ठक बनेंगे। बीचके सोलह कोष्ठोंसे कमल बनावे। पार्श्वभागमें वीथीकी रचना करे। फिर आठ भद्र और वीथी बनावे। तदनन्तर सोलह दलके कमल और वीथीका निर्माण करे। तत्पश्चात् क्रमशः चौबीस दलके कमल, वीथी, बत्तीस दलके कमल, वीथी, चालीस दलके कमल और वीथी बनावे। तदनन्तर शेष तीन पंक्तियोंसे द्वार, शोभा और उपशोभाएँ बनेंगी। सम्पूर्ण दिशाओंके मध्यभागमें द्वारसिद्धिके लिये दो, चार और छः कोष्ठकोंको मिटावे। उसके बाह्यभागमें शोभा तथा उपद्वारकी सिद्धिके लिये पाँच, तीन और एक कोष्ठ मिटावे। द्वारोंके पार्श्वभागोंमें भीतरकी ओर क्रमशः छः तथा चार कोष्ठ मिटावे और बीचके दो-दो कोष्ठ लुप्त कर दे। इस तरह छः उपशोभाएँ बन जायँगी। एक-एक दिशामें चार-चार शोभाएँ और तीन-तीन द्वार होंगे। कोणोंमें प्रत्येक पंक्तिके पाँच-पाँच कोष्ठ छोड़ दे। वे कोण होंगे। इस तरह रचना करनेपर सुन्दर अभीष्ट मण्डलका निर्माण होता है ⁠।।⁠ ३५—५० ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘सर्वतोभद्र आदि मण्डलके लक्षणका वर्णन’ नामक उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ २९ ⁠।।

## तीसवाँ अध्याय

### भद्रमण्डल आदिकी पूजन-विधिका वर्णन

**नारदजी कहते हैं**—मुनिवरो! पूर्वोक्त भद्रमण्डलके मध्यवर्ती कमलमें अङ्गोंसहित ब्रह्मका पूजन करना चाहिये। पूर्ववर्ती कमलमें भगवान् पद्मनाभका, अग्निकोणवाले कमलमें प्रकृतिदेवीका तथा दक्षिण दिशाके कमलमें पुरुषकी पूजा करनी चाहिये। पुरुषके दक्षिण भागमें अग्निदेवताकी, नैर्ऋत्यकोणमें निर्ऋतिकी, पश्चिम दिशावाले कमलमें वरुणकी, वायव्यकोणमें वायुकी, उत्तर दिशाके कमलमें आदित्यकी तथा ईशानकोणवाले कमलमें ऋग्वेद एवं यजुर्वेदका पूजन करे। द्वितीय आवरणमें इन्द्र आदि दिक्पालोंका और षोडशदलवाले कमलमें क्रमशः सामवेद, अथर्ववेद, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, मन, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, घ्राणेन्द्रिय, भूर्लोक, भुवर्लोक तथा सोलहवेंमें स्वर्लोकका पूजन करना चाहिये ⁠।।⁠ १—४ ⁠।।

तदनन्तर तृतीय आवरणमें चौबीस दलवाले कमलमें क्रमशः महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक, अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम, व्यष्टि मन, व्यष्टि बुद्धि, व्यष्टि अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, जीव, समष्टि मन, समष्टि बुद्धि (महत्तत्त्व), समष्टि अहंकार तथा प्रकृति—इन चौबीसकी अर्चना करे। इन सबका स्वरूप शब्दमात्र है—अर्थात् केवल इनका नाम लेकर इनके प्रति मस्तक झुका लेना चाहिये। इनकी पूजामें इनके स्वरूपका चिन्तन अनावश्यक है। पचीसवें अध्यायमें कथित वासुदेवादि नौ मूर्ति, दशविध प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार, पायु और उपस्थ, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, घ्राण, वाक्, पाणि और पाद—इन बत्तीस वस्तुओंकी बत्तीस दलवाले कमलमें अर्चना करनी चाहिये। ये चौथे आवरणके देवता हैं। उक्त आवरणमें इनका साङ्ग एवं सपरिवार पूजन होना चाहिये ⁠।।⁠ ५—९ ⁠।।

तदनन्तर बाह्य आवरणमें पायु और उपस्थकी पूजा करके बारह मासोंके बारह अधिपतियोंका तथा पुरुषोत्तम आदि छब्बीस तत्त्वोंका यजन करे। उनमेंसे जो मासाधिपति हैं, उनका चक्राब्जमें क्रमशः पूजन करना चाहिये। आठ, छः, पाँच या चार प्रकृतियोंका भी पूजन वहीं करना चाहिये। तदनन्तर लिखित मण्डलमें विभिन्न रंगोंके चूर्ण डालनेका विधान है। कहाँ, किस रंगके चूर्णका उपयोग है, यह सुनो। कमलकी कर्णिका पीले रंगकी होनी चाहिये। समस्त रेखाएँ बराबर और श्वेत रंगकी रहें। दो हाथके मण्डलमें रेखाएँ अँगूठेके बराबर मोटी होनी चाहिये। एक हाथके मण्डलमें उनकी मोटाई आधे अँगूठेके समान रखनी चाहिये। रेखाएँ श्वेत बनायी जायँ। कमलको श्वेत रंगसे और संधियोंको काले या श्याम (नीले) रंगसे रँगना चाहिये। केसर लाल-पीले रंगके हों। कोणगत कोष्ठोंको लाल रंगके चूर्णसे भरना चाहिये। इस प्रकार योगपीठको सभी तरहके रंगोंसे यथेष्ट विभूषित करना चाहिये। लता-वल्लरियों और पत्तों आदिसे वीथीकी शोभा बढ़ावे। पीठके द्वारको श्वेत रंगसे सजावे और शोभास्थानोंको लाल रंगके चूर्णसे भरे। उपशोभाओंको नीले रंगसे विभूषित करे। कोणोंके शङ्खोंको श्वेत चित्रित करे। यह भद्र-मण्डलमें रंग भरनेकी बात बतायी गयी है। अन्य मण्डलोंमें भी इसी तरह विविध रंगोंके चूर्ण भरने चाहिये। त्रिकोण मण्डलको श्वेत, रक्त और कृष्ण रंगसे अलंकृत करे। द्विकोणको लाल और पीलेसे रँगे। चक्राब्जमें जो नाभिस्थान है, उसे कृष्ण रंगके चूर्णसे विभूषित करे ⁠।।⁠ १०—१७ ⁠।।

चक्राब्जके अरोंको पीले और लालसे रँगे। नेमिको नीले तथा लाल रंगसे सजावे और बाहरकी रेखाओंको श्वेत, श्याम, अरुण, काले एवं पीले रंगोंसे रँगे। अगहनी चावलका पीसा हुआ चूर्ण आदि श्वेत रंगका काम करता है। कुसुम्भ आदिका चूर्ण लाल रंगकी पूर्ति करता है। पीला रंग हल्दीके चूर्णसे तैयार होता है। जले हुए चावलके चूर्णसे काले रंगकी आवश्यकता पूर्ण होती है। शमी-पत्र आदिसे श्याम रंगका काम लिया जाता है। बीज-मन्त्रोंका एक लाख जप करनेसे, अन्य मन्त्रोंका उनके अक्षरोंके बराबर लाख बार जप करनेसे, विद्याओंको एक लक्ष जपनेसे, बुद्ध-विद्याओंको दस हजार बार जपनेसे, स्तोत्रोंका एक सहस्र बार पाठ करनेसे अथवा सभी मन्त्रोंको पहली बार एक लाख जप करनेसे उन मन्त्रोंकी तथा अपनी भी शुद्धि होती है। दूसरी बार एक लाख जपनेसे मन्त्र क्षेत्रीकृत होता है। बीज-मन्त्रोंका पहले जितना जप किया गया हो, उतना ही उनके लिये होमका भी विधान है। अन्य मन्त्रादिके होमकी संख्या पूर्वजपके दशांशके तुल्य बतायी गयी है। मन्त्रसे पुरश्चरण करना हो तो एक-एक मासका व्रत ले। पृथ्वीपर पहले बायाँ पैर रखे। किसीसे दान न ले। इस प्रकार दुगुना और तिगुना जप करनेसे ही मध्यम और उत्तम श्रेणीकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अब मैं मन्त्रका ध्यान बताता हूँ, जिससे मन्त्र-जपजनित फलकी प्राप्ति होती है। मन्त्रका स्थूलरूप शब्दमय है; इसे उसका बाह्य विग्रह माना गया है। मन्त्रका सूक्ष्मरूप ज्योतिर्मय है। यही उसका आन्तरिक रूप है। यह केवल चिन्तनमय है। जो चिन्तनसे भी रहित है, उसे ‘पर’ कहा गया है। वाराह, नरसिंह तथा शक्तिके स्थूल रूपकी ही प्रधानता है। वासुदेवका रूप चिन्तनरहित (अचिन्त्य) कहा गया है ⁠।।⁠ १८—२७ ⁠।।

अन्य देवताओंका चिन्तामय आन्तरिक रूप ही सदा ‘मुख्य’ माना गया है। ‘वैराज’ अर्थात् विराट्‌का स्वरूप ‘स्थूल’ कहा गया है। लिङ्गमय स्वरूपको ‘सूक्ष्म’ जानना चाहिये। ईश्वरका जो स्वरूप बताया गया है, वह चिन्तारहित है। बीज-मन्त्र हृदयकमलमें निवास करनेवाला, अविनाशी, चिन्मय, ज्योतिःस्वरूप और जीवात्मक है। उसकी आकृति कदम्ब-पुष्पके समान है—इस तरह ध्यान करना चाहिये। जैसे घड़ेके भीतर रखे हुए दीपककी प्रभाका प्रसार अवरुद्ध हो जाता है; वह संहतभावसे अकेला ही स्थित रहता है; उसी प्रकार मन्त्रेश्वर हृदयमें विराजमान हैं। जैसे अनेक छिद्रवाले कलशमें जितने छेद होते हैं, उतनी ही दीपककी प्रभाकी किरणें बाहरकी ओर फैलती हैं, उसी तरह नाडियोंद्वारा ज्योतिर्मय बीजमन्त्रकी रश्मियाँ आँतोंको प्रकाशित करती हुई दैव-देहको अपनाकर स्थित हैं। नाडियाँ हृदयसे प्रस्थित हो नेत्रेन्द्रियोंतक चली गयी हैं। उनमेंसे दो नाडियाँ अग्नीषोमात्मक हैं, जो नासिकाओंके अग्रभागमें स्थित हैं। मन्त्रका साधक सम्यक् उद्धात-योगसे शरीरव्यापी प्राणवायुको जीतकर जप और ध्यानमें तत्पर रहे तो वह मन्त्रजनित फलका भागी होता है। पञ्चभूततन्मात्राओंकी शुद्धि करके योगाभ्यास करनेवाला साधक यदि सकाम हो तो अणिमा आदि सिद्धियोंको पाता है और यदि विरक्त हो तो उन सिद्धियोंको लाँघकर, चिन्मय स्वरूपसे स्थित हो, भूतमात्रसे तथा इन्द्रियरूपी ग्रहसे सर्वथा मुक्त हो जाता है ⁠।।⁠ २८—३६ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘भद्र-मण्डलादिविधि-कथन’ नामक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ ३० ⁠।।

## इकतीसवाँ अध्याय

### ‘अपामार्जन-विधान’ एवं ‘कुशापामार्जन’ नामक स्तोत्रका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—मुने! अब मैं अपनी तथा दूसरोंकी रक्षाका उपाय बताऊँगा। उसका नाम है—मार्जन (या अपामार्जन)। यह वह रक्षा है, जिसके द्वारा मानव दुःखसे छूट जाता है और सुखको प्राप्त कर लेता है। उन सच्चिदानन्दमय, परमार्थस्वरूप, सर्वान्तर्यामी, महात्मा, निराकार तथा सहस्रों आकारधारी व्यापक परमात्माको मेरा नमस्कार है। जो समस्त कल्मषोंसे रहित, परम शुद्ध तथा नित्य ध्यानयोगरत है, उसे नमस्कार करके मैं प्रस्तुत रक्षाके विषयमें कहूँगा, जिससे मेरी वाणी सत्य हो।१ महामुने! मैं भगवान् वाराह, नृसिंह तथा वामनको भी नमस्कार करके रक्षाके विषयमें जो कुछ कहूँगा, मेरा वह कथन सिद्ध (सफल) हो।२ मैं भगवान् त्रिविक्रम (त्रिलोकीको तीन पगोंसे नापनेवाले विराट्स्वरूप), श्रीराम, वैकुण्ठ (नारायण) तथा नरको भी नमस्कार करके जो कहूँगा, वह मेरा वचन सत्य सिद्ध हो३ ⁠।।⁠ १—५ ⁠।।

अपामार्जनविधानम्

वराह नरसिंहेश वामनेश त्रिविक्रम ⁠। हयग्रीवेश सर्वेश हृषीकेश हराशुभम् ⁠।।⁠ ६ ⁠।।

अपराजित चक्राद्यैश्चतुर्भिः परमायुधैः ⁠। अखण्डितानुभावैस्त्वं सर्वदुष्टहरो भव ⁠।।⁠ ७ ⁠।।

हरामुकस्य दुरितं सर्वं च कुशलं कुरु ⁠। मृत्युबन्धार्तिभयदं दुरिष्टस्य च यत्फलम् ⁠।।⁠ ८ ⁠।।

भगवन् वराह! नृसिंहेश्वर! वामनेश्वर! त्रिविक्रम! हयग्रीवेश, सर्वेश तथा हृषीकेश! मेरा सारा अशुभ हर लीजिये। किसीसे भी पराजित न होनेवाले परमेश्वर! अपने अखण्डित प्रभावशाली चक्र आदि चारों आयुधोंसे समस्त दुष्टोंका संहार कर डालिये। प्रभो! आप अमुक (रोगी या प्रार्थी)-के सम्पूर्ण पापोंको हर लीजिये और उसके लिये पूर्णतया कुशल-क्षेमका सम्पादन कीजिये। दोषयुक्त यज्ञ या पापके फलस्वरूप जो मृत्यु, बन्धन, रोग, पीडा या भय आदि प्राप्त होते हैं, उन सबको मिटा दीजिये ⁠।।⁠ ६—८ ⁠।।

पराभिध्यानसहितैः प्रयुक्तं चाभिचारिकम् ⁠। गरस्पर्शमहारोगप्रयोगं जरया जर ⁠।।⁠ ९ ⁠।।

ॐ नमो वासुदेवाय नमः कृष्णाय खड्‌गिने ⁠। नमः पुष्करनेत्राय केशवायादिचक्रिणे ⁠।।⁠ १० ⁠।।

नमः कमलकिञ्जल्कपीतनिर्मलवाससे ⁠। महाहवरिपुस्कन्धघृष्टचक्राय चक्रिणे ⁠।।⁠ ११ ⁠।।

दंष्ट्रोद्धृतक्षितिभृते त्रयीमूर्तिमते नमः ⁠। महायज्ञवराहाय शेषभोगाङ्कशायिने ⁠।।⁠ १२ ⁠।।

तप्तहाटककेशान्तज्वलत्पावकलोचन ⁠। वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते ⁠।।⁠ १३ ⁠।।

काश्यपायातिह्रस्वाय ऋग्यजुःसामभूषिणे ⁠। तुभ्यं वामनरूपायाक्रमते गां नमो नमः ⁠।।⁠ १४ ⁠।।

दूसरोंके अनिष्ट-चिन्तनमें संलग्न लोगोंद्वारा जो आभिचारिक कर्मका, विषमिश्रित अन्न-पानका या महारोगका प्रयोग किया गया है, उन सबको जरा-जीर्ण कर डालिये—नष्ट कर दीजिये। ॐ भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। खड्‌गधारी श्रीकृष्णको नमस्कार है। आदिचक्रधारी कमल-नयन केशवको नमस्कार है। कमलपुष्पके केसरोंकी भाँति पीत-निर्मल वस्त्र धारण करनेवाले भगवान् पीताम्बरको प्रणाम है। जो महासमरमें शत्रुओंके कंधोंसे घृष्ट होता है, ऐसे चक्रके चालक भगवान् चक्रपाणिको नमस्कार है। अपनी दंष्ट्रापर उठायी हुई पृथ्वीको धारण करनेवाले वेद-विग्रह एवं शेषशय्याशायी महान् यज्ञवराहको नमस्कार है। दिव्यसिंह! आपके केशान्त प्रतप्त-सुवर्णके समान कान्तिमान् हैं, नेत्र प्रज्वलित पावकके समान तेजस्वी हैं तथा आपके नखोंका स्पर्श वज्रसे भी अधिक तीक्ष्ण है; आपको नमस्कार है। अत्यन्त लघुकाय तथा ऋग्, यजु और साम तीनों वेदोंसे विभूषित आप कश्यपकुमार वामनको नमस्कार है। फिर विराट्-रूपसे पृथ्वीको लाँघ जानेवाले आप त्रिविक्रमको नमस्कार है ⁠।।⁠ ९—१४ ⁠।।

वराहाशेषदुष्टानि सर्वपापफलानि वै ⁠। मर्द मर्द महादंष्ट्र मर्द मर्द च तत्फलम् ⁠।।⁠ १५ ⁠।।

नारसिंह करालास्य दन्तप्रान्तानलोज्ज्वल ⁠। भञ्ज भञ्ज निनादेन दुष्टान् पश्यार्तिनाशन ⁠।।⁠ १६ ⁠।।

ऋग्यजुःसामगर्भाभिर्वाग्भिर्वामनरूपधृक् ⁠। प्रशमं सर्वदुःखानि नयत्वस्य जनार्दन ⁠।।⁠ १७ ⁠।।

ऐकाहिकं द्व‍याहिकं च तथा त्रिदिवसं ज्वरम् ⁠। चातुर्थिकं तथात्युग्रं तथैव सततं ज्वरम् ⁠।।⁠ १८ ⁠।।

दोषोत्थं संनिपातोत्थं तथैवागन्तुकं ज्वरम् ⁠। शमं नयाशु गोविन्द च्छिन्धि च्छिन्ध्यस्य वेदनाम् ⁠।।⁠ १९ ⁠।।

वराहरूपधारी नारायण! समस्त पापोंके फलरूपसे प्राप्त सम्पूर्ण दुष्ट रोगोंको कुचल दीजिये, कुचल दीजिये। बड़े-बड़े दाढ़ोंवाले महावराह! पापजनित फलको मसल डालिये, नष्ट कर दीजिये। विकटानन नृसिंह! आपका दन्त-प्रान्त अग्निके समान जाज्वल्यमान है। आर्तिनाशन! आक्रमणकारी दुष्टोंको देखिये और अपनी दहाड़से इन सबका नाश कीजिये, नाश कीजिये। वामनरूपधारी जनार्दन! ऋक्, यजुः एवं सामवेदके गूढ़ तत्त्वोंसे भरी वाणीद्वारा इस आर्तजनके समस्त दुःखोंका शमन कीजिये। गोविन्द! इसके त्रिदोषज, संनिपातज, आगन्तुक, ऐकाहिक, द्व‍याहिक, त्र्याहिक तथा अत्यन्त उग्र चातुर्थिक ज्वरको एवं सतत बने रहनेवाले ज्वरको भी शीघ्र शान्त कीजिये। इसकी वेदनाको मिटा दीजिये, मिटा दीजिये ⁠।।⁠ १५—१९ ⁠।।

नेत्रदुःखं शिरोदुःखं दुःखं चोदरसम्भवम् ⁠। अनिश्वासमतिश्वासं परितापं सवेपथुम् ⁠।।⁠ २० ⁠।।

गुदघ्राणङ्‌घ्रिरोगांश्च कुष्ठरोगांस्तथा क्षयम् ⁠। कामलादींस्तथा रोगान् प्रमेहांश्चातिदारुणान् ⁠।।⁠ २१ ⁠।।

भगन्दरातिसारांश्च मुखरोगांश्च वल्गुलीम् ⁠। अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रांश्च रोगानन्यांश्च दारुणान् ⁠।।⁠ २२ ⁠।।

ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः ⁠। कफोद्भवाश्च ये केचिद्‌ ये चान्ये सांनिपातिकाः ⁠।।⁠ २३ ⁠।।

आगन्तुकाश्च ये रोगा लूताविस्फोटकादयः ⁠। ते सर्वे प्रशमं यान्तु वासुदेवस्य कीर्तनात् ⁠।।⁠ २४ ⁠।।

विलयं यान्तु ते सर्वे विष्णोरुच्चारणेन च ⁠। क्षयं गच्छन्तु चाशेषास्ते चक्राभिहता हरेः ⁠।।⁠ २५ ⁠।।

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ⁠। नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ⁠।।⁠ २६ ⁠।।

इस दुखियाके नेत्ररोग, शिरोरोग, उदररोग, श्वासावरोध, अतिश्वास (दमा), परिताप, कम्पन, गुदरोग, नासिका-रोग, पादरोग, कुष्ठरोग, क्षयरोग, कामला आदि रोग, अत्यन्त दारुण प्रमेह, भगंदर, अतिसार, मुखरोग, वल्गुली, अश्मरी (पथरी), मूत्रकृच्छ्र तथा अन्य महाभयंकर रोगोंको भी दूर कीजिये। भगवान् वासुदेवके संकीर्तनमात्रसे जो भी वातज, पित्तज, कफज, संनिपातज, आगन्तुक तथा लूता (मकरी), विस्फोट (फोड़े) आदि रोग हैं, वे सभी अपमार्जित होकर शान्त हो जायँ। वे सभी भगवान् विष्णुके नामोच्चारणके प्रभावसे विलुप्त हो जायँ। वे समस्त रोग श्रीहरिके चक्रसे प्रतिहत होकर क्षयको प्राप्त हों। ‘अच्युत’, ‘अनन्त’ एवं ‘गोविन्द’—इन नामोंके उच्चारणरूप औषधसे सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ ⁠।।⁠ २०—२६ ⁠।।

स्थावरं जङ्गमं वापि कृत्रिमं चापि यद्विषम् ⁠। दन्तोद्भवं नखभवमाकाशप्रभवं विषम् ⁠।।⁠ २७ ⁠।।

लूतादिप्रभवं यच्च विषमन्यत्तु दुःखदम् ⁠। शमं नयतु तत्सर्वं वासुदेवस्य कीर्तनम् ⁠।।⁠ २८ ⁠।।

ग्रहान् प्रेतग्रहांश्चापि तथा वै डाकिनीग्रहान् ⁠। वेतालांश्च पिशाचांश्च गन्धर्वान् यक्षराक्षसान् ⁠।।⁠ २९ ⁠।।

शकुनीपूतनाद्यांश्च तथा वैनायकान् ग्रहान् ⁠। मुखमण्डीं तथा क्रूरां रेवतीं वृद्धरेवतीम् ⁠।।⁠ ३० ⁠।।

वृद्धिकाख्यान्ग्रहांश्चोग्रांस्तथा मातृग्रहानपि ⁠। बालस्य विष्णोश्चरितं हन्तु बालग्रहानिमान् ⁠।।⁠ ३१ ⁠।।

वृद्धाश्च ये ग्रहाः केचिद्‌ ये च बालग्रहाः क्वचित् ⁠। नरसिंहस्य ते दृष्ट‍या दग्धा ये चापि यौवने ⁠।।⁠ ३२ ⁠।।

सटाकरालवदनो नारसिंहो महाबलः ⁠। ग्रहानशेषान्निःशेषान् करोतु जगतो हितः ⁠।।⁠ ३३ ⁠।।

नरसिंह महासिंह ज्वालामालोज्ज्वलानन ⁠। ग्रहानशेषान् सर्वेश खाद खादाग्निलोचन ⁠।।⁠ ३४ ⁠।।

स्थावर, जङ्गम, कृत्रिम, दन्तोद्भूत, नखोद्भूत, आकाशोद्भूत तथा लूतादिसे उत्पन्न एवं अन्य जो भी दुःखप्रद विष हों—भगवान् वासुदेवका संकीर्तन उनका प्रशमन करे। बालरूपधारी श्रीहरि (श्रीकृष्ण)-के चरित्रका कीर्तन ग्रह, प्रेतग्रह, डाकिनीग्रह, वेताल, पिशाच, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, शकुनी-पूतना आदि ग्रह, विनायकग्रह, मुख-मण्डिका, क्रूर रेवती, वृद्धरेवती, वृद्धिका नामसे प्रसिद्ध उग्र ग्रह एवं मातृग्रह—इन सभी बालग्रहोंका नाश करे। भगवन्! आप नरसिंहके दृष्टिपातसे जो भी वृद्ध, बाल तथा युवा ग्रह हों, वे दग्ध हो जायँ। जिनका मुख सटा-समूहसे विकराल प्रतीत होता है, वे लोकहितैषी महाबलवान् भगवान् नृसिंह समस्त बालग्रहोंको निःशेष कर दें। महासिंह नरसिंह! ज्वालामालाओंसे आपका मुखमण्डल उज्ज्वल हो रहा है। अग्निलोचन! सर्वेश्वर! समस्त ग्रहोंका भक्षण कीजिये, भक्षण कीजिये ⁠।।⁠ २७—३४ ⁠।।

ये रोगा ये महोत्पाता यद्विषं ये महाग्रहाः ⁠। यानि च क्रूरभूतानि ग्रहपीडाश्च दारुणाः ⁠।।⁠ ३५ ⁠।।

शस्त्रक्षतेषु ये दोषा ज्वालागर्दभकादयः ⁠। तानि सर्वाणि सर्वात्मा परमात्मा जनार्दनः ⁠।।⁠ ३६ ⁠।।

किंचिद्रूपं समास्थाय वासुदेवास्य नाशय ⁠। क्षिप्त्वा सुदर्शनं चक्रं ज्वालामालातिभीषणम् ⁠।।⁠ ३७ ⁠।।

सर्वदुष्टोपशमनं कुरु देववराच्युत ⁠। सुदर्शन महाज्वाल च्छिन्धि च्छिन्धि महारव ⁠।।⁠ ३८ ⁠।।

सर्वदुष्टानि रक्षांसि क्षयं यान्तु विभीषण ⁠। प्राच्यां प्रतीच्यां च दिशि दक्षिणोत्तरतस्तथा ⁠।।⁠ ३९ ⁠।।

रक्षां करोतु सर्वात्मा नरसिंहः स्वगर्जितैः ⁠। दिवि भुव्यन्तरिक्षे च पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ⁠।।⁠ ४० ⁠।।

रक्षां करोतु भगवान् बहुरूपी जनार्दनः ⁠। यथा विष्णुर्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ⁠।।⁠ ४१ ⁠।।

तेन सत्येन दुष्टानि शममस्य व्रजन्तु वै ⁠।

वासुदेव। आप सर्वात्मा परमेश्वर जनार्दन हैं। इस व्यक्तिके जो भी रोग, महान् उत्पात, विष, महाग्रह, क्रूर भूत, दारुण ग्रहपीडा तथा ज्वालागर्दभक आदि शस्त्र-क्षत-जनित दोष हों, उन सबका कोई भी रूप धारण करके नाश करें। देवश्रेष्ठ अच्युत! ज्वालामालाओंसे अत्यन्त भीषण सुदर्शन-चक्रको प्रेरित करके समस्त दुष्ट रोगोंका शमन कीजिये। महाभयंकर सुदर्शन! तुम प्रचण्ड ज्वालाओंसे सुशोभित और महान् शब्द करनेवाले हो; अतः सम्पूर्ण दुष्ट राक्षसोंका संहार करो, संहार करो। वे तुम्हारे प्रभावसे क्षयको प्राप्त हों। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशामें सर्वात्मा नृसिंह अपनी गर्जनासे रक्षा करें। स्वर्गलोकमें, भूलोकमें, अन्तरिक्षमें तथा आगे-पीछे अनेक रूपधारी भगवान् जनार्दन रक्षा करें। देवता, असुर और मनुष्योंसहित यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् विष्णुका ही स्वरूप है; इस सत्यके प्रभावसे इसके दुष्ट रोग शान्त हों ⁠।।⁠ ३५—४१ ⁠।।

यथा विष्णौ स्मृते सद्यः संक्षयं यान्ति पातकाः ⁠।।⁠ ४२ ⁠।।

सत्येन तेन सकलं दुष्टमस्य प्रशाम्यतु ⁠। यथा यज्ञेश्वरो विष्णुर्देवेष्वपि हि गीयते ⁠।।⁠ ४३ ⁠।।

सत्येन तेन सकलं यन्मयोक्तं तथास्तु तत् ⁠। शान्तिरस्तु शिवं चास्तु दुष्टमस्य प्रशाम्यतु ⁠।।⁠ ४४ ⁠।।

वासुदेवशरीरोत्थैः कुशैर्निर्णाशितं मया ⁠। अपामार्जतु गोविन्दो नरो नारायणस्तथा ⁠।।⁠ ४५ ⁠।।

तथास्तु सर्वदुःखानां प्रशमो वचनाद्धरेः ⁠। अपामार्जनकं शस्तं सर्वरोगादिवारणम् ⁠।।⁠ ४६ ⁠।।

अहं हरिः कुशा विष्णुर्हता रोगा मया तव ⁠।।⁠ ४७ ⁠।।

श्रीविष्णुके स्मरणमात्रसे पापसमूह तत्काल नष्ट हो जाते हैं, इस सत्यके प्रभावसे इसके समस्त दूषित रोग शान्त हो जायँ। यज्ञेश्वर विष्णु देवताओंद्वारा प्रशंसित होते हैं; इस सत्यके प्रभावसे मेरा कथन सत्य हो। शान्ति हो, मंगल हो। इसका दुष्ट रोग शान्त हो। मैंने भगवान् वासुदेवके शरीरसे प्रादुर्भूत कुशोंसे इसके रोगोंको नष्ट किया है। नर-नारायण और गोविन्द—इसका अपामार्जन करें। श्रीहरिके वचनसे इसके सम्पूर्ण दुःखोंका शमन हो जाय। समस्त रोगादिके निवारणके लिये ‘अपामार्जन-स्तोत्र’ प्रशस्त है। मैं श्रीहरि हूँ, कुशा विष्णु हैं। मैंने तुम्हारे रोगोंका नाश कर दिया है ⁠।।⁠ ४२—४७ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘कुशापामार्जन-स्तोत्रका वर्णन’ नामक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ ३१ ⁠।।

## बत्तीसवाँ अध्याय

### निर्वाणादि-दीक्षाकी सिद्धिके उद्देश्यसे सम्पादनीय संस्कारोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्मन्! बुद्धिमान् पुरुष निर्वाणादि दीक्षाओंमें अड़तालीस संस्कार करावे। उन संस्कारोंका वर्णन सुनिये, जिनसे मनुष्य देवतुल्य हो जाता है। सर्वप्रथम योनिमें गर्भाधान, तदनन्तर पुंसवन-संस्कार करे। फिर सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, चार ब्रह्मचर्यव्रत—वैष्णवी, पार्थी, भौतिकी और श्रौतिकी, गोदान, समावर्तन, सात पाकयज्ञ—अष्टका, अन्वष्टका पार्वणश्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री एवं आश्वयुजी, सात हविर्यज्ञ—आधान, अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, पशुबन्ध तथा सौत्रामणी, सात सोमसंस्थाएँ—यज्ञश्रेष्ठ अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र एवं आप्तोर्याम; सहस्रेश यज्ञ—हिरण्याङ्घ्रि, हिरण्याक्ष, हिरण्यमित्र, हिरण्यपाणि, हेमाक्ष, हेमाङ्ग, हेमसूत्र, हिरण्यास्य, हिरण्याङ्ग, हेमजिह्व, हिरण्यवान् और सब यज्ञोंका स्वामी अश्वमेधयज्ञ तथा आठ गुण—सर्वभूतदया, क्षमा, आर्जव, शौच, अनायास, मङ्गल, अकृपणता और अस्पृहा—ये संस्कार करे। इष्टदेवके मूल-मन्त्रसे सौ आहुतियाँ दे। सौर, शाक्त, वैष्णव तथा शैव—सभी दीक्षाओंमें ये समान माने गये हैं। इन संस्कारोंसे संस्कृत होकर मनुष्य भोग-मोक्षको प्राप्त करता है। वह सम्पूर्ण रोगादिसे मुक्त होकर देववत् हो जाता है। मनुष्य अपने इष्टदेवताके जप, होम, पूजन तथा ध्यानसे इच्छित वस्तुको प्राप्त करता है ⁠।।⁠ १—१३ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘निर्वाणादि-दीक्षाकी सिद्धिके उद्देश्यसे सम्पादनीय संस्कारोंका वर्णन’ नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ ३२ ⁠।।

## तैंतीसवाँ अध्याय

### पवित्रारोपण, भूतशुद्धि, योगपीठस्थ देवताओं तथा प्रधान देवताके पार्षद—आवरणदेवोंकी पूजा

अग्निदेव कहते हैं—मुने! अब मैं पवित्रारोपणकी[[33]](#footnote-33) विधि बताऊँगा। वर्षमें एक बार किया गया पवित्रारोपण सम्पूर्ण वर्षभर की हुई श्रीहरिकी पूजाका फल देनेवाला है। आषाढ़ (-की शुक्ला एकादशी)-से लेकर कार्तिक (-की शुक्ला एकादशी)-तकके बीचके कालमें ही ‘पवित्रारोपण’ किया जाता है। प्रतिपदा धनद-तिथि है। द्वितीया आदि तिथियाँ क्रमशः लक्ष्मी आदि देवताओंकी हैं। यथा—लक्ष्मीकी द्वितीया[[34]](#footnote-34), गौरीकी तृतीया, गणेशकी चतुर्थी, सरस्वती (तथा नाग देवताओं)-की पञ्चमी, स्वामी कार्तिकेयकी षष्ठी, सूर्यकी सप्तमी, मातृकाओंकी अष्टमी, दुर्गाकी नवमी, नागों (या यमराज)-की दशमी, ऋषियों तथा भगवान् विष्णुकी एकादशी, श्रीहरिकी द्वादशी, कामदेवकी त्रयोदशी, शिवकी चतुर्दशी तथा ब्रह्माकी पौर्णमासी एवं अमावस्या तिथि है। जो मनुष्य जिस देवताका भक्त है, उसके लिये वही तिथि पवित्र है ⁠।।⁠ १—३ ⁠।।

पवित्रारोपणकी विधि सब देवताओंके लिये समान है; केवल मन्त्र आदि प्रत्येक देवताके लिये पृथक्-पृथक् बोले। पवित्रक बनानेके लिये सोने-चाँदी और ताँबेके तार तथा कपास आदिके सूत होने चाहिये[[35]](#footnote-35) ⁠।।⁠ ४ ⁠।।

ब्राह्मणीके हाथका काता हुआ सूत सर्वोत्तम है। वह न मिले तो किसी भी सूतको उसका संस्कार करके उपयोगमें लेना चाहिये। सूतको तिगुना करके, उसे पुनः तिगुना करे और उसीसे, अर्थात् नौ तन्तुओंद्वारा पवित्रक बनाये। एक सौ आठसे लेकर अधिक तन्तुओंद्वारा निर्मित पवित्रक उत्तम आदिकी श्रेणीमें गिना जाता है। (पवित्रारोपणके पूर्व) इष्ट देवतासे इस प्रकार प्रार्थना करे—‘प्रभो! क्रियालोपजनित दोषको दूर करनेके लिये आपने जो साधन बताया है, देव! वही मैं कर रहा हूँ। जहाँ जैसा पवित्रक आवश्यक है, वहाँके लिये वैसा ही पवित्रक अर्पित होगा। नाथ! आपकी कृपासे इस कार्यमें कोई विघ्न-बाधा न आवे। अविनाशी परमेश्वर! आपकी जय हो’ ⁠।।⁠ ५—७ ⁠।।

इस प्रकार प्रार्थना करके मनुष्य पहले इष्टदेवके मण्डलके लिये गायत्री-मन्त्रसे पवित्रक बाँधे। इष्टदेव नारायणके लिये गायत्री मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ नमो नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि, तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।’[[36]](#footnote-36) इष्टदेवताके नामके अनुरूप ही यह गायत्री है। देव-प्रतिमाओंपर अर्पित करनेके लिये अनेक प्रकारका पवित्रक होता है। एक तो विग्रहकी नाभितक पहुँचता है, दूसरा जाँघोंतक और तीसरा घुटनोंतक पहुँचता है। (ये क्रमशः कनिष्ठ, मध्यम तथा उत्तम श्रेणीमें परिगणित हैं।) एक चौथा प्रकार भी है, जो पैरोंतक लटकता है। यह पैरोंतक लटकनेवाला पवित्रक ‘वनमाला’ कहा जाता है। वह एक हजार आठ तन्तुओंसे तैयार किया जाता है। (इसका माहात्म्य सबसे अधिक है।) साधारण माला अपनी शक्तिके अनुसार बनायी जाती है। अथवा वह सोलह अङ्गुलसे दुगुनी बड़ी होनी चाहिये। कर्णिका, केसर और दल आदिसे युक्त जो यन्त्र या चक्र आदि मण्डल है, उस मण्डलको जो नीचेसे ऊपरतक ढक ले, ऐसा पवित्रक उसके ऊपर चढ़ाना चाहिये। एकचक्र और एकाब्ज आदि मण्डल (चक्र)-में, उस मण्डलका मान जितने अङ्गुलका हो, उतने अङ्गुल मानवाला पवित्रक अर्पित करना चाहिये। वेदीपर अपने सत्ताईस अङ्गुलके मापका पवित्रक अर्पित करे ⁠।।⁠ ८—१२ ⁠।।

आचार्योंके लिये, पिता-माता आदिके लिये तथा पुस्तकपर चढ़ानेके लिये (या स्वयं धारण करनेके लिये) जो पवित्रक बनावे, वह नाभितक ही लंबा होना चाहिये। उसमें बारह गाँठें लगी हों तथा उस पवित्रकपर गन्ध (चन्दन, रोली या केसर) लगाया गया हो। (वह उसीमें रँगा गया हो[[37]](#footnote-37)।) ब्रह्मन्! वनमालामें दो-दो अङ्गुलकी दूरीपर[[38]](#footnote-38) क्रमशः एक सौ आठ गाँठें रहनी चाहिये।[[39]](#footnote-39) अथवा कनिष्ठ, मध्यम तथा उत्तम पवित्रकमें क्रमशः बारह, चौबीस तथा छत्तीस गाँठें रखनी चाहिये। मन्द, मध्यम और उत्तम मालार्थी पुरुषोंको अनामिका, मध्यमा और अङ्गुष्ठसे ही पवित्रक-माला ग्रहण करनी चाहिये। अथवा कनिष्ठ आदि नामवाले पवित्रकमें समानरूपसे बारह-बारह ही गाँठें रहनी चाहिये। (केवल तन्तुओंकी संख्यामें और लंबाईमें भेद होनेसे उनकी भिन्न संज्ञाएँ मानी जाती हैं।) सूर्य, कलश तथा अग्नि आदिके लिये भी यथासम्भव विष्णु-भगवान्‌के तुल्य ही पवित्रक अर्पित करना उत्तम माना गया है। पीठके लिये पीठकी लंबाईके अनुसार तथा कुण्डके लिये भी मेखलापर्यन्त लंबा पवित्रक होना चाहिये। विष्णु-पार्षदोंके लिये यथाशक्ति सूत्र-ग्रन्थि देनी चाहिये। अथवा बिना ग्रन्थिके ही सत्रह सूत्र चढ़ावे और भद्र नामक पार्षदको त्रिसूत्र (तिरसुत) अर्पित करे ⁠।।⁠ १३—१७ ⁠।।

पवित्रकको रोचना, अगुरु-कर्पूर-मिश्रित हल्दी एवं कुङ्कुममें रंगसे रँग देना चाहिये। भक्त पुरुष एकादशीको स्नान, संध्या आदि करके पूजागृहमें जाकर भगवान् श्रीहरिका यजन करे। उनके समस्त परिवारको बलि देकर उसकी अर्चना करे। द्वारके अन्तमें ‘क्षं क्षेत्रपालाय नमः।’—बोलकर क्षेत्रपालकी पूजा करे। द्वारके ऊपर ‘श्रियै नमः।’ कहकर श्रीदेवीकी पूजा करे। द्वारके दक्षिण देशमें ‘धात्रे नमः।’, ‘गङ्गायै नमः।’—इन मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए ‘धाता’ तथा ‘गङ्गा’ जीकी अर्चना करे और वाम देशमें ‘विधात्रे नमः।’, ‘यमुनायै नमः।’—बोलकर विधाता एवं यमुनाजीकी पूजा करे। इसी तरह द्वारके दक्षिण-वाम देशमें क्रमशः ‘शङ्खनिधये नमः।’ ‘पद्मनिधये नमः।’ बोलकर शङ्खनिधि एवं पद्मनिधिकी पूजा करे। (फिर मण्डपके भीतर दाहिने पैरके पार्ष्णिभागको तीन बार पटककर विघ्नोंका अपसारण करे।)[[40]](#footnote-40) तदनन्तर ‘सारङ्गाय नमः’ बोलकर विघ्नकारी भूतोंको दूर भगावे। (इसके बाद ‘ॐ हां वास्त्वधिपतये ब्रह्मणे नमः।’ इस मन्त्रका उच्चारण करके ब्रह्माके स्थानमें पुष्प चढ़ावे।) फिर आसनपर बैठकर भूतशुद्धि[[41]](#footnote-41) करे ⁠।।⁠ १८—२१ ⁠।।

उसकी विधि यों है—

ॐ ह्रूं हः फट्‌ ह्रूं गन्धतन्मात्रं संहरामि नमः ⁠।

ॐ ह्रूं हः फट् ह्रूं रसतन्मात्रं संहरामि नमः ⁠।

ॐ ह्रूं हः फट्‌ ह्रूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः ⁠।

ॐ ह्रूं हः फट् ह्रूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः ⁠।

ॐ ह्रूं हः फट् ह्रूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ⁠।

—इस प्रकार पाँच उद्‌घात-वाक्योंका उच्चारण करके गन्धतन्मात्रस्वरूप भूमिमण्डलको, वज्रचिह्नित सुवर्णमय चतुरस्र पीठको तथा इन्द्रादि देवताओंको अपने युगल चरणोंमें स्थित देखते हुए उनका चिन्तन करे। इस प्रकार शुद्ध हुए गन्धतन्मात्रको रसतन्मात्रमें लीन करके उपासक इसी क्रमसे रसतन्मात्रका रूपतन्मात्रमें संहार करे। ‘ॐ ह्रूं हः फट् ह्रूं रसतन्मात्रं संहरामि नमः।’, ‘ॐ ह्रूं हः फट् ह्रूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः।’, ‘ॐ ह्रूं हः फट् ह्रूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः।’, ‘ॐ ह्रूं हः फट् ह्रूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः।’—इन चार उद्‌घात-वाक्योंका उच्चारण करके जानुसे लेकर नाभितकके भागको श्वेत कमलसे चिह्नित, शुक्लवर्ण एवं अर्धचन्द्राकार देखे। ध्यानद्वारा यह चिन्तन करे कि ‘इस जलीय भागके देवता वरुण हैं।’ उक्त चार उद्धातोंके उच्चारणसे रसतन्मात्राकी शुद्धि होती है। इसके बाद इस रसतन्मात्राका रूपतन्मात्रामें लय कर दे ⁠।।⁠ २२—३० ⁠।।

‘ॐ ह्रूं हः फट् ह्रूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः।’

‘ॐ ह्रूं हः फट् ह्रूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः।’

‘ॐ ह्रूं हः फट् ह्रूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः।’

—इन तीन उद्‌घातवाक्योंका उच्चारण करके नाभिसे लेकर कण्ठतकके भागमें त्रिकोणाकार अग्निमण्डलका चिन्तन करे। ‘उसका रंग लाल है; वह स्वस्तिकाकार चिह्नसे चिह्नित है। उसके अधिदेवता अग्नि हैं।’ इस प्रकार ध्यान करके शुद्ध किये हुए रूपतन्मात्रको स्पर्शतन्मात्रमें लीन करे। तत्पश्चात् ‘ॐ ह्रूं हः फट् ह्रूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः।’, ‘ॐ ह्रूं हः फट् ह्रूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः।’—इन दो उद्‌घातवाक्योंके उच्चारणपूर्वक कण्ठसे लेकर नासिकाके बीचके भागमें गोलाकार वायुमण्डलका चिन्तन करे—‘उसका रंग धूमके समान है। वह निष्कलङ्क चन्द्रमासे चिह्नित है।’ इस तरह शुद्ध हुए स्पर्श-तन्मात्रका ध्यानद्वारा ही शब्दतन्मात्रमें लय कर दे। इसके बाद ‘ॐ ह्रूं हः फट् ह्रूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः।’—इस एक उद्‌घातवाक्यसे शुद्ध स्फटिकके समान आकाशका नासिकासे लेकर शिखातकके भागमें चिन्तन करे। फिर उस शुद्ध हुए आकाशका (अहंकारमें) उपसंहार करे ⁠।।⁠ ३१—३७ ⁠।। तत्पश्चात् क्रमशः शोषण आदिके द्वारा देहकी शुद्धि करे। ध्यानमें यह देखे कि ‘यं’ बीजरूप वायुके द्वारा पैरोंसे लेकर शिखातकका सम्पूर्ण शरीर सूख गया है। फिर ‘रं’ बीज द्वारा अग्निको प्रकट करके देखे कि सारा शरीर अग्निकी ज्वालाओंमें आ गया और जलकर भस्म हो गया। इसके बाद ‘वं’ बीजका उच्चारण करके भावना करे कि ब्रह्मरन्ध्रसे अमृतका बिन्दु प्रकट हुआ है। उससे जो अमृतकी धारा प्रकट हुई है, उसने शरीरके उस भस्मको आप्लावित कर दिया है। तदनन्तर ‘लं’ बीजका उच्चारण करते हुए यह चिन्तन करे कि उस भस्मसे दिव्य देहका प्रादुर्भाव हो गया है। इस प्रकार दिव्य देहकी उद्भावना करके करन्यास और अङ्गन्यास करे। इसके बाद मानस-यागका अनुष्ठान करे। हृदय-कमलमें मानसिक पुष्प आदि उपचारोंद्वारा मूल-मन्त्रसे अङ्गोंसहित देवेश्वर भगवान् विष्णुका पूजन करे। वे भगवान् भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। भगवान्‌से मानसिक पूजा स्वीकार करनेके लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—‘देव! देवेश्वर केशव! आपका स्वागत है। मेरे निकट पधारिये और यथार्थरूपसे भावनाद्वारा प्रस्तुत इस मानसिक पूजाको ग्रहण कीजिये।’ योगपीठको धारण करनेवाली आधारशक्ति कूर्म, अनन्त (शेषनाग) तथा पृथ्वीका पीठके मध्यभागमें पूजन करना चाहिये। तदनन्तर अग्निकोण आदि चारों कोणोंमें क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्यका पूजन करे। पूर्व आदि मुख्य दिशाओंमें अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्यकी अर्चना करे।[[42]](#footnote-42) पीठके मध्य भागमें सत्त्वादि गुणोंका, कमलका, माया और अविद्या नामक तत्त्वोंका, कालतत्त्वका, सूर्यादि-मण्डलका तथा पक्षिराज गरुडका पूजन करे। पीठके वायव्यकोणसे ईशान-कोणतक गुरुपंक्तिकी पूजा करे ⁠।।⁠ ३८—४५ ⁠।।

गण, सरस्वती, नारद, नलकूबर, गुरु, गुरुपादुका, परम गुरु और उनकी पादुकाकी पूजा ही गुरुपंक्तिकी पूजा है। पूर्वसिद्ध और परसिद्ध शक्तियोंकी केसरोंमें पूजा करनी चाहिये। पूर्वसिद्ध शक्तियाँ ये हैं—लक्ष्मी, सरस्वती, प्रीति, कीर्ति, शान्ति, कान्ति, पुष्टि तथा तुष्टि। इनकी क्रमशः पूर्व आदि दिशाओंमें पूजा की जानी चाहिये। इसी तरह इन्द्र आदि दस दिक्‌पालोंका भी उनकी दिशाओंमें पूजन आवश्यक है। इन सबके बीचमें श्रीहरि विराजमान हैं। परसिद्धा शक्तियाँ—धृति, श्री, रति तथा कान्ति आदि हैं। मूल-मन्त्रसे भगवान् अच्युतकी स्थापना की जाती है। पूजाके प्रारम्भमें भगवान्‌से यों प्रार्थना करे—‘हे भगवन्! आप मेरे सम्मुख हों। (ॐ अभिमुखो भव ⁠।) पूर्व दिशामें मेरे समीप स्थित हों।’ इस तरह प्रार्थना करके स्थापनाके पश्चात् अर्घ्य-पाद्य आदि निवेदन कर गन्ध आदि उपचारोंद्वारा मूल-मन्त्रसे भगवान् अच्युतकी अर्चना करे। ॐ भीषय भीषय हृदयाय नमः ⁠। ॐ त्रासय त्रासय शिरसे नमः ⁠। ॐ मर्दय मर्दय शिखायै नमः ⁠। ॐ रक्ष रक्ष नेत्रत्रयाय नमः ⁠। ॐ प्रध्वंसय प्रध्वंसय कवचाय नमः ⁠। ॐ हूं फट् अस्त्राय नमः ⁠। इस प्रकार अग्निकोण आदि दिशाओंमें क्रमसे मूलबीजद्वारा अङ्गोंका पूजन करे ⁠।।⁠ ४६—५१ ⁠।।

पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें मूर्त्यात्मक आवरणकी अर्चना करे। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चार मूर्तियाँ हैं। अग्निकोण आदि कोणोंमें क्रमशः श्री, रति, धृति और कान्तिकी पूजा करे। ये भी श्रीहरिकी मूर्तियाँ हैं। अग्नि आदि कोणोंमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मकी परिचर्या करे। पूर्वादि दिशाओंमें शार्ङ्ग, मुशल, खड्ग तथा वनमालाकी अर्चना करे। उसके बाह्यभागमें पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर तथा ईशानकी पूजा करके नैर्ऋत्य और पश्चिमके बीचमें अनन्तकी तथा पूर्व और ईशानके बीचमें ब्रह्माजीकी अर्चना करे। इनके बाह्यभागमें वज्र आदि अस्त्रमय आवरणोंका पूजन करे। इनके भी बाह्यभागमें दिक्‌पालोंके वाहनरूप आवरण पूजनीय होते हैं। पूर्वादिके क्रमसे ऐरावत, छाग, भैंसा, वानर, मत्स्य, मृग, शश (खरगोश), वृषभ, कूर्म और हंस—इनकी पूजा करनी चाहिये। इनके भी बाह्यभागमें पृश्निगर्भ और कुमुद आदि द्वारपालोंकी पूजाकी विधि कही गयी है। पूर्वसे लेकर उत्तरतक प्रत्येक द्वारपर दो-दो द्वारपालोंकी पूजा आवश्यक है। तदनन्तर श्रीहरिको नमस्कार करके बाह्यभागमें बलि अर्पण करे। ‘ॐ विष्णुपार्षदेभ्यो नमः।’ बोलकर बलिपीठपर उनके लिये बलि समर्पित करे ⁠।।⁠ ५२—५७ ⁠।।

ईशानकोणमें ‘ॐ विश्वाय विष्वक्सेनात्मने नमः।’—इस मन्त्रसे विष्वक्सेनकी अर्चना करे। इसके बाद भगवान्‌के दाहिने हाथमें रक्षासूत्र बाँधे। उस समय भगवान्‌से इस प्रकार कहे—‘प्रभो! जो एक वर्षतक निरन्तर की हुई आपकी पूजाके सम्पूर्ण फलकी प्राप्तिमें हेतु है, वह पवित्रारोहण (या पवित्रारोपण) कर्म होनेवाला है; उसके लिये यह कौतुक (मङ्गल-सूत्र) धारण कीजिये।’ ‘ॐ नमः।’ इसके बाद भगवान्‌के समीप उपवास आदिका नियम ग्रहण करे और इस प्रकार कहे—‘मैं उपवासके साथ नियमपूर्वक रहकर इष्टदेवको संतुष्ट करूँगा। देवेश्वर! आजसे लेकर जबतक वैशेषिक (विशेष उत्सव)-का दिन न आ जाय, तबतक काम, क्रोध आदि सारे दोष मेरे पास किसी तरह भी न फटकने पावें।’ व्रती यजमान यदि उपवास करनेमें असमर्थ हो तो नक्त-व्रत (रातमें भोजन) किया करे। हवन करके भगवान्‌की स्तुतिके बाद उनका विसर्जन करे। भगवान्‌का नित्य-पूजन लक्ष्मीकी प्राप्ति करानेवाला है। ‘ॐ ह्रीं श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः।’—यह भगवान्‌की पूजाके लिये मन्त्र है ⁠।।⁠ ५८—६३ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘सर्वदेवसाधारणपवित्रारोपण-विधि-कथन’ नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ ३३ ⁠।।

## चौंतीसवाँ अध्याय

### पवित्रारोपणके लिये पूजा-होमादिकी विधि

**अग्निदेव कहते हैं—**मुनीश्वर! निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करते हुए साधक यागमण्डपमें प्रवेश करे और सजावटसे यज्ञके स्थानकी शोभा बढ़ावे (तथा निम्नाङ्कित श्लोक पढ़कर भगवान्‌को नमस्कार करे)—‘वेदों तथा ब्राह्मणोंके हितकारी देवता अव्ययात्मा भगवान् श्रीधरको नमस्कार है।’ ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद आपके स्वरूप हैं; शब्दमात्र आपके शरीर हैं; आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है।[[43]](#footnote-43) सायंकाल सर्वतोभद्रादि-मण्डलकी रचना करके यजन-पूजन-सम्बन्धी द्रव्योंका संग्रह करे। हाथ-पैर धो ले। सब सामग्रीको यथास्थान जँचाकर हाथमें अर्घ्य लेकर मनुष्य उसके जलसे अपने मस्तकको सींचे। फिर द्वारदेश आदिमें भी जल छिड़के। तदनन्तर द्वारयाग (द्वारस्थ देवताओंका पूजन) आरम्भ करे। पहले तोरणेश्वरोंकी भलीभाँति पूजा करे। पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे अश्वत्थ, उदुम्बर, वट तथा पाकर—ये वृक्ष पूजनीय हैं। इनके सिवा पूर्व दिशामें ऋग्वेद, इन्द्र तथा शोभनकी, दक्षिणमें यजुर्वेद, यम तथा सुभद्रकी, पश्चिममें सामवेद, वरुण तथा सुधन्वाकी और उत्तरमें अथर्ववेद, सोम एवं सुहोत्रकी अर्चना करे ⁠।।⁠ १—५ ⁠।।

तोरण (फाटक)-के भीतर पताकाएँ फहरायी जायँ, दो-दो कलश स्थापित हों और कुमुद आदि दिग्गजोंका पूजन हो। प्रत्येक दरवाजेपर दो-दो द्वारपालोंकी उनके नाम-मन्त्रसे ही पूजा की जाय। पूर्व दिशामें पूर्ण और पुष्करका, दक्षिण दिशामें आनन्द और नन्दनका, पश्चिममें वीरसेन और सुषेणका तथा उत्तर दिशामें सम्भव और प्रभव नामक द्वारपालोंका पूजन करना चाहिये। अस्त्र-मन्त्र (फट्)-के उच्चारणपूर्वक फूल बिखेरकर विघ्नोंका अपसारण करनेके पश्चात् मण्डपके भीतर प्रवेश करे। भूतशुद्धि, न्यास और मुद्रा करके शिखा (वषट्)-के अन्तमें ‘फट्’ जोड़कर उसका जप करते हुए सम्पूर्ण दिशाओंमें सरसों छींटे। इसके बाद वासुदेव-मन्त्रसे गोमूत्र, संकर्षण-मन्त्रसे गोमय, प्रद्युम्न-मन्त्रसे गोदुग्ध, अनिरुद्ध-मन्त्रसे दही और नारायण-मन्त्रसे घृत लेकर सबको घृतपात्रमें एकत्र करे; अन्य वस्तुओंका भाग घीसे अधिक होना चाहिये। इन सबके मिलनेसे जो वस्तु तैयार होती है, उसे ‘पञ्चगव्य’ कहा गया है। पञ्चगव्य एक, दो या तीन बार अलग-अलग बनावे। इनमेंसे एक तो मण्डप (तथा वहाँकी वस्तुओं)-का प्रोक्षण करनेके लिये है, दूसरा प्राशनके लिये और तीसरा स्नानके उपयोगमें आता है। दस कलशोंकी स्थापना करके उनमें इन्द्रादि लोकपालोंकी पूजा करे। पूजन करके उन्हें श्रीहरिकी आज्ञा सुनावे—‘लोकपालगण! आपको इस यज्ञकी रक्षाके लिये श्रीहरिकी आज्ञासे यहाँ सदा स्थित रहना चाहिये’ ⁠।।⁠ ६—१२ ⁠।।

याग-द्रव्य आदिकी रक्षाकी व्यवस्था करके विकिर[[44]](#footnote-44) (विघ्न-निवारणके लिये सब ओर छींटे जानेवाले सर्षप आदि) द्रव्योंको बिखेरे। सात[[45]](#footnote-45) बार अस्त्र-सम्बन्धी मूल-मन्त्र (अस्त्राय फट्)-का जप करते हुए ही उक्त वस्तुओंको सब ओर बिखेरना चाहिये। फिर उसी तरह अस्त्र-मन्त्रका जप करके कुश[[46]](#footnote-46)-कूर्च ले आवे। उन्हें ईशान कोणमें रखकर उन्हींके ऊपर कलश और वर्धनीको स्थापित करे। कलशमें श्रीहरिका साङ्ग पूजन करके वर्धनीमें अस्त्रकी अर्चना करे। वर्धनीकी छिन्न धारासे यागमण्डपको प्रदक्षिणाक्रमसे सींचते हुए कलशको उसके उपयुक्त स्थानपर ले जाय और स्थिर आसनपर स्थापित करके उसकी पूजा करे। कलशके भीतर पञ्चरत्न डाले। उसके ऊपर वस्त्र लपेटे। फिर उसपर गन्ध आदि उपचारोंद्वारा श्रीहरिका पूजन करे। वर्धनीमें भी सोनेका टुकड़ा डाले। उसके बाद उसपर अस्त्रकी पूजा करके, उसके वाम-भागमें पास ही, वास्तु-लक्ष्मी तथा ‘भूविनायक’ की अर्चना करे। संक्रान्ति आदिके समय इसी प्रकार श्रीविष्णुके स्नान-अभिषेककी व्यवस्था करे। मण्डपके कोणों और दिशाओंमें कुल मिलाकर आठ और मध्यमें एक—इस प्रकार नौ पूर्ण कलशोंको, जिनमें छिद्र न हों, स्थापित करके उनमें पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय तथा पञ्चगव्य डाले। पूर्व आदिके कलशोंमें उक्त वस्तुएँ डालनी चाहिये। अग्निकोण आदिके कलशोंमें उक्त वस्तुओंके अतिरिक्त पञ्चामृतयुक्त जल अधिक डालनेका विधान है। पाद्यकी अङ्गभूता चार वस्तुएँ हैं—दही, दूध, मधु और गरम जल ⁠।।⁠ १३—१९ ⁠।।

किन्हींके मतमें कमल, श्यामाक (तिन्नीका चावल), दूर्वादल और विष्णुक्रान्ता ओषधि—इन चार वस्तुओंसे युक्त जल ‘पाद्य’ कहलाता है[[47]](#footnote-47)। इसी तरह अर्घ्यके भी आठ अङ्ग कहे गये हैं। जौ, गन्ध, फल, अक्षत, कुश, सरसों, फूल और तिल—इन आठ द्रव्योंका अर्घ्यके लिये संग्रह करना चाहिये[[48]](#footnote-48)। जाती (जायफल), लवङ्ग और कङ्कोलयुक्त जलका आचमन[[49]](#footnote-49) देना चाहिये। इष्टदेवको मूलमन्त्रसे पञ्चामृतद्वारा स्नान करावे। बीचवाले कलशसे भगवान्‌के मस्तकपर शुद्ध जलका छींटा दे। कलशसे निकले हुए जल एवं कूर्चाग्रका स्पर्श करे। फिर शुद्ध जलसे पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय निवेदन करे। तत्पश्चात् वस्त्रसे भगवान्‌के श्रीविग्रहको पोंछकर वस्त्र धारण करावे और वस्त्रके सहित उन्हें मण्डलमें ले जाय। वहाँ भलीभाँति पूजा करके प्राणायामपूर्वक कुण्ड आदिमें होम करे। (हवनकी विधि—) दोनों हाथ धोकर कुण्डमें या वेदीपर तीन पूर्वाग्र रेखाएँ खींचे। ये रेखाएँ दक्षिणकी ओरसे आरम्भ करके क्रमशः उत्तरकी ओर खींची जायँ। फिर इन्हींके ऊपर तीन उत्तराग्र रेखाएँ खींचे। (ये भी दाहिनेसे आरम्भ करके क्रमशः बायें खींची जायँ) ⁠।।⁠ २०—२५ ⁠।।

तत्पश्चात् अर्घ्यके जलसे इन रेखाओंका प्रोक्षण करे और योनिमुद्रा[[50]](#footnote-50) दिखावे। अग्निका आत्मरूपसे चिन्तन करके मनुष्य योनियुक्त कुण्डमें उसकी स्थापना करे। इसके बाद दर्भ, स्रुक्, स्रुवा आदिके साथ पात्रासादन करे। बाहुमात्रकी परिधियाँ, इध्मव्रश्चन, प्रणीतापात्र, प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली, घी, दो-दो सेर चावल तथा अधोमुख स्रुक् और स्रुवाकी जोड़ी। प्रणीता एवं प्रोक्षणीमें पूर्वाग्र कुश रखे। प्रणीताको जलसे भरकर भगवान्‌का ध्यान-पूजन करके उसको अग्निके पश्चिम अपने आगे और आसादित द्रव्योंके मध्यमें रखे। प्रोक्षणीको जलसे भरकर पूजनके पश्चात् दाहिने रखे। आगपर चरुको चढ़ाकर पकावे और अग्निसे दक्षिण दिशामें ब्रह्माजीकी स्थापना करे। कुण्ड या वेदीके चारों ओर पूर्वादि दिशामें कुश (बर्हिष्) बिछाकर परिधियोंको स्थापित करे। तदनन्तर गर्भाधानादि संस्कारके द्वारा अग्निका वैष्णवीकरण करे। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म एवं नामकरणादि-समावर्तनान्त संस्कार करके प्रत्येक कर्मके लिये आठ-आठ आहुतियाँ दे तथा स्रुवायुक्त स्रुक्‌के द्वारा पूर्णाहुति प्रदान करे ⁠।।⁠ २६—३३ ⁠।।

कुण्डके भीतर ऋतुस्नाता लक्ष्मीका ध्यान करके हवन करे। कुण्डके भीतर जो लक्ष्मी हैं, उन्हें ‘कुण्डलक्ष्मी’ कहा गया है। वे ही त्रिगुणात्मिका प्रकृति हैं। ‘वे सम्पूर्ण भूतोंकी तथा विद्या एवं मन्त्र-समुदायकी योनि हैं। परमात्मस्वरूप अग्निदेव मोक्षके कारण एवं मुक्तिदाता हैं। पूर्व दिशाकी ओर कुण्डलक्ष्मीका सिर है, ईशान और अग्निकोणकी ओर उसकी भुजाएँ हैं, वायव्य तथा नैर्ऋत्यकोणमें जंघाएँ हैं, उदरको ‘कुण्ड’ कहा है तथा योनिके स्थानमें कुण्ड-योनिका विधान है। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण ही तीन मेखलाएँ हैं।’ इस प्रकार ध्यान करके प्रणवमन्त्रसे मुष्टिमुद्राद्वारा पंद्रह समिधाओंका होम करे। फिर वायुसे लेकर अग्निकोणतक ‘आघार’ नामक दो आहुतियाँ दे। इसी तरह आग्नेयसे ईशानान्ततक ‘आज्य-भाग’ नामक आहुतियोंका हवन करे। आज्यस्थालीमेंसे उत्तर, दक्षिण और मध्यभागसे घृत लेकर द्वादशान्तसे, अर्थात् मूलको बारह बार जप कर अग्निमें भी उन्हीं दिशाओंमें उसकी आहुति दे और वहीं उसका त्याग करे[[51]](#footnote-51)। इसके बाद ‘भूः स्वाहा’ इत्यादि रूपसे व्याहृति-होम करे। कमलके मध्यभागमें संस्कारसम्पन्न अग्निदेवका ‘विष्णु’ रूपमें ध्यान करे। ‘वे सात जिह्वाओंसे युक्त हैं, करोड़ों सूर्योंके समान उनकी प्रभा है, चन्द्रोपम मुख है और सूर्य-सदृश देदीप्यमान नेत्र हैं।’ इस तरह ध्यान करके उनके लिये एक सौ आठ आहुतियाँ दे। अथवा मूल-मन्त्रसे उसकी आधी एवं आठ आहुतियाँ दे। अङ्गोंके लिये भी दस-दस आहुतियाँ दे ⁠।।⁠ ३४—४१ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘पवित्रारोपण-सम्बन्धी पूजा-होम-विधिका वर्णन’ विषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ ३४ ⁠।।

## पैंतीसवाँ अध्याय

### पवित्राधिवासन-विधि

अग्निदेव कहते हैं—मुनीश्वर! सम्पाताहुतिसे पवित्राओंका सेचन करके उनका अधिवासन करना चाहिये। नृसिंह-मन्त्रका जप करके उन्हें अभिमन्त्रित करे और अस्त्रमन्त्र (अस्त्राय फट्।)-से उन्हें सुरक्षित रखे। पवित्राओंमें वस्त्र लपेटे हुए ही उन्हें पात्रमें रखकर अभिमन्त्रित करना चाहिये। बिल्व आदिके सम्पर्कसे युक्त जलद्वारा मन्त्रोच्चारणपूर्वक उन सबका एक या दो बार प्रोक्षण करना चाहिये। गुरुको चाहिये कि कुम्भपात्रमें पवित्राओंको रखकर उनकी रक्षाके उद्देश्यसे उस पात्रसे पूर्व-दिशामें संकर्षण-मन्त्रद्वारा दन्तकाष्ठ और आँवला, दक्षिण-दिशामें प्रद्युम्न-मन्त्रद्वारा भस्म और तिल, पश्चिम-दिशामें अनिरुद्ध-मन्त्रद्वारा गोबर और मिट्टी तथा उत्तर-दिशामें नारायण-मन्त्रद्वारा कुशोदक डाले। तदनन्तर अग्निकोणमें हृदय-मन्त्रसे कुङ्कुम तथा रोचना, ईशानकोणमें शिरोमन्त्रद्वारा धूप, नैर्ऋत्यकोणमें शिखामन्त्रद्वारा दिव्य मूलपुष्प तथा वायव्यकोणमें कवच-मन्त्रद्वारा चन्दन, जल, अक्षत, दही और दूर्वाको दोनेमें रखकर छीटे। मण्डपको त्रिसूत्रसे आवेष्टित करके पुनः सब ओर सरसों बिखेरे ⁠।।⁠ १—६ ⁠।।

देवताओंकी जिस क्रमसे पूजा की गयी हो, उसी क्रमसे, उनके लिये उनके अपने-अपने नाम-मन्त्रोंसे गन्धपवित्रक[[52]](#footnote-52) देना चाहिये। द्वारपाल आदिको नाम-मन्त्रोंसे ही गन्धपवित्रक अर्पित करे। इसी क्रमसे कुम्भमें भगवान् विष्णुको सम्बोधित करके पवित्रक दे—‘हे देव! यह आप भगवान् विष्णुके ही तेजसे उत्पन्न रमणीय तथा सर्वपातकनाशन पवित्रक है। यह सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है, इसे मैं आपके अङ्गमें धारण कराता हूँ।’ धूप-दीप आदिके द्वारा सम्यक् पूजन करके मण्डपके द्वारके समीप जाय तथा गन्ध, पुष्प और अक्षतसे युक्त वह पवित्रक स्वयंको भी अर्पित करे। अपनेको अर्पण करते समय इस प्रकार कहे—‘यह पवित्रक भगवान् विष्णुका तेज है और बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है; मैं धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धिके लिये इसे अपने अङ्गमें धारण करता हूँ।’ आसनपर भगवान् श्रीहरिके परिवार आदिको एवं गुरुको पवित्रक दे। गन्ध, पुष्प और अक्षत आदिसे भगवान् श्रीहरिकी पूजा करके गन्ध-पुष्पादिसे पूजित पवित्रक श्रीहरिको अर्पित करे। उस समय ‘विष्णुतेजोभवम्’ इत्यादि मूलमन्त्रका उच्चारण करे ⁠।।⁠ ७—१२ ⁠।।

तदनन्तर अग्निमें अधिष्ठातारूपसे स्थित भगवान् विष्णुको पवित्रक अर्पित करके उन परमेश्वरसे यों प्रार्थना करे—‘केशव! आपका श्रीविग्रह क्षीरसागरमें महानाग (अनन्त)-की शय्यापर शयन करनेवाला है। मैं प्रातःकाल आपकी पूजा करूँगा; आप मेरे समीप पधारिये।’ इसके बाद इन्द्र आदि दिक्‌पालोंको बलि अर्पित करके श्रीविष्णु-पार्षदोंको भी बलि भेंट करे। इसके बाद भगवान्‌के सम्मुख युगलवस्त्र-भूषित तथा रोचना, कर्पूर, केसर और गन्ध आदिके जलसे पूरित कलशको गन्ध-पुष्प आदिसे विभूषित करके मूलमन्त्रसे उसकी पूजा करे। फिर मण्डपसे बाहर आकर पूर्व दिशामें लिये हुए मण्डलत्रयमें पञ्चगव्य, चरु और दन्तकाष्ठका क्रमशः सेवन करे।[[53]](#footnote-53) रातमें पुराणश्रवण तथा स्तोत्रपाठ करते हुए जागरण करे। पर प्रेषक बालकों, स्त्रियों तथा भोगीजनोंके उपयोगमें आनेवाले गन्धपवित्रकको छोड़कर शेषका तत्काल अधिवासन करे ⁠।।⁠ १३—१८ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘पवित्राधिवासन-विधिका वर्णन’ नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ ३५ ⁠।।

## छत्तीसवाँ अध्याय

### भगवान् विष्णुके लिये पवित्रारोपणकी विधि

अग्निदेव कहते हैं—मुने! प्रातःकाल स्नान आदि करके, द्वारपालोंका पूजन करनेके पश्चात् गुप्त स्थानमें प्रवेश करके, पूर्वाधिवासित पवित्रकमेंसे एक लेकर प्रसादरूपसे धारण कर ले। शेष द्रव्य-वस्त्र, आभूषण, गन्ध एवं सम्पूर्ण निर्माल्यको हटाकर भगवान्‌को स्नान करानेके पश्चात् उनकी पूजा करे। पञ्चामृत, कषाय एवं शुद्ध गन्धोदकसे नहलाकर भगवान्‌के निमित्त पहलेसे रखे हुए वस्त्र, गन्ध और पुष्पको उनकी सेवामें प्रस्तुत करे। अग्निमें नित्यहोमकी भाँति हवन करके भगवान्‌की स्तुति-प्रार्थना करनेके अनन्तर उनके चरणोंमें मस्तक नवावे। फिर अपने समस्त कर्म भगवान्‌को अर्पित करके उनकी नैमित्तिकी पूजा करे। द्वारपाल, विष्णु, कुम्भ और वर्धनीकी प्रार्थना करे। ‘अतो देवाः’ इत्यादि मन्त्रसे, अथवा मूल-मन्त्रसे कलशपर श्रीहरिकी स्तुति-प्रार्थना करे—‘हे कृष्ण! हे कृष्ण! आपको नमस्कार है। इस पवित्रकको ग्रहण कीजिये। यह उपासकको पवित्र करनेके लिये है और वर्षभर की हुई पूजाके सम्पूर्ण फलको देनेवाला है। नाथ! पहले मुझसे जो दुष्कृत (पाप) बन गया हो, उसे नष्ट करके आप मुझे परम पवित्र बना दीजिये। देव! सुरेश्वर! आपकी कृपासे मैं शुद्ध हो जाऊँगा।’[[54]](#footnote-54) हृदय, सिर आदि मन्त्रोंद्वारा पवित्रकका तथा अपना भी अभिषेक करके विष्णुकलशका भी प्रोक्षण करनेके बाद भगवान्‌के समीप जाय। उनके रक्षाबन्धनको हटाकर उन्हें पवित्रक अर्पण करे और कहे—‘प्रभो! मैंने जो ब्रह्मसूत्र तैयार किया है, इसे आप ग्रहण करें। यह कर्मकी पूर्तिका साधक है; अतः इस पवित्रारोपण कर्मको आप इस तरह सम्पन्न करें, जिससे मुझे दोषका भागी न होना पड़े’ ⁠।।⁠ १—९ ⁠।।

द्वारपाल, योगपीठासन तथा मुख्य गुरुओंको पवित्रक चढ़ावे। इनमें कनिष्ठ श्रेणीका (नाभितकका) पवित्रक द्वारपालोंको, मध्यम श्रेणीका (जाँघतक लटकनेवाला) पवित्रक योगपीठासनको और उत्तम (घुटनेतकका) पवित्रक गुरुजनोंको दे। साक्षात् भगवान्‌को मूल-मन्त्रसे वनमाला (पैरोंतक लटकनेवाला पवित्रक) अर्पित करे। ‘नमो विष्वक्सेनाय’ मन्त्र बोलकर विष्वक्सेनको भी पवित्रक चढ़ावे। अग्निमें होम करके अग्निस्थ विश्वादि देवताओंको पवित्रक अर्पित करे। तदनन्तर पूजनके पश्चात् मूल-मन्त्रसे प्रायश्चित्तके उद्देश्यसे पूर्णाहुति दे। अष्टोत्तरशत अथवा पाँच औपनिषद-मन्त्रोंसे पूर्णाहुति देनी चाहिये। मणि या मूँगोंकी मालाओंसे अथवा मन्दार-पुष्प आदिसे अष्टोत्तरशतकी गणना करनी चाहिये। अन्तमें भगवान्‌से इस प्रकार प्रार्थना करे—‘गरुडध्वज! यह आपकी वार्षिक पूजा सफल हो। देव! जैसे वनमाला आपके वक्षःस्थलमें सदा शोभा पाती है, उसी तरह पवित्रकके इन तन्तुओंको और इनके द्वारा की गयी पूजाको भी आप अपने हृदयमें धारण करें। मैंने इच्छासे या अनिच्छासे नियमपूर्वक की जानेवाली पूजामें जो त्रुटियाँ की हैं, विघ्नवश विधिके पालनमें जो न्यूनता हुई है, अथवा कर्मलोपका प्रसङ्ग आया है, वह सब आपकी कृपासे पूर्ण हो जाय। मेरे द्वारा की हुई आपकी पूजा पूर्णतः सफल हो’ ⁠।।⁠ १०—१५ ⁠।।

इस प्रकार प्रार्थना और नमस्कार करके अपराधोंके लिये क्षमा माँगकर पवित्रकको मस्तकपर चढ़ावे। फिर यथायोग्य बलि अर्पित करके दक्षिणाद्वारा वैष्णव गुरुको संतुष्ट करे। यथाशक्ति एक दिन या एक पक्षतक ब्राह्मणोंको भोजन-वस्त्र आदिसे संतोष प्रदान करे। स्नानकालमें पवित्रकको उतारकर पूजा करे। उत्सवके दिन किसीको आनेसे न रोके और सबको अनिवार्यरूपसे अन्न देकर अन्तमें स्वयं भी भोजन करे। विसर्जनके दिन पूजन करके पवित्रकोंका विसर्जन करे और इस प्रकार प्रार्थना करे—‘हे पवित्रक! मेरी इस वार्षिक पूजाको विधिवत् सम्पादित करके अब तुम मेरे द्वारा विसर्जित हो विष्णुलोकको पधारो।’ उत्तर और ईशानकोणके बीचमें विष्वक्सेनकी पूजा करके उनके भी पवित्रकोंकी अर्चना करनेके पश्चात् उन्हें ब्राह्मणको दे दे। उस पवित्रकमें जितने तन्तु कल्पित हुए हैं, उतने सहस्र युगोंतक उपासक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। साधक पवित्रारोपणसे अपनी सौ पूर्व पीढ़ियोंका उद्धार करके दस पहले और दस बादकी पीढ़ियोंको विष्णुलोकमें स्थापित करता और स्वयं भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है ⁠।।⁠ १६—२३ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘विष्णु-पवित्रारोपणविधि-निरूपण’ नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ ३६ ⁠।।

## सैंतीसवाँ अध्याय

### संक्षेपसे समस्त देवताओंके लिये साधारण पवित्रारोपणकी विधि

**अग्निदेव कहते हैं**—मुने! अब संक्षेपसे समस्त देवताओंके लिये पवित्रारोपणकी विधि सुनो। पहले जो चिह्न कहे गये हैं, उन्हीं लक्षणोंसे युक्त पवित्रक देवताको अर्पित किया जाता है। उसके दो भेद होते हैं ‘स्वरस’ और ‘अनलग’। पहले निम्नाङ्कित रूपसे इष्टदेवताको निमन्त्रण देना चाहिये—‘जगत्‌के कारणभूत ब्रह्मदेव! आप परिवार-सहित यहाँ पधारें। मैं आपको निमन्त्रित करता हूँ। कल प्रातःकाल आपकी सेवामें पवित्रक अर्पित करूँगा।’ फिर दूसरे दिन पूजनके पश्चात् निम्नाङ्कित प्रार्थना करके पवित्रक भेंट करे—‘संसारकी सृष्टि करनेवाले आप विधाताको नमस्कार है। यह पवित्रक ग्रहण कीजिये। इसे अपनेको पवित्र करनेके लिये आपकी सेवामें प्रस्तुत किया गया है। यह वर्षभरकी पूजाका फल देनेवाला है।’ ‘शिवदेव! वेदवेत्ताओंके पालक प्रभो! आपको नमस्कार है। यह पवित्रक स्वीकार कीजिये। इसके द्वारा आपके लिये मणि, मूँगे और मन्दार-कुसुम आदिसे प्रतिदिन एक वर्षतक की जानेवाली पूजा सम्पादित हो।’ ‘पवित्रक! मेरी इस वार्षिक-पूजाका विधिवत् सम्पादन करके मुझसे विदा लेकर अब तुम स्वर्गलोकको पधारो।’ ‘सूर्यदेव! आपको नमस्कार है; यह पवित्रक लीजिये। इसे पवित्रीकरणके उद्देश्यसे आपकी सेवामें अर्पित किया गया है। यह एक वर्षकी पूजाका फल देनेवाला है।’ ‘गणेशजी! आपको नमस्कार है; यह पवित्रक स्वीकार कीजिये। इसे पवित्रीकरणके उद्देश्यसे दिया गया है। यह वर्षभरकी पूजाका फल देनेवाला है।’ ‘शक्ति देवि! आपको नमस्कार है; यह पवित्रक लीजिये। इसे पवित्रीकरणके उद्देश्यसे आपकी सेवामें भेंट किया गया है। यह वर्षभरकी पूजाका फल देनेवाला है’ ⁠।।⁠ १—९ ⁠।।

‘पवित्रकका यह उत्तम सूत नारायणमय और अनिरुद्धमय है। धन-धान्य, आयु तथा आरोग्यको देनेवाला है, इसे मैं आपकी सेवामें दे रहा हूँ। यह श्रेष्ठ सूत प्रद्युम्नमय और संकर्षणमय है, विद्या, संतति तथा सौभाग्यको देनेवाला है। इसे मैं आपकी सेवामें अर्पित करता हूँ। यह वासुदेवमय सूत्र धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको देनेवाला है। संसारसागरसे पार लगानेका यह उत्तम साधन है, इसे आपके चरणोंमें चढ़ा रहा हूँ। यह विश्वरूपमय सूत्र सब कुछ देनेवाला और समस्त पापोंका नाश करनेवाला है; भूतकालके पूर्वजों और भविष्यकी भावी संतानोंका उद्धार करनेवाला है, इसे आपकी सेवामें प्रस्तुत करता हूँ। कनिष्ठ, मध्यम, उत्तम एवं परमोत्तम—इन चार प्रकारके पवित्रकोंका मन्त्रोच्चारणपूर्वक क्रमशः दान करता हूँ’ ⁠।।⁠ १०—१४ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘संक्षेपतः सर्वदेवसाधारण पवित्रारोपण’ नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ ३७ ⁠।।

## अड़तीसवाँ अध्याय

### देवालय-निर्माणसे प्राप्त होनेवाले फल आदिका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—मुनिवर वसिष्ठ! भगवान् वासुदेव आदि विभिन्न देवताओंके निमित्त मन्दिरका निर्माण करानेसे जिस फल आदिकी प्राप्ति होती है, अब मैं उसीका वर्णन करूँगा। जो देवताके लिये मन्दिर-जलाशय आदिके निर्माण करानेकी इच्छा करता है, उसका वह शुभ संकल्प ही उसके हजारों जन्मोंके पापोंका नाश कर देता है। जो मनसे भावनाद्वारा भी मन्दिरका निर्माण करते हैं, उनके सैकड़ों जन्मोंके पापोंका नाश हो जाता है। जो लोग भगवान् श्रीकृष्णके लिये किसी दूसरेके द्वारा बनवाये जाते हुए मन्दिरके निर्माण-कार्यका अनुमोदन मात्र कर देते हैं, वे भी समस्त पापोंसे मुक्त हो उन अच्युतदेवके लोक (वैकुण्ठ अथवा गोलोकधामको) प्राप्त होते हैं। भगवान् विष्णुके निमित्त मन्दिरका निर्माण करके मनुष्य अपने भूतपूर्व तथा भविष्यमें होनेवाले दस हजार कुलोंको तत्काल विष्णुलोकमें जानेका अधिकारी बना देता है। श्रीकृष्ण-मन्दिरका निर्माण करनेवाले मनुष्यके पितर नरकके क्लेशोंसे तत्काल छुटकारा पा जाते हैं और दिव्य वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हो बड़े हर्षके साथ विष्णुधाममें निवास करते हैं। देवालयका निर्माण ब्रह्महत्या आदि पापोंके पुञ्जका नाश करनेवाला है ⁠।।⁠ १—५ ⁠।।

यज्ञोंसे जिस फलकी प्राप्ति नहीं होती है, वह भी देवालयका निर्माण करानेमात्रसे प्राप्त हो जाता है। देवालयका निर्माण करा देनेपर समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त हो जाता है। देवता-ब्राह्मण आदिके लिये रणभूमिमें मारे जानेवाले धर्मात्मा शूरवीरोंको जिस फल आदिकी प्राप्ति होती है, वही देवालयके निर्माणसे भी सुलभ होता है। कोई शठता (कंजूसी)-के कारण धूल-मिट्टीसे भी देवालय बनवा दे तो वह उसे स्वर्ग या दिव्यलोक प्रदान करनेवाला होता है। एकायतन (एक ही देवविग्रहके लिये एक कमरेका) मन्दिर बनवानेवाले पुरुषको स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। त्र्यायतन-मन्दिरका निर्माता ब्रह्मलोकमें निवास पाता है। पञ्चायतन-मन्दिरका निर्माण करनेवालेको शिवलोककी प्राप्ति होती है और अष्टायतन-मन्दिरके निर्माणसे श्रीहरिकी संनिधिमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। जो षोडशायतन-मन्दिरका निर्माण कराता है, वह भोग और मोक्ष, दोनों पाता है। श्रीहरिके मन्दिरकी तीन श्रेणियाँ हैं—कनिष्ठ, मध्यम और श्रेष्ठ। इनका निर्माण करानेसे क्रमशः स्वर्गलोक, विष्णुलोक तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है। धनी मनुष्य भगवान् विष्णुका उत्तम श्रेणीका मन्दिर बनवाकर जिस फलको प्राप्त करता है, उसे ही निर्धन मनुष्य निम्नश्रेणीका मन्दिर बनवाकर भी प्राप्त कर लेता है। धन-उपार्जनकर उसमेंसे थोड़ा-सा ही खर्च करके यदि मनुष्य देव-मन्दिर बनवा ले तो बहुत अधिक पुण्य एवं भगवान्‌का वरदान प्राप्त करता है। एक लाख या एक हजार या एक सौ अथवा उसका आधा (५०) मुद्रा ही खर्च करके भगवान् विष्णुका मन्दिर बनवानेवाला मनुष्य उस नित्य धामको प्राप्त होता है, जहाँ साक्षात् गरुडकी ध्वजा फहरानेवाले भगवान् विष्णु विराजमान होते हैं ⁠।।⁠ ६—१२ ⁠।।

जो लोग बचपनमें खेलते समय धूलिसे भगवान् विष्णुका मन्दिर बनाते हैं, वे भी उनके धामको प्राप्त होते हैं। तीर्थमें, पवित्र स्थानमें, सिद्धक्षेत्रमें तथा किसी आश्रमपर जो भगवान् विष्णुका मन्दिर बनवाते हैं, उन्हें अन्यत्र मन्दिर बनानेका जो फल बताया गया है, उससे तीन गुना अधिक फल मिलता है। जो लोग भगवान् विष्णुके मन्दिरको चूनेसे लिपाते और उसपर बन्धूकके फूलका चित्र बनाते हैं, वे अन्तमें भगवान्‌के धाममें पहुँच जाते हैं। भगवान्‌का जो मन्दिर गिर गया हो, गिर रहा हो, अथवा आधा गिर चुका हो, उसका जो मनुष्य जीर्णोद्धार करता है, वह नवीन मन्दिर बनवानेकी अपेक्षा दूना पुण्यफल प्राप्त करता है। जो गिरे हुए विष्णु-मन्दिरको पुनः बनवाता और गिरे हुएकी रक्षा करता है, वह मनुष्य साक्षात् भगवान् विष्णुका स्वरूप प्राप्त करता है। भगवान्‌के मन्दिरकी ईंटें जबतक रहती हैं, तबतक उसका बनवानेवाला विष्णुलोकमें कुलसहित प्रतिष्ठित होता है। इस संसारमें और परलोकमें वही पुण्यवान् और पूजनीय है ⁠।।⁠ १३—२० ⁠।।

जो भगवान् श्रीकृष्णका मन्दिर बनवाता है, वही पुण्यवान् उत्पन्न हुआ है, उसीने अपने कुलकी रक्षा की है। जो भगवान् विष्णु, शिव, सूर्य और देवी आदिका मन्दिर बनवाता है, वही इस लोकमें कीर्तिका भागी होता है। सदा धनकी रक्षामें लगे रहनेवाले मूर्ख मनुष्यको बड़े कष्टसे कमाये हुए अधिक धनसे क्या लाभ हुआ, यदि वह उससे श्रीकृष्णका मन्दिर ही नहीं बनवाता। जिसका धन पितरों, ब्राह्मणों और देवताओंके उपयोगमें नहीं आता तथा बन्धु-बान्धवोंके भी उपयोगमें नहीं आ सका, उसके धनकी प्राप्ति व्यर्थ हुई। जैसे प्राणियोंकी मृत्यु निश्चित है, उसी प्रकार कमाये हुए धनका नाश भी निश्चित है। मूर्ख मनुष्य ही क्षणभङ्गुर जीवन और चञ्चल धनके मोहमें बँधा रहता है। जब धन दानके लिये, प्राणियोंके उपभोगके लिये, कीर्तिके लिये और धर्मके लिये काममें नहीं लाया जा सके तो उस धनका मालिक बननेमें क्या लाभ है? इसलिये प्रारब्धसे मिले अथवा पुरुषार्थसे, किसी भी उपायसे धनको प्राप्तकर उसे उत्तम ब्राह्मणोंको दान दे, अथवा कोई स्थिर कीर्ति बनवावे। चूँकि दान और कीर्तिसे भी बढ़कर मन्दिर बनवाना है, इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य विष्णु आदि देवताओंका मन्दिर आदि बनवावे। भक्तिमान् श्रेष्ठ पुरुषोंके द्वारा यदि भगवान्‌के मन्दिरका निर्माण और उसमें भगवान्‌का प्रवेश (स्थापन आदि) हुआ तो यह समझना चाहिये कि उसने समस्त चराचर त्रिभुवनको रहनेके लिये भवन बनवा दिया। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ भी भूत, वर्तमान, भविष्य, स्थूल, सूक्ष्म और इससे भिन्न है, वह सब भगवान् विष्णुसे प्रकट हुआ है। उन देवाधिदेव सर्वव्यापक महात्मा विष्णुका मन्दिरमें स्थापन करके मनुष्य पुनः संसारमें जन्म नहीं लेता (मुक्त हो जाता है)। जिस प्रकार विष्णुका मन्दिर बनवानेमें फल बताया गया है, उसी प्रकार अन्य देवताओं—शिव, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, दुर्गा और लक्ष्मी आदिका भी मन्दिर बनवानेसे होता है। मन्दिर बनवानेसे अधिक पुण्य देवताकी प्रतिमा बनवानेमें है। देव-प्रतिमाकी स्थापना-सम्बन्धी जो यज्ञ होता है, उसके फलका तो अन्त ही नहीं है। कच्ची मिट्टीकी प्रतिमासे लकड़ीकी प्रतिमा उत्तम है, उससे ईंटकी, उससे भी पत्थरकी और उससे भी अधिक सुवर्ण आदि धातुओंकी प्रतिमाका फल है। देवमन्दिरका प्रारम्भ करने मात्रसे सात जन्मोंके किये हुए पापका नाश हो जाता है तथा बनवानेवाला मनुष्य स्वर्गलोकका अधिकारी होता है; वह नरकमें नहीं जाता। इतना ही नहीं, वह मनुष्य अपनी सौ पीढ़ीका उद्धार करके उसे विष्णुलोकमें पहुँचा देता है। यमराजने अपने दूतोंसे देवमन्दिर बनानेवालोंको लक्ष्य करके ऐसा कहा था— ⁠।।⁠ २१—३५ ⁠।।

यम बोले—(देवालय और) देव-प्रतिमाका निर्माण तथा उसकी पूजा आदि करनेवाले मनुष्योंको तुमलोग नरकमें न ले आना तथा जो देव-मन्दिर आदि नहीं बनवाते, उन्हें खास तौरपर पकड़ लाना। जाओ! तुमलोग संसारमें विचरो और न्यायपूर्वक मेरी आज्ञाका पालन करो। संसारके कोई भी प्राणी कभी तुम्हारी आज्ञा नहीं टाल सकेंगे। केवल उन लोगोंको तुम छोड़ देना जो कि जगत्पिता भगवान् अनन्तकी शरणमें जा चुके हैं; क्योंकि उन लोगोंकी स्थिति यहाँ (यमलोकमें) नहीं होती। संसारमें जहाँ भी भगवान्‌में चित्त लगाये हुए, भगवान्‌की ही शरणमें पड़े हुए भगवद्भक्त महात्मा सदा भगवान् विष्णुकी पूजा करते हों, उन्हें दूरसे ही छोड़कर तुमलोग चले जाना। जो स्थिर होते, सोते, चलते, उठते, गिरते, पड़ते या खड़े होते समय भगवान् श्रीकृष्णका नाम-कीर्तन करते हैं, उन्हें दूरसे ही त्याग देना। जो नित्य-नैमित्तिक कर्मोंद्वारा भगवान् जनार्दनकी पूजा करते हैं, उनकी ओर तुमलोग आँख उठाकर देखना भी नहीं; क्योंकि भगवान्‌का व्रत करनेवाले लोग भगवान्‌को ही प्राप्त होते हैं[[55]](#footnote-55) ⁠।।⁠ ३६—४१ ⁠।।

जो लोग फूल, धूप, वस्त्र और अत्यन्त प्रिय आभूषणोंद्वारा भगवान्‌की पूजा करते हैं, उनका स्पर्श न करना; क्योंकि वे मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णके धामको पहुँच चुके हैं। जो भगवान्‌के मन्दिरमें लेप करते या बुहारी लगाते हैं, उनके पुत्रोंको तथा उनके वंशको भी छोड़ देना। जिन्होंने भगवान् विष्णुका मन्दिर बनवाया हो, उनके वंशमें सौ पीढ़ीतकके मनुष्योंकी ओर तुमलोग बुरे भावसे न देखना। जो लकड़ीका, पत्थरका अथवा मिट्टीका ही देवालय भगवान् विष्णुके लिये बनवाता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। प्रतिदिन यज्ञोंद्वारा भगवान्‌की आराधना करनेवालेको जो महान् फल मिलता है, उसी फलको, जो विष्णुका मन्दिर बनवाता है, वह भी प्राप्त करता है। जो भगवान् अच्युतका मन्दिर बनवाता है, वह अपनी बीती हुई सौ पीढ़ीके पितरोंको तथा होनेवाले सौ पीढ़ीके वंशजोंको भगवान् विष्णुके लोकको पहुँचा देता है। भगवान् विष्णु सप्तलोकमय हैं। उनका मन्दिर जो बनवाता है, वह अपने कुलको तारता है, उन्हें अक्षय लोकोंकी प्राप्ति कराता है और स्वयं भी अक्षय लोकोंको प्राप्त होता है। मन्दिरमें ईंटके समूहका जोड़ जितने वर्षोंतक रहता है, उतने ही हजार वर्षोंतक उस मन्दिरके बनवानेवालेकी स्वर्गलोकमें स्थिति होती है। भगवान्‌की प्रतिमा बनानेवाला विष्णुलोकको प्राप्त होता है, उसकी स्थापना करनेवाला भगवान्‌में लीन हो जाता है और देवालय बनवाकर उसमें प्रतिमाकी स्थापना करनेवाला सदा भगवान्‌के लोकमें निवास पाता है[[56]](#footnote-56) ⁠।।⁠ ४२—५० ⁠।।

अग्निदेव बोले—यमराजके इस प्रकार आज्ञा देनेपर यमके दूत भगवान् विष्णुकी स्थापना आदि करनेवालोंको यमलोकमें नहीं ले जाते। देवताओंकी प्रतिष्ठा आदिकी विधिका भगवान् हयग्रीवने ब्रह्माजीसे वर्णन किया था ⁠।।⁠ ५१ ⁠।।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘देवालय-निर्माण माहात्म्यादिका वर्णन’ नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।।⁠ ३८ ⁠।।

## उन्तालीसवाँ अध्याय

### विष्णु आदि देवताओंकी स्थापनाके लिये भूपरिग्रहका विधान

भगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं विष्णु आदि देवताओंकी प्रतिष्ठाके विषयमें कहूँगा, ध्यान देकर सुनिये। इस विषयमें मेरे द्वारा वर्णित पञ्चरात्रों एवं सप्तरात्रोंका ऋषियोंने मानवलोकमें प्रचार किया है। वे संख्यामें पच्चीस हैं। (उनके नाम इस प्रकार हैं—) आदिहयशीर्षतन्त्र, त्रैलोक्यमोहनतन्त्र, वैभवतन्त्र, पुष्करतन्त्र, प्रह्लादतन्त्र, गार्ग्यतन्त्र, गालवतन्त्र, नारदीयतन्त्र, श्रीप्रश्नतन्त्र, शाण्डिल्यतन्त्र, ईश्वरतन्त्र, सत्यतन्त्र, शौनकतन्त्र, वसिष्ठोक्त ज्ञानसागरतन्त्र, स्वायम्भुवतन्त्र, कापिलतन्त्र, तार्क्ष्य (गारुड)-तन्त्र, नारायणीयतन्त्र, आत्रेयतन्त्र, नारसिंहतन्त्र, आनन्दतन्त्र, आरुणतन्त्र, बौधायनतन्त्र, अष्टाङ्गतन्त्र और विश्वतन्त्र ⁠।⁠।⁠ १—५ ⁠।⁠।

इन तन्त्रोंके अनुसार मध्यदेश आदिमें उत्पन्न द्विज देवविग्रहोंकी प्रतिष्ठा करे। कच्छदेश, कावेरीतटवर्ती देश, कोंकण, कामरूप, कलिङ्ग, काञ्ची तथा काश्मीर देशमें उत्पन्न ब्राह्मण देवप्रतिष्ठा आदि न करे। आकाश, वायु, तेज, जल एवं पृथ्वी—ये पञ्चमहाभूत पञ्चरात्र हैं। जो चेतनाशून्य एवं अज्ञानान्धकारसे आच्छन्न हैं, वे पञ्चरात्रसे रहित हैं। जो मनुष्य यह धारणा करता है कि ‘मैं पापमुक्त परब्रह्म विष्णु हूँ’—वह देशिक होता है। वह समस्त बाह्य लक्षणों (वेष आदि)-से हीन होनेपर भी तन्त्रवेत्ता आचार्य माना गया है ⁠।⁠।⁠ ६—८ ⁠।⁠।

देवताओंकी नगराभिमुख स्थापना करनी चाहिये। नगरकी ओर उनका पृष्ठभाग नहीं होना चाहिये। कुरुक्षेत्र, गया आदि तीर्थस्थानोंमें अथवा नदीके समीप देवालयका निर्माण कराना चाहिये। ब्रह्माका मन्दिर नगरके मध्यमें तथा इन्द्रका पूर्व दिशामें उत्तम माना गया है। अग्निदेव तथा मातृकाओंका आग्नेयकोणमें, भूतगण और यमराजका दक्षिणमें, चण्डिका, पितृगण एवं दैत्यादिका मन्दिर नैर्ऋत्य-कोणमें बनवाना चाहिये। वरुणका पश्चिममें, वायुदेव और नागका वायव्यकोणमें, यक्ष या कुबेरका उत्तर दिशामें, चण्डीश-महेशका ईशानकोणमें और विष्णुका मन्दिर सभी ओर बनवाना श्रेष्ठ है। ज्ञानवान् मनुष्यको पूर्ववर्ती देव-मन्दिरको संकुचित करके अल्प, समान या विशाल मन्दिर नहीं बनवाना चाहिये ⁠।⁠।⁠ ९—१३ ⁠।⁠।

(किसी देव-मन्दिरके समीप मन्दिर बनवानेपर) दोनों मन्दिरोंकी ऊँचाईके बराबर दुगुनी सीमा छोड़कर नवीन देव-प्रासादका निर्माण करावे। विद्वान् व्यक्ति दोनों मन्दिरोंको पीडित न करे। भूमिका शोधन करनेके बाद भूमि-परिग्रह करे। तदनन्तर प्राकारकी सीमातक माष, हरिद्राचूर्ण, खील, दधि और सक्तुसे भूतबलि प्रदान करे। फिर अष्टाक्षरमन्त्र पढ़कर आठों दिशाओंमें सक्तु बिखेरते हुए कहे—‘इस भूमिखण्डपर जो राक्षस एवं पिशाच आदि निवास करते हों, वे सब यहाँसे चले जायँ। मैं यहाँपर श्रीहरिके लिये मन्दिरका निर्माण करूँगा।[[57]](#footnote-57)’ फिर भूमिको हलसे जुतवाकर गोचारण करावे। आठ परमाणुका ‘रथरेणु’ माना गया है। आठ रथरेणुका ‘त्रसरेणु’ माना जाता है। आठ त्रसरेणुका ‘बालाग्र’ तथा आठ बालाग्रकी ‘लिक्षा’ कही जाती है। आठ लिक्षाकी ‘यूका,’ आठ यूकाका ‘यवमध्यम’, आठ यवका ‘अङ्गुल,’ चौबीस अङ्गुलका ‘कर’ और अट्ठाईस अङ्गुलका ‘पद्महस्त’ होता है[[58]](#footnote-58) ⁠।⁠।⁠ १४—२१ ⁠।⁠।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें विष्णु आदि देवताओंकी स्थापनाके लिये ‘भूपरिग्रहका वर्णन’ नामक उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।⁠।⁠ ३९ ⁠।⁠।

## चालीसवाँ अध्याय

### वास्तुमण्डलवर्ती देवताओंके स्थापन, पूजन, अर्घ्यदान तथा बलिदान आदिकी विधि

भगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! पूर्वकालमें सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंके लिये भयंकर एक महाभूत था। देवताओंने उसे भूमिमें निहित कर दिया। उसीको ‘वास्तुपुरुष’ माना गया है। चतुःषष्टि पदोंसे युक्त क्षेत्रमें अर्धकोणमें स्थित ईश (या शिखी)-को घृत एवं अक्षतोंसे तृप्त करे। फिर एक पदमें स्थित पर्जन्यको कमल तथा जलसे, दो पदोंमें स्थित जयन्तको पताकासे, दो कोष्ठोंमें स्थित महेन्द्रको भी उसीसे, द्विपदस्थ रविको सभी लाल रंगकी वस्तुओंसे संतुष्ट करे। दो पदोंमें स्थित सत्यको वितान (चँदोवों)-से एवं एकपदस्थ भृशको घृतसे, अग्निकोणवर्ती अर्धपदमें स्थित व्योम (आकाश)-को शाकुननामक औषधके गूदेसे, उसी कोणके दूसरे अर्धपदमें स्थित अग्निदेवको स्रुक्‌से, एकपदस्थ पूषाको लाजा (खील)-से, द्विपदस्थ वितथको स्वर्णसे, एकपदस्थ गृहक्षतको माखनसे, एक पदमें स्थित यमराजको उड़दमिश्रित भातसे, द्विपदस्थ गन्धर्वको गन्धसे, एकपदस्थ भृङ्गको शाकुनजिह्वा नामक ओषधिसे, अर्धपदमें स्थित मृगको नीले वस्त्रसे, अर्धकोष्ठके निम्नभागमें विद्यमान पितृगणको कृशर (खिचड़ी)-से, एकपदस्थ दौवारिकको दन्तकाष्ठसे एवं दो पदोंमें स्थित सुग्रीवको यव-निर्मित पदार्थ (हलुवा आदि)-से परितृप्त करे ⁠।⁠।⁠ १—७ ⁠।⁠।

द्विपदस्थ पुष्पदन्तको कुश-समूहोंसे, दो पदोंमें स्थित वरुणको पद्मसे, द्विपदस्थ असुरको सुरासे, एक पदमें स्थित शेषको घृतमिश्रित जलसे, अर्धपदस्थित पाप (या पापयक्ष्मा)-को यवान्नसे, अर्धपदस्थ रोगको माँड़से, एकपदस्थित नाग (सर्प)-को नागपुष्पसे, द्विपदगत मुख्यको भक्ष्य-पदार्थोंसे, एकपदस्थ भल्लाटको मूँग-भातसे, एकपद-संस्थित सोमको मधुयुक्त खीरसे, दो पदोंमें अधिष्ठित ऋषिको शालूकसे, एक पदमें विद्यमान अदितिको लोपिकासे एवं अर्धपदस्थ दितिको पूरियोंद्वारा संतुष्ट करे। फिर ईशानस्थित ईशके निम्न भागमें अर्धपदस्थित ‘आप’ को दुग्धसे एवं उसके नीचे अर्धपदमें अधिष्ठित आप-वत्सको दहीसे संतुष्ट करे। साथ ही पूर्ववर्ती कोष्ठ-चतुष्टयमें मरीचिको लड्डू देकर तृप्त करे। ब्रह्माके ऊर्ध्वभागके कोणस्थित कोष्ठमें अर्धपदस्थ सावित्रको रक्तपुष्प निवेदन करे। उसके निम्नवर्ती अर्ध कोष्ठकमें स्थित सविताको कुशोदक प्रदान करे। चार पदोंमें स्थित विवस्वान्‌को रक्तचन्दन, नैर्ऋत्यकोणवर्ती अर्धकोष्ठमें स्थित सुराधिप इन्द्रको हरिद्रामिश्रित जलका अर्घ्य दे। उसीके अर्धभागमें कोणवर्ती कोष्ठकमें स्थित इन्द्रजय (अथवा जय)-को घृतका अर्घ्य दे। चतुष्पदमें मित्रको गुड़युक्त पायस दे। वायव्यकोणके आधे कोष्ठकमें प्रतिष्ठित रुद्रको पकायी हुई उड़द (या उसका बड़ा) एवं उसके अधोवर्ती अर्धकोष्ठमें स्थित यक्ष (या रुद्रदास)-को आर्द्रफल (अंगूर, सेव आदि) समर्पित करे। चतुष्पदवर्ती महीधर (या पृथ्वीधर)-को उड़दमिश्रित अन्न एवं माष (उड़द)-की बलि दे। मध्यवर्ती कोष्ठ-चतुष्टयमें भगवान् ब्रह्माके निमित्त तिल-तण्डुल स्थापित करे। चरकीको उड़द और घृतसे, स्कन्दको खिचड़ी तथा पुष्पमालासे, विदारीको लाल कमलसे, कन्दर्पको एक पलके तोलवाले भातसे, पूतनाको पलपित्तसे, जम्भकको उड़द एवं पुष्पमालासे, पापा या पापराक्षसीको पित्त, पुष्पमाला एवं अस्थियोंसे तथा पिलिपित्सको भाँति-भाँतिकी मालाके द्वारा संतुष्ट करे। तदनन्तर ईशान आदि दिक्‌पालोंको लाल उड़दकी बलि दे। इन सबके अभावमें अक्षतोंसे सबकी पूजा करनी चाहिये[[59]](#footnote-59)। राक्षस, मातृका, गण, पिशाच, पितर एवं क्षेत्रपालको भी इच्छानुसार (दही-अक्षत या दही-उड़दकी) बलि प्रदान करनी चाहिये ⁠।⁠।⁠ ८—२१ ⁠।⁠।

वास्तु-होम एवं बलि-प्रदानसे इनकी तृप्ति किये बिना प्रासाद आदिका निर्माण नहीं करना चाहिये। ब्रह्माके स्थानमें श्रीहरि, श्रीलक्ष्मीजी तथा गणदेवताकी पूजा करें। फिर भूमि, वास्तुपुरुष एवं वर्धनीयुक्त कलशका पूजन करे। कलशके मध्यमें ब्रह्मा तथा दिक्‌पालोंका यजन करे। फिर स्वस्तिवाचन एवं प्रणाम करके पूर्णाहुति दे। ब्रह्मन्! तदनन्तर गृहपति हाथमें छिद्रयुक्त जलपात्र लेकर विधिपूर्वक दक्षिणावर्त मण्डल बनाते हुए सूत्रमार्गसे जलधाराको घुमावे। फिर पूर्ववत् उसी मार्गसे सात बीजोंका वपन करे। उसी मार्गसे खात (गड्ढे)-का आरम्भ करे। तदनन्तर मध्यमें हाथभर चौड़ा एवं चार अङ्गुल नीचा गर्त खोद ले। उसको लीप-पोतकर पूजन प्रारम्भ करे। सर्वप्रथम चार भुजाधारी श्रीविष्णु भगवान्‌का ध्यान करके उन्हें कलशसे अर्घ्य-प्रदान करे। फिर छिद्रयुक्त जलपात्र (झारी)-से गर्तको भरकर उसमें श्वेत पुष्प डाले। उस श्रेष्ठ दक्षिणावर्त गर्तको बीज एवं मृत्तिकासे भर दे। इस प्रकार अर्घ्यदानका कार्य निष्पन्न करके आचार्यको गो-वस्त्रादिका दान करे। ज्यौतिषी और स्थपति (राजमिस्त्री)-का यथोचित सत्कार करके विष्णुभक्त और सूर्यका पूजन करे। फिर भूमिको यत्नपूर्वक जलपर्यन्त खुदवावे। मनुष्यके बराबरकी गहराईसे नीचे यदि शल्य (हड्डी आदि) हो तो वह गृहके लिये दोषकारक नहीं होता है। अस्थि (शल्य) होनेपर घरकी दीवार टूट जाती है और गृहपतिको सुख नहीं प्राप्त होता है। खुदाईके समय जिस जीव-जन्तुका नाम सुनायी दे जाय, वह शल्य उसी जीवके शरीरसे उद्भूत जानना चाहिये ⁠।⁠।⁠२२—३१ ⁠।⁠।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘वास्तु-देवताओंके अर्घ्य-दान-विधान आदिका वर्णन’ नामक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।⁠।⁠ ४० ⁠।⁠।

## इकतालीसवाँ अध्याय

### शिलान्यासकी विधि

भगवान् हयग्रीव बोले—अब मैं शिलान्यासस्वरूपा पाद-प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा। पहले मण्डप बनाना चाहिये; फिर उसमें चार कुण्ड बनावे। वे कुण्ड क्रमशः कुम्भन्यास[[60]](#footnote-60), इष्टकान्यास[[61]](#footnote-61), द्वार और खम्भेके शुभ आश्रय होंगे। कुण्डका तीन चौथाई हिस्सा कंकड़ आदिसे भर दे और बराबर करके उसपर वास्तुदेवताका पूजन करे। नींवमें डाली जानेवाली ईंटें खूब पकी हों; बारह-बारह अङ्गुलकी लंबी हों तथा विस्तारके तिहाई भागके बराबर, अर्थात् चार अङ्गुल उनकी मोटाई होनी चाहिये। अगर पत्थरका मन्दिर बनवाना हो तो ईंटकी जगह पत्थर ही नींवमें डाला जायगा। एक-एक पत्थर एक-एक हाथका लंबा होना चाहिये। (यदि सामर्थ्य हो तो) ताँबेके नौ कलशोंकी, अन्यथा मिट्टीके बने नौ कलशोंकी स्थापना करे। जल, पञ्चकषाय[[62]](#footnote-62), सर्वौषधि और चन्दनमिश्रित जलसे उन कलशोंको पूर्ण करना चाहिये। इसी प्रकार सोना, धान आदिसे युक्त तथा गन्ध-चन्दन आदिसे भलीभाँति पूजित करके उन जलपूर्ण कलशोंद्वारा ‘आपो[[63]](#footnote-63) हि ष्ठा’ इत्यादि तीन ऋचाओं, ‘शं नो[[64]](#footnote-64) देवीरभिष्टय’ आदि मन्त्रों ‘तरत्स[[65]](#footnote-65) मन्दीः’ इत्यादि मन्त्र एवं पावमानी[[66]](#footnote-66) ऋचाओंके तथा ‘उदुत्तमं वरुण[[67]](#footnote-67)’ ‘कया[[68]](#footnote-68) नः’ और ‘वरुणस्योत्तम्भनमसि[[69]](#footnote-69)’ इत्यादि मन्त्रोंके पाठपूर्वक ‘हंसः शुचिषद्[[70]](#footnote-70)’ इत्यादि मन्त्र तथा श्रीसूक्तका भी उच्चारण करते हुए बहुत-सी शिलाओं अथवा ईंटोंका अभिषेक करे। फिर उन्हें नींवमें स्थापित करके मण्डपके भीतर एक शय्यापर पूर्वमण्डलमें भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। अरणी-मन्थनद्वारा अग्नि प्रकट करके द्वादशाक्षर-मन्त्रसे उसमें समिधाओंका हवन करना चाहिये ⁠।⁠।⁠ १—९ ⁠।⁠।

‘आधार’ और ‘आज्यभाग’ नामक आहुतियाँ प्रणवमन्त्रसे ही करावे। फिर अष्टाक्षर-मन्त्रसे आठ आहुति देकर ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा—इस प्रकार तीन व्याहृतियोंसे क्रमशः लोकेश्वर अग्नि, सोमग्रह और भगवान् पुरुषोत्तमके निमित्त हवन करे। इसके बाद प्रायश्चित्तसंज्ञक हवन करके प्रणवयुक्त द्वादशाक्षर मन्त्रसे उड़द, घी और तिलको एक साथ लेकर पूर्णाहुति-हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् आचार्य पूर्वाभिमुख होकर आठ दिशाओंमें स्थापित कलशोंपर पृथक्-पृथक् पद्म आदि देवताओंका स्थापन-पूजन करे। बीचमें भी धरती लीपकर पत्थरकी एक शिला और कलश स्थापित करे। इन नौ कलशोंपर क्रमशः नीचे लिखे देवताओंकी स्थापना करनी चाहिये ⁠।⁠।⁠ १०—१३ ⁠।⁠।

पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, कुमुद, आनन्द, पद्म और शङ्ख—इनको आठ कलशोंमें और पद्मिनीको मध्यवर्ती कलशपर स्थापित करे ⁠।⁠।⁠ १४ ⁠।⁠।

इन कलशोंको हिलावे-डुलावे नहीं; उनके निकट पूर्व आदिके क्रमसे ईशानकोणतक एक-एक ईंट रख दे। फिर उनपर उनकी देवता विमला आदि शक्तियोंका न्यास (स्थापन) करना चाहिये[[71]](#footnote-71)। बीचमें ‘अनुग्रहा’ की स्थापना करे। इसके बाद इस प्रकार प्रार्थना करे—‘मुनिवर अङ्गिराकी सुपुत्री इष्टका देवी, तुम्हारा कोई अङ्ग टूटा-फूटा या खराब नहीं हुआ है; तुम अपने सभी अङ्गोंसे पूर्ण हो। मेरा अभीष्ट पूर्ण करो। अब मैं प्रतिष्ठा करा रहा हूँ’ ⁠।⁠।⁠ १५—१७ ⁠।⁠।

उत्तम आचार्य इस मन्त्रसे इष्टकाओंकी स्थापना करनेके पश्चात् एकाग्रचित्त होकर मध्यवाले स्थानमें गर्भाधान करे। (उसकी विधि यों है—) एक कलशके ऊपर देवेश्वर भगवान् नारायण तथा पद्मिनी (लक्ष्मी) देवीको स्थापित करके उनके पास मिट्टी, फूल, धातु और रत्नोंको रखे। इसके बाद लोहे आदिके बने हुए गर्भपात्रमें, जिसका विस्तार बारह अङ्गुल और ऊँचाई चार अङ्गुल हो, अस्त्रकी पूजा करे। फिर ताँबेके बने हुए कमलके आकारवाले एक पात्रमें पृथ्वीका पूजन करे और इस प्रकार प्रार्थना करे—‘सम्पूर्ण भूतोंकी ईश्वरी पृथ्वीदेवी! तुम पर्वतोंके आसनसे सुशोभित हो; चारों ओर समुद्रोंसे घिरी हुई हो; एकान्तमें गर्भ धारण करो। वसिष्ठकन्या नन्दा! वसुओं और प्रजाओंके सहित तुम मुझे आनन्दित करो। भार्गवपुत्री जया! तुम प्रजाओंको विजय दिलानेवाली हो। (मुझे भी विजय दो।) अङ्गिराकी पुत्री पूर्णा! तुम मेरी कामनाएँ पूर्ण करो। महर्षि कश्यपकी कन्या भद्रा! तुम मेरी बुद्धि कल्याणमयी कर दो। सम्पूर्ण बीजोंसे युक्त और समस्त रत्नों एवं औषधोंसे सम्पन्न सुन्दरी जया देवी तथा वसिष्ठपुत्री नन्दा देवी! यहाँ आनन्दपूर्वक रम जाओ। हे कश्यपकी कन्या भद्रा! तुम प्रजापतिकी पुत्री हो, चारों ओर फैली हुई हो, परम महान् हो; साथ ही सुन्दरी और सुकान्त हो, इस गृहमें रमण करो। हे भार्गवी देवी! तुम परम आश्चर्यमयी हो; गन्ध और माल्य आदिसे सुशोभित एवं पूजित हो; लोकोंको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली देवि! तुम इस गृहमें रमण करो। इस देशके सम्राट्, इस नगरके राजा और इस घरके मालिकके बाल-बच्चोंको तथा मनुष्य आदि प्राणियोंको आनन्द देनेके लिये पशु आदि सम्पदाकी वृद्धि करो।’ इस प्रकार प्रार्थना करके वास्तु-कुण्डको गोमूत्रसे सींचना चाहिये ⁠।⁠।⁠ १८—२८ ⁠।⁠।

यह सब विधि पूर्ण करके कुण्डमें गर्भको स्थापित करे। यह गर्भाधान रातमें होना चाहिये। उस समय आचार्यको गौ-वस्त्र आदि दान करे तथा अन्य लोगोंको भोजन दे। इस प्रकार गर्भपात्र रखकर और ईंटोंको भी रखकर उस कुण्डको भर दे। तत्पश्चात् मन्दिरकी ऊँचाईके अनुसार प्रधानदेवताके पीठका निर्माण करे। ‘उत्तम पीठ’ वह है, जो ऊँचाईमें मन्दिरके आधे विस्तारके बराबर हो। उत्तम पीठकी अपेक्षा एक चौथाई कम ऊँचाई होनेपर मध्यम पीठ कहलाता है और उत्तम पीठकी आधी ऊँचाई होनेपर ‘कनिष्ठ पीठ’ होता है। पीठ-बन्धके ऊपर पुनः वास्तु-याग (वास्तुदेवताका पूजन) करना चाहिये। केवल पाद-प्रतिष्ठा करनेवाला मनुष्य भी सब पापोंसे रहित होकर देवलोकमें आनन्द-भोग करता है ⁠।⁠।⁠ २९—३२ ⁠।⁠।

मैं देवमन्दिर बनवा रहा हूँ, ऐसा जो मनसे चिन्तन भी करता है, उसका शारीरिक पाप उसी दिन नष्ट हो जाता है। फिर जो विधिपूर्वक मन्दिर बनवाता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है? जो आठ ईंटोंका भी देवमन्दिर बनवाता है, उसके फलकी सम्पत्तिका भी कोई वर्णन नहीं कर सकता। इसीसे विशाल मन्दिर बनवानेसे मिलनेवाले महान् फलका अनुमान कर लेना चाहिये ⁠।⁠।⁠ ३३—३५ ⁠।⁠।

गाँवके बीचमें अथवा गाँवसे पूर्वदिशामें यदि मन्दिर बनवाया जाय तो उसका दरवाजा पश्चिमकी ओर रखना चाहिये और सब कोणोंमेंसे किसी ओर बनवाना हो तो गाँवकी ओर दरवाजा रखे। गाँवसे दक्षिण, उत्तर या पश्चिमदिशामें मन्दिर बने, तो उसका दरवाजा पूर्वदिशाकी ओर रखना चाहिये ⁠।⁠।⁠ ३६—३७ ⁠।⁠।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘सर्वशिलाविन्यासविधान आदिका कथन’ नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।⁠।⁠ ४१ ⁠।⁠।

## बयालीसवाँ अध्याय

### प्रासाद-लक्षण-वर्णन

भगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं सर्वसाधारण प्रासाद (देवालय)-का वर्णन करता हूँ, सुनो। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जहाँ मन्दिरका निर्माण कराना हो, वहाँके चौकोर क्षेत्रके सोलह भाग करे। उसमें मध्यके चार भागोंद्वारा आयसहित गर्भ (मन्दिरके भीतरी भागकी रिक्त भूमि) निश्चित करे तथा शेष बारह भागोंको दीवार उठानेके लिये नियत करे। उक्त बारह भागोंमेंसे चार भागकी जितनी लंबाई है, उतनी ही ऊँचाई प्रासादकी दीवारोंकी होनी चाहिये। विद्वान् पुरुष दीवारोंकी ऊँचाईसे दुगुनी शिखरकी ऊँचाई रखे। शिखरके चौथे भागकी ऊँचाईके अनुसार मन्दिरकी परिक्रमाकी ऊँचाई रखे। उसी मानके अनुसार दोनों पार्श्व भागोंमें निकलनेका मार्ग (द्वार) बनाना चाहिये। वे द्वार एक-दूसरेके समान होने चाहिये। मन्दिरके सामनेके भूभागका विस्तार भी शिखरके समान ही करना चाहिये। जिस तरह उसकी शोभा हो सके, उसके अनुरूप उसका विस्तार शिखरसे दूना भी किया जा सकता है। मन्दिरके आगेका सभामण्डप विस्तारमें मन्दिरके गर्भसूत्रसे दूना होना चाहिये। मन्दिरके पादस्तम्भ आदि भित्तिके बराबर ही लंबे बनाये जायँ। वे मध्यवर्ती स्तम्भोंसे विभूषित हों। अथवा मन्दिरके गर्भका जो मान है, वही उसके मुख-मण्डप (सभामण्डप या जगमोहन)-का भी रखे। तत्पश्चात् इक्यासी पदों (स्थानों)-से युक्त वास्तु-मण्डपका आरम्भ करे ⁠।⁠।⁠ १—७ ⁠।⁠।

इनमें पहले द्वारन्यासके समीपवर्ती पदोंके भीतर स्थित होनेवाले देवताओंका पूजन करे। फिर परकोटेके निकटवर्ती एवं सबसे अन्तके पदोंमें स्थापित होनेवाले बत्तीस देवताओंकी पूजा करे[[72]](#footnote-72) ⁠।⁠।⁠ ८ ⁠।⁠।

यह प्रासादका सर्वसाधारण लक्षण है। अब प्रतिमाके मानके अनुसार दूसरे प्रासादका वर्णन सुनो ⁠।⁠।⁠ ९ ⁠।⁠।

जितनी बड़ी प्रतिमा हो, उतनी ही बड़ी सुन्दर पिण्डी बनावे। पिण्डीके आधे मानसे गर्भका निर्माण करे और गर्भके ही मानके अनुसार भित्तियाँ उठावे। भीतोंकी लंबाईके अनुसार ही उनकी ऊँचाई रखे। विद्वान् पुरुष भीतरकी ऊँचाईसे दुगुनी शिखरकी ऊँचाई करावे। शिखरकी अपेक्षा चौथाई ऊँचाईमें मन्दिरकी परिक्रमा बनवावे तथा इसी ऊँचाईमें मन्दिरके आगेके मुख-मण्डपका भी निर्माण करावे ⁠।⁠।⁠ १०—१२ ⁠।⁠।

गर्भके आठवें अंशके मापका रथकोंके निकलनेका मार्ग (द्वार) बनावे। अथवा परिधिके तृतीय भागके अनुसार वहाँ रथकों (छोटे-छोटे रथों)-की रचना करावे तथा उनके भी तृतीय भागके मापका उन रथोंके निकलनेके मार्ग (द्वार)-का निर्माण करावे। तीन रथकोंपर सदा तीन वामोंकी स्थापना करे ⁠।⁠।⁠ १३-१४ ⁠।⁠।

शिखरके लिये चार सूत्रोंका निपातन करे। शुकनासाके[[73]](#footnote-73) ऊपरसे सूतको तिरछा गिरावे। शिखरके आधे भागमें सिंहकी प्रतिमाका निर्माण करावे। शुकनासापर सूतको स्थिर करके उसे मध्य संधितक ले जाय ⁠।⁠।⁠ १५-१६ ⁠।⁠।

इसी प्रकार दूसरे पार्श्वमें भी सूत्रपात करे। शुकनासाके ऊपर वेदी हो और वेदीके ऊपर आमलसार नामक कण्ठसहित कलशका निर्माण कराया जाय। उसे विकराल न बनाया जाय। जहाँतक वेदीका मान है, उससे ऊपर ही कलशकी कल्पना होनी चाहिये। मन्दिरके द्वारकी जितनी चौड़ाई हो, उससे दूनी उसकी ऊँचाई रखनी चाहिये। द्वारको बहुत ही सुन्दर और शोभासम्पन्न बनाना चाहिये। द्वारके ऊपरी भागमें सुंदर मङ्गलमय वस्तुओंके साथ गूलरकी दो शाखाएँ स्थापित करे (खुदवावे) ⁠।⁠।⁠ १७—१९ ⁠।⁠।

द्वारके चतुर्थांशमें चण्ड, प्रचण्ड, विष्वक्सेन और वत्सदण्ड—इन चार द्वारपालोंकी मूर्तियोंका निर्माण करावे। गूलरकी शाखाओंके अर्ध भागमें सुंदर रूपवाली लक्ष्मीदेवीके श्रीविग्रहको अङ्कित करे। उनके हाथमें कमल हो और दिग्गज कलशोंके जलद्वारा उन्हें नहला रहे हों। मन्दिरके परकोटेकी ऊँचाई उसके चतुर्थांशके बराबर हो। प्रासादके गोपुरकी ऊँचाई प्रासादसे एक चौथाई कम हो। यदि देवताका विग्रह पाँच हाथका हो तो उसके लिये एक हाथकी पीठिका होनी चाहिये ⁠।⁠।⁠ २०—२२ ⁠।⁠।

विष्णु-मन्दिरके सामने एक गरुडमण्डप तथा भौमादि धामका निर्माण करावे। भगवान्‌के श्रीविग्रहके सब ओर आठों दिशाओंके ऊपरी भागमें भगवत्प्रतिमासे दुगुनी बड़ी अवतारोंकी मूर्तियाँ बनावे। पूर्व दिशामें वराह, दक्षिणमें नृसिंह, पश्चिममें श्रीधर, उत्तरमें हयग्रीव, अग्निकोणमें परशुराम, नैर्ऋत्यकोणमें श्रीराम, वायव्यकोणमें वामन तथा ईशानकोणमें वासुदेवकी मूर्तिका निर्माण करे। प्रासाद-रचना आठ, बारह आदि समसंख्यावाले स्तम्भोंद्वारा करनी चाहिये। द्वारके अष्टम आदि अंशको छोड़कर जो वेध होता है, वह दोषकारक नहीं होता है ⁠।⁠।⁠ २३—२६ ⁠।⁠।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘प्रासाद आदिके लक्षणका वर्णन’ नामक बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।⁠।⁠ ४२ ⁠।⁠।

## तैंतालीसवाँ अध्याय

### मन्दिरके देवताकी स्थापना और भूतशान्ति आदिका कथन

हयग्रीवजी कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं मन्दिरमें स्थापित करनेयोग्य देवताओंका वर्णन करूँगा, आप सुनें। पञ्चायतन मन्दिरमें जो बीचका प्रधान मन्दिर हो, उसमें भगवान् वासुदेवको स्थापित करे। शेष चार मन्दिरोंमेंसे अग्निकोणवाले मन्दिरमें भगवान् वामनकी, नैर्ऋत्यकोणमें नरसिंहकी, वायव्यकोणमें हयग्रीवकी और ईशानकोणमें वराहभगवान्‌की स्थापना करे। अथवा यदि बीचमें भगवान् नारायणकी स्थापना करे तो अग्निकोणमें दुर्गाकी, नैर्ऋत्यकोणमें सूर्यकी, वायव्यकोणमें ब्रह्माकी और ईशानकोणमें लिङ्गमय शिवकी स्थापना करे। अथवा ईशानमें रुद्ररूपकी स्थापना करे। अथवा एक-एक आठ दिशाओंमें और एक बीचमें—इस प्रकार कुल नौ मन्दिर बनवावे। उनमेंसे बीचमें वासुदेवकी स्थापना करे और पूर्वादि दिशाओंमें परशुराम-राम आदि मुख्य-मुख्य नौ अवतारोंकी तथा इन्द्र आदि लोकपालोंकी स्थापना करनी चाहिये। अथवा कुल नौ धामोंमें पाँच मन्दिर मुख्य बनवावे। इनके मध्यमें भगवान् पुरुषोत्तमकी स्थापना करे ⁠।⁠।⁠ १—५ ⁠।⁠।

पूर्व दिशामें लक्ष्मी और कुबेरकी, दक्षिणमें मातृकागण, स्कन्द, गणेश और शिवकी, पश्चिममें सूर्य आदि नौ ग्रहोंकी तथा उत्तरमें मत्स्य आदि दस अवतारोंकी स्थापना करे। इसी प्रकार अग्निकोणमें चण्डीकी, नैर्ऋत्यकोणमें अम्बिकाकी, वायव्यकोणमें सरस्वतीकी और ईशानकोणमें लक्ष्मीजीकी स्थापना करनी चाहिये। मध्यभागमें वासुदेव अथवा नारायणकी स्थापना करे। अथवा तेरह कमरोंवाले देवालयके मध्यभागमें विश्वरूप भगवान् विष्णुकी स्थापना करे ⁠।⁠।⁠ ६—८ ⁠।⁠।

पूर्व आदि दिशाओंमें केशव आदि द्वादश विग्रहोंको स्थापित करे तथा इनसे अतिरिक्त गृहोंमें साक्षात् ये श्रीहरि ही विराजमान होते हैं। भगवान्‌की प्रतिमा मिट्टी, लकड़ी, लोहा, रत्न, पत्थर, चन्दन और फूल—इन सात वस्तुओंकी बनी हुई सात प्रकारकी मानी जाती है। फूल, मिट्टी तथा चन्दनकी बनी हुई प्रतिमाएँ बननेके बाद तुरंत पूजी जाती हैं। (अधिक कालके लिये नहीं होतीं।) पूजन करनेपर ये समस्त कामनाओंको पूर्ण करती हैं। अब मैं शैलमयी प्रतिमाका वर्णन करता हूँ, जहाँ प्रतिमा बनानेमें शिला (पत्थर)-का उपयोग किया जाता है ⁠।⁠।⁠ ९—११ ⁠।⁠।

उत्तम तो यह है कि किसी पर्वतका पत्थर लाकर प्रतिमा बनवावे। पर्वतोंके अभावमें जमीनसे निकले हुए पत्थरका उपयोग करे। ब्राह्मण आदि चारों वर्णवालोंके लिये क्रमशः सफेद, लाल, पीला और काला पत्थर उत्तम माना गया है। यदि ब्राह्मण आदि वर्णवालोंको उनके वर्णके अनुकूल उत्तम शिला न मिले तो उसमें आवश्यक वर्णकी कमीकी पूर्ति करनेके लिये नरसिंह-मन्त्रसे हवन करना चाहिये। यदि शिलामें सफेद रेखा हो तो वह बहुत ही उत्तम है, अगर काली रेखा हो तो वह नरसिंह-मन्त्रसे हवन करनेपर उत्तम होती है। यदि शिलासे काँसेके बने हुए घण्टेकी-सी आवाज निकलती हो और काटनेपर उससे चिनगारियाँ निकलती हों तो वह ‘पुँल्लिङ्ग’ है, ऐसा समझना चाहिये। यदि उपर्युक्त चिह्न उसमें कम दिखायी दें, तो उसे ‘स्त्रीलिङ्ग’ समझना चाहिये और पुँल्लिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग-बोधक कोई रूप न होनेपर उसे ‘नपुंसक’ मानना चाहिये। तथा जिस शिलामें कोई मण्डलका चिह्न दिखायी दे, उसे सगर्भा समझकर त्याग देना चाहिये ⁠।⁠।⁠ १२—१५ ⁠।⁠।

प्रतिमा बनानेके लिये वनमें जाकर वनयाग आरम्भ करना चाहिये। वहाँ कुण्ड खोदकर और उसे लीपकर मण्डपमें भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये तथा उन्हें बलि समर्पणकर कर्ममें उपयोगी टंक आदि शस्त्रोंकी भी पूजा करनी चाहिये। फिर हवन करनेके पश्चात् अगहनीके चावलके जलसे अस्त्र-मन्त्र (अस्त्राय फट्)-के उच्चारणपूर्वक उस शिलाको सींचना चाहिये। नरसिंह-मन्त्रसे उसकी रक्षा करके मूल-मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय)-से पूजन करे। फिर पूर्णाहुति-होम करके आचार्य भूतोंके लिये बलि समर्पित करें। वहाँ जो भी अव्यक्तरूपसे रहनेवाले जन्तु, यातुधान (राक्षस), गुह्यक और सिद्ध आदि हों अथवा और भी जो हों, उन सबका पूजन करके इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिये ⁠।⁠।⁠ १६—१९ ⁠।⁠।

‘भगवान् केशवकी आज्ञासे प्रतिमाके लिये हमलोगोंकी यह यात्रा हुई है। भगवान् विष्णुके लिये जो कार्य हो, वह आपलोगोंका भी कार्य है। अतः हमारे दिये हुए इस बलिदानसे आपलोग सर्वथा तृप्त हों और शीघ्र ही यह स्थान छोड़कर कुशलपूर्वक अन्यत्र चले जायँ’ ⁠।⁠।⁠ २०-२१ ⁠।⁠।

इस प्रकार सावधान करनेपर वे जीव बड़े प्रसन्न होते हैं और सुखपूर्वक उस स्थानको छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं। इसके बाद कारीगरोंके साथ यज्ञका चरु भक्षण करके रातमें सोते समय स्वप्न-मन्त्रका जप करे। ‘जो समस्त प्राणियोंके निवास-स्थान हैं, व्यापक हैं, सबको उत्पन्न करनेवाले हैं, स्वयं विश्वरूप हैं और सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, उन स्वप्नके अधिपति भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है। देव! देवेश्वर! मैं आपके निकट सो रहा हूँ। मेरे मनमें जिन कार्योंका संकल्प है, उन सबके सम्बन्धमें मुझसे कुछ कहिये’ ⁠।⁠।⁠ २२—२४ ⁠।⁠।

‘ॐ ॐ ह्रूं फट् विष्णवे स्वाहा।’ इस प्रकार मन्त्र-जप करके सो जानेपर यदि अच्छा स्वप्न हो तो सब शुभ होता है और यदि बुरा स्वप्न हुआ तो नरसिंह-मन्त्रसे हवन करनेपर शुभ होता है। सबेरे उठकर अस्त्र-मन्त्रसे शिलापर अर्घ्य दे। फिर अस्त्रकी भी पूजा करे। कुदाल (फावड़े), टंक और शस्त्र आदिके मुखपर मधु और घी लगाकर पूजन करना चाहिये। अपने-आपका विष्णुरूपसे चिन्तन करे। कारीगरको विश्वकर्मा माने और शस्त्रके भी विष्णुरूप होनेकी ही भावना करे। फिर शस्त्र कारीगरको दे और उसका मुख-पृष्ठ आदि उसे दिखा दे ⁠।⁠।⁠ २५—२७ ⁠।⁠।

कारीगर अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखे और हाथमें टंक लेकर उससे उस शिलाको चौकोर बनावे। फिर पिण्डी बनानेके लिये उसे कुछ छोटी करे। इसके बाद शिलाको वस्त्रमें लपेटकर रथपर रखे और शिल्पशालामें लाकर पुनः उस शिलाका पूजन करे। इसके बाद कारीगर प्रतिमा बनावे ⁠।⁠।⁠ २८-२९ ⁠।⁠।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘मन्दिरके देवताकी स्थापना, भूतशान्ति, शिला-लक्षण और प्रतिमा-निर्माण आदिका निरूपण’ नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।⁠।⁠ ४३ ⁠।⁠।

## चौवालीसवाँ अध्याय

### वासुदेव आदिकी प्रतिमाओंके लक्षण

भगवान् हयग्रीव बोले—ब्रह्मन्! अब मैं तुम्हें वासुदेव आदिकी प्रतिमाके लक्षण बताता हूँ, सुनो। मन्दिरके उत्तर भागमें शिलाको पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख रखकर उसकी पूजा करे और उसे बलि अर्पित करके कारीगर शिलाके बीचमें सूत लगाकर उसका नौ भाग करे। नवें भागको भी १२ भागोंमें विभाजित करनेपर एक-एक भाग अपने अङ्गुलसे एक अङ्गुलका होता है। दो अङ्गुलका एक गोलक होता है, जिसे ‘कालनेत्र’ भी कहते हैं ⁠।⁠।⁠ १—३ ⁠।⁠।

उक्त नौ भागोंमेंसे एक भागके तीन हिस्से करके उसमें पार्ष्णि-भागकी कल्पना करे। एक भाग घुटनेके लिये तथा एक भाग कण्ठके लिये निश्चित रखे। मुकुटको एक बित्ता रखे। मुँहका भाग भी एक बित्तेका ही होना चाहिये। इसी प्रकार एक बित्तेका कण्ठ और एक ही बित्तेका हृदय भी रहे। नाभि और लिङ्गके बीचमें एक बित्तेका अन्तर होना चाहिये। दोनों ऊरु दो बित्तेके हों। जंघा भी दो बित्तेकी हो। अब सूत्रोंका माप सुनो— ⁠।⁠।⁠ ४—६ ⁠।⁠।

दो सूत पैरमें और दो सूत जङ्घामें लगावे। घुटनोंमें दो सूत तथा दोनों ऊरुओंमें भी दो सूतका उपयोग करे। लिङ्गमें दूसरे दो सूत तथा कटिमें भी कमरबन्ध (करधन) बनानेके लिये दूसरे दो सूतोंका योग करे। नाभिमें भी दो सूत काममें लावे। इसी प्रकार हृदय और कण्ठमें दो सूतका उपयोग करे। ललाटमें दूसरे और मस्तकमें दूसरे दो सूतोंका उपयोग करे। बुद्धिमान् कारीगरोंको मुकुटके ऊपर एक सूत करना चाहिये। ब्रह्मन्! ऊपर सात ही सूत देने चाहिये। तीन कक्षाओंके अन्तरसे ही छः सूत्र दिलावे। फिर मध्य-सूत्रको त्याग दे और केवल सूत्रोंको ही निवेदित करे ⁠।⁠।⁠ ७—११ ⁠।⁠।

ललाट, नासिका और मुखका विस्तार चार अङ्गुलका होना चाहिये। गला और कानका भी चार-चार अङ्गुल विस्तार करना चाहिये। दोनों ओरकी हनु (ठोढ़ी) दो-दो अङ्गुल चौड़ी हो और चिबुक (ठोढ़ीके बीचका भाग) भी दो अङ्गुलका हो। पूरा विस्तार छः अङ्गुलका होना चाहिये। इसी प्रकार ललाट भी विस्तारमें आठ अङ्गुलका बताया गया है। दोनों ओरके शङ्ख दो-दो अङ्गुलके बनाये जायँ और उनपर बाल भी हों। कान और नेत्रके बीचमें चार अङ्गुलका अन्तर रहना चाहिये। दो-दो अङ्गुलके कान एवं पृथुक बनावे। भौंहोंके समान सूत्रके मापका कानका स्रोत कहा गया है। बिंधा हुआ कान छः अङ्गुलका हो और बिना बिंधा हुआ चार अङ्गुलका। अथवा बिंधा हो या बिना बिंधा, सब चिबुकके समान छः अङ्गुलका होना चाहिये ⁠।⁠।⁠ १२—१६ ⁠।⁠।

गन्धपात्र, आवर्त तथा शष्कुली (कानका पूरा घेरा) भी बनावे। एक अङ्गुलमें नीचेका ओठ और आधे अङ्गुलका ऊपरका ओठ बनावे। नेत्रका विस्तार आधा अङ्गुल हो और मुखका विस्तार चार अङ्गुल हो। मुखकी चौड़ाई डेढ़ अङ्गुलकी होनी चाहिये। नाककी ऊँचाई एक अङ्गुल हो और ऊँचाईसे आगे केवल लंबाई दो अङ्गुलकी रहे। करवीर-कुसुमके समान उसकी आकृति होनी चाहिये। दोनों नेत्रोंके बीच चार अङ्गुलका अन्तर हो। दो अङ्गुल तो आँखके घेरेमें आ जाता है, सिर्फ दो अङ्गुल अन्तर रह जाता है। पूरे नेत्रका तीन भाग करके एक भागके बराबर तारा (काली पुतली) बनावे और पाँच भाग करके, एक भागके बराबर दृक्तारा (छोटी पुतली) बनावे। नेत्रका विस्तार दो अङ्गुलका हो और द्रोणी आधे अङ्गुलकी। उतना ही प्रमाण भौंहोंकी रेखाका हो। दोनों ओरकी भौंहें बराबर रहनी चाहिये। भौंहोंका मध्य दो अङ्गुलका और विस्तार चार अङ्गुलका होना चाहिये ⁠।⁠।⁠ १७—२२ ⁠।⁠।

भगवान् केशव आदिकी मूर्तियोंके मस्तकका पूरा घेरा छब्बीस अङ्गुलका होवे अथवा बत्तीस अङ्गुलका। नीचे ग्रीवा (गला) पाँच नेत्र (अर्थात् दस अङ्गुल)-की हो और इसके तीन गुना अर्थात् तीस अङ्गुल उसका वेष्टन (चारों ओरका घेरा) हो। नीचेसे ऊपरकी ओर ग्रीवाका विस्तार आठ अङ्गुलका हो। ग्रीवा और छातीके बीचका अन्तर ग्रीवाके तीन गुने विस्तारवाला होना चाहिये। दोनों ओरके कंधे आठ-आठ अङ्गुलके और सुन्दर अंस तीन-तीन अङ्गुलके हों। सात नेत्र (यानी चौदह अङ्गुल)-की दोनों बाहें और सोलह अङ्गुलकी दोनों प्रबाहुएँ हों (बाहु और प्रबाहु मिलकर पूरी बाँह समझी जाती है)। बाहुओंकी चौड़ाई छः अङ्गुलकी हो। प्रबाहुओंकी भी इनके समान ही होनी चाहिये। बाहुदण्डका चारों ओरका घेरा कुछ ऊपरसे लेकर नौ कला अथवा सत्रह अङ्गुल समझना चाहिये। आधेपर बीचमें कूर्पर (कोहनी) है। कूर्परका घेरा सोलह अङ्गुलका होता है। ब्रह्माजी! प्रबाहुके मध्यमें उसका विस्तार सोलह अङ्गुलका हो। हाथके अग्रभागका विस्तार बारह अङ्गुल हो और उसके बीच करतलका विस्तार छः अङ्गुल कहा गया है। हाथकी चौड़ाई सात अङ्गुलकी करे। हाथके मध्यमा अङ्गुलीकी लंबाई पाँच अङ्गुलकी हो और तर्जनी तथा अनामिकाकी लंबाई उससे आधा अङ्गुल कम अर्थात् ४ ⁠।⁠।⁠ अङ्गुलकी करे। कनिष्ठिका और अँगूठेकी लंबाई चार अङ्गुलकी करे। अँगूठेमें दो पोरु बनावे और बाकी सभी अँगुलियोंमें तीन-तीन पोरु रखे। सभी अँगुलियोंके एक-एक पोरुके आधे भागके बराबर प्रत्येक अँगुलीके नखकी नाप समझनी चाहिये। छातीकी जितनी माप हो, पेटकी उतनी ही रखे। एक अङ्गुलके छेदवाली नाभि हो। नाभिसे लिङ्गके बीचका अन्तर एक बित्ता होना चाहिये ⁠।⁠।⁠ २३—३३ ⁠।⁠।

नाभि—मध्याङ्ग (उदर)-का घेरा बयालीस अङ्गुलका हो। दोनों स्तनोंके बीचका अन्तर एक बित्ता होना चाहिये। स्तनोंका अग्रभाग—चुचुक यवके बराबर बनावे। दोनों स्तनोंका घेरा दो पदोंके बराबर हो। छातीका घेरा चौंसठ अङ्गुलका बनावे। उसके नीचे और चारों ओरका घेरा ‘वेष्टन’ कहा गया है। इसी प्रकार कमरका घेरा चौवन अङ्गुलका होना चाहिये। ऊरुओंके मूलका विस्तार बारह-बारह अङ्गुलका हो। इसके ऊपर मध्यभागका विस्तार अधिक रखना चाहिये। मध्यभागसे नीचेके अङ्गोंका विस्तार क्रमशः कम होना चाहिये। घुटनोंका विस्तार आठ अङ्गुलका करे और उसके नीचे जंघाका घेरा तीन गुना, अर्थात् चौबीस अङ्गुलका हो; जंघाके मध्यका विस्तार सात अङ्गुलका होना चाहिये और उसका घेरा तीन गुना, अर्थात् इक्कीस अङ्गुलका हो। जंघाके अग्रभागका विस्तार पाँच अङ्गुल और उसका घेरा तीन गुना—पंद्रह अङ्गुलका हो। चरण एक-एक बित्ते लंबे होने चाहिये। विस्तारसे उठे हुए पैर अर्थात् पैरोंकी ऊँचाई चार अङ्गुलकी हो। गुल्फ (घुट्ठी)-से पहलेका हिस्सा भी चार अङ्गुलका ही हो ⁠।⁠।⁠ ३४—४० ⁠।⁠।

दोनों पैरोंकी चौड़ाई छः अङ्गुलकी, गुह्यभाग तीन अङ्गुलका और उसका पंजा पाँच अङ्गुलका होना चाहिये। पैरोंमें प्रदेशिनी, अर्थात् अँगूठा चौड़ा होना उचित है। शेष अँगुलियोंके मध्यभागका विस्तार क्रमशः पहली अँगुलीके आठवें-आठवें भागके बराबर कम होना चाहिये। अँगूठेकी ऊँचाई सवा अङ्गुल बतायी गयी है। इसी प्रकार अँगूठेके नखका प्रमाण और अँगुलियोंसे दूना रखना चाहिये। दूसरी अँगुलीके नखका विस्तार आधा अङ्गुल तथा अन्य अँगुलियोंके नखोंका विस्तार क्रमशः जरा-जरा-सा कम कर देना चाहिये ⁠।⁠।⁠ ४१—४३ ⁠।⁠।

दोनों अण्डकोष तीन-तीन अङ्गुल लंबे बनावे और लिङ्ग चार अङ्गुल लंबा करे। इसके ऊपरका भाग चार अङ्गुल रखे। अण्डकोषोंका पूरा घेरा छः-छः अङ्गुलका होना चाहिये। इसके सिवा भगवान्‌की प्रतिमा सब प्रकारके भूषणोंसे भूषित करनी चाहिये। यह लक्षण उद्देश्यमात्र (संक्षेपसे) बताया गया है ⁠।⁠।⁠ ४४-४५ ⁠।⁠।

इसी प्रकार लोकमें देखे जानेवाले अन्य लक्षणोंको भी दृष्टिमें रखकर प्रतिमामें उसका निर्माण करना चाहिये। दाहिने हाथोंमेंसे ऊपरवाले हाथमें चक्र और नीचेवाले हाथमें पद्म धारण करावे। बायें हाथोंमेंसे ऊपरवाले हाथमें शङ्ख और नीचेवाले हाथमें गदा बनावे। यह वासुदेव श्रीकृष्णका चिह्न है, अतः उन्हींकी प्रतिमामें रहना चाहिये। भगवान्‌के निकट हाथमें कमल लिये हुए लक्ष्मी तथा वीणा धारण किये पुष्टि देवीकी भी प्रतिमा बनावे। इनकी ऊँचाई (भगवद्‌विग्रहके) ऊरुओंके बराबर होनी चाहिये। इनके अलावा प्रभामण्डलमें स्थित मालाधर और विद्याधरका विग्रह बनावे। प्रभा हस्ती आदिसे भूषित होती है। भगवान्‌के चरणोंके नीचेका भाग अर्थात् पादपीठ कमलके आकारका बनावे। इस प्रकार देव-प्रतिमाओंमें उक्त लक्षणोंका समावेश करना चाहिये ⁠।⁠।⁠ ४६—४९ ⁠।⁠।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘वासुदेव आदिकी प्रतिमाओंके लक्षणका वर्णन’ नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।⁠।⁠ ४४ ⁠।⁠।

## पैंतालीसवाँ अध्याय

### पिण्डिका आदिके लक्षण

भगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं पिण्डिकाका लक्षण बता रहा हूँ। पिण्डिका लंबाईमें प्रतिमाके समान ही होती है, परंतु उसकी ऊँचाई प्रतिमासे आधी होती है। पिण्डिकाको चौंसठ कुटों (पदों या कोष्ठकों)-से युक्त करके नीचेकी दो पङ्क्ति छोड़ दे और उसके ऊपरका जो कोष्ठ है, उसे चारों ओर दोनों पार्श्वोंमें भीतरकी ओरसे मिटा दे। इसी तरह ऊपरकी दो पङ्क्तियोंको त्यागकर उसके नीचेका जो एक कोष्ठ (या एक पङ्क्ति) है, उसे भीतरकी ओरसे यत्नपूर्वक मिटा दे। दोनों पार्श्वोंमें समान रूपसे यह क्रिया करे ⁠।⁠।⁠ १—३ ⁠।⁠।

दोनों पार्श्वोंके मध्यगत जो दो चौक हैं, उनका भी मार्जन कर दे। तदनन्तर उसे चार भागोंमें बाँटकर विद्वान् पुरुष ऊपरकी दो पङ्क्तियोंको मेखला माने। मेखलाभागकी जो मात्रा है, उसके आधे मानके अनुसार उसमें खात खुदावे। फिर दोनों पार्श्वभागोंमें समानरूपसे एक-एक भागको त्यागकर बाहरकी ओरका एक पद नाली बनानेके लिये दे दे। विद्वान् पुरुष उसमें नाली बनवाये। फिर तीन भागमें जो एक भाग है, उसके आगे जल निकलनेका मार्ग रहे ⁠।⁠।⁠ ४—६ ⁠।⁠।

नाना प्रकारके भेदसे यह शुभ पिण्डिका ‘भद्रा’ कही गयी है। लक्ष्मी देवीकी प्रतिमा ताल (हथेली)-के मापसे आठ तालकी बनायी जानी चाहिये। अन्य देवियोंकी प्रतिमा भी ऐसी ही हो। दोनों भौंहोंको नासिकाकी अपेक्षा एक-एक जौ अधिक बनावे और नासिकाको उनकी अपेक्षा एक जौ कम। मुखकी गोलाई नेत्रगोलकसे बड़ी होनी चाहिये। वह ऊँचा और टेढ़ा-मेढ़ा न हो। आँखें बड़ी-बड़ी बनानी चाहिये। उनका माप सवा तीन जौके बराबर हो। नेत्रोंकी चौड़ाई उनकी लंबाईकी अपेक्षा आधी करे। मुखके एक कोनेसे लेकर दूसरे कोनेतककी जितनी लंबाई है, उसके बराबरके सूतसे नापकर कर्णपाश (कानका पूरा घेरा) बनावे। उसकी लंबाई उक्त सूतसे कुछ अधिक ही रखे। दोनों कंधोंको कुछ झुका हुआ और एक कलासे रहित बनावे। ग्रीवाकी लंबाई डेढ़ कला रखनी चाहिये। वह उतनी ही चौड़ाईसे भी सुशोभित हो। दोनों ऊरुओंका विस्तार ग्रीवाकी अपेक्षा एक नेत्र[[74]](#footnote-74) कम होगा। जानु (घुटने), पिण्डली, पैर, पीठ, नितम्ब तथा कटिभाग—इन सबकी यथायोग्य कल्पना करे ⁠।⁠।⁠ ७—११ ⁠।⁠।

हाथकी अँगुलियाँ बड़ी हों। वे परस्पर अवरुद्ध न हों। बड़ी अँगुलीकी अपेक्षा छोटी अँगुलियाँ सातवें अंशसे रहित हों। जंघा, ऊरु और कटि—इनकी लंबाई क्रमशः एक-एक नेत्र कम हो। शरीरके मध्यभागके आस-पासका अङ्ग गोल हो। दोनों कुच घने (परस्पर सटे हुए) और पीन (उभड़े हुए) हों। स्तनोंका माप हथेलीके बराबर हो। कटि उनकी अपेक्षा डेढ़ कला अधिक बड़ी हो। शेष चिह्न पूर्ववत् रहें। लक्ष्मीजीके दाहिने हाथमें कमल और बायें हाथमें बिल्वफल हो।[[75]](#footnote-75) उनके पार्श्वभागमें हाथमें चँवर लिये दो सुन्दरी स्त्रियाँ खड़ी हों[[76]](#footnote-76)। सामने बड़ी नाकवाले गरुडकी स्थापना करे। अब मैं चक्राङ्कित (शालग्राम) मूर्ति आदिका वर्णन करता हूँ ⁠।⁠।⁠ १२—१५ ⁠।⁠।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘पिण्डिका आदिके लक्षणका वर्णन’ नामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।⁠।⁠ ४५ ⁠।⁠।

## छियालीसवाँ अध्याय

### शालग्राम-मूर्तियोंके लक्षण

**भगवान् हयग्रीव कहते हैं**—ब्रह्मन्! अब मैं शालग्रामगत भगवन्मूर्तियोंका वर्णन आरम्भ करता हूँ, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। जिस शालग्राम-शिलाके द्वारमें दो चक्रके चिह्न हों और जिसका वर्ण श्वेत हो, उसकी ‘वासुदेव’ संज्ञा है। जिस उत्तम शिलाका रंग लाल हो और जिसमें दो चक्रके चिह्न संलग्न हों, उसे भगवान् ‘संकर्षण’ का श्रीविग्रह जानना चाहिये। जिसमें चक्रका सूक्ष्म चिह्न हो, अनेक छिद्र हों, नील वर्ण हो और आकृति बड़ी दिखायी देती हो, वह ‘प्रद्युम्न’ की मूर्ति है।[[77]](#footnote-77) जहाँ कमलका चिह्न हो, जिसकी आकृति गोल और रंग पीला[[78]](#footnote-78) हो तथा जिसमें दो-तीन रेखाएँ शोभा पा रही हों, यह ‘अनिरुद्ध’ का श्रीअङ्ग है। जिसकी कान्ति काली, नाभि उन्नत और जिसमें बड़े-बड़े छिद्र हों, उसे ‘नारायण’ का स्वरूप समझना चाहिये। जिसमें कमल और चक्रका चिह्न हो, पृष्ठभागमें छिद्र हो और जो बिन्दुसे युक्त हो, वह शालग्राम ‘परमेष्ठी’ नामसे प्रसिद्ध है। जिसमें चक्रका स्थूल चिह्न हो, जिसकी कान्ति श्याम हो और मध्यमें गदा-जैसी रेखा हो, उस शालग्रामकी ‘विष्णु’ संज्ञा है ⁠।⁠।⁠ १—४ ⁠।⁠।

नृसिंह-विग्रहमें चक्रका स्थूल चिह्न होता है। उसकी कान्ति कपिल वर्णकी होती है और उसमें पाँच बिन्दु सुशोभित होते हैं।[[79]](#footnote-79) वाराह-विग्रहमें शक्ति नामक अस्त्रका चिह्न होता है। उसमें दो चक्र होते हैं, जो परस्पर विषम (समानतासे रहित) हैं। उसकी कान्ति इन्द्रनील मणिके समान नीली होती है। वह तीन स्थूल रेखाओंसे चिह्नित एवं शुभ होता है।[[80]](#footnote-80) जिसका पृष्ठभाग ऊँचा हो, जो गोलाकार आवर्तचिह्नसे युक्त एवं श्याम हो, उस शालग्रामकी ‘कूर्म’ (कच्छप) संज्ञा है५ ⁠।⁠।⁠ ५-६ ⁠।⁠।

जो अंकुशकी-सी रेखासे सुशोभित, नीलवर्ण एवं बिन्दुयुक्त हो, उस शालग्राम-शिलाको ‘हयग्रीव’ कहते हैं। जिसमें एक चक्र और कमलका चिह्न हो, जो मणिके समान प्रकाशमान तथा पुच्छाकार रेखासे शोभित हो, उस शालग्रामको ‘वैकुण्ठ’ समझना चाहिये।[[81]](#footnote-81) जिसकी आकृति बड़ी हो, जिसमें तीन बिन्दु शोभा पाते हों, जो काँचके समान श्वेत तथा भरा-पूरा हो, वह शालग्राम-शिला मत्स्यावतारधारी भगवान्‌की मूर्ति मानी जाती है।७ जिसमें वनमालाका चिह्न और पाँच रेखाएँ हों, उस गोलाकार शालग्राम-शिलाको ‘श्रीधर’ कहते हैं८ ⁠।⁠।⁠ ७-८ ⁠।⁠।

गोलाकार, अत्यन्त छोटी, नीली एवं बिन्दुयुक्त शालग्राम-शिलाकी ‘वामन’ संज्ञा है।९ जिसकी कान्ति श्याम हो, दक्षिण भागमें हारकी रेखा और बायें भागमें बिन्दुका चिह्न हो, उस शालग्राम-शिलाको ‘त्रिविक्रम’ कहते हैं१ ⁠।⁠।⁠ ९ ⁠।⁠।

जिसमें सर्पके शरीरका चिह्न हो, अनेक प्रकारकी आभाएँ दीखती हों तथा जो अनेक मूर्तियोंसे मण्डित हो, वह शालग्राम-शिला ‘अनन्त’ (शेषनाग) कही गयी है।२ जो स्थूल हो, जिसके मध्यभागमें चक्रका चिह्न हो तथा अधोभागमें सूक्ष्म बिन्दु शोभा पा रहा हो, उस शालग्रामकी ‘दामोदर’ संज्ञा है।३ एक चक्रवाले शालग्रामको सुदर्शन कहते हैं, दो चक्र होनेसे उसकी ‘लक्ष्मीनारायण’ संज्ञा होती है। जिसमें तीन चक्र हों, वह शिला भगवान् ‘अच्युत’ अथवा ‘त्रिविक्रम’ है। चार चक्रोंसे युक्त शालग्रामको ‘जनार्दन’, पाँच चक्रवालेको ‘वासुदेव’, छः चक्रवालेको ‘प्रद्युम्न’ तथा सात चक्रवालेको ‘संकर्षण’ कहते हैं। आठ चक्रवाले शालग्रामकी ‘पुरुषोत्तम’ संज्ञा है। नौ चक्रवालेको ‘नवव्यूह’ कहते हैं। दस चक्रोंसे युक्त शिलाकी ‘दशावतार’ संज्ञा है। ग्यारह चक्रोंसे युक्त होनेपर उसे ‘अनिरुद्ध’, द्वादश चक्रोंसे चिह्नित होनेपर ‘द्वादशात्मा’ तथा इससे अधिक चक्रोंसे युक्त होनेपर उसे ‘अनन्त’ कहते हैं ⁠।⁠।⁠ १०—१३ ⁠।⁠।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘शालग्रामगत मूर्तियोंके लक्षणका वर्णन' नामक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ⁠।⁠।⁠ ४६ ⁠।⁠।

१. २. ४. ५. ६. हयग्रीवोऽङ्कुशाकारः पञ्चरेखः सकौस्तुभः ⁠। वैकुण्ठो मणिरत्नाभ एकचक्राम्बुजोऽसितः ⁠।⁠। (ग०पु०) ७. मत्स्यो दीर्घाम्बुजाकारो हाररेखश्च पातु वः ⁠। (ग०पु०) ८. श्रीधरः पञ्चरेखोऽव्याद् वनमाली गदान्वितः ⁠। (ग०पु०) (वाचस्पत्यकोषसे संकलित) ९. वामनो वर्तुलो ह्रस्वः वामचक्रः सुरेश्वरः ⁠। (ग०पु०) १. वामचक्रो हाररेखः श्यामो वोऽव्यात् त्रिविक्रमः ⁠।

1. यहाँ मूलमें, ‘प्रभावतः’ पद ‘प्रभावः’ के अर्थमें है। यहाँ ‘तसि’ प्रत्यय पञ्चम्यन्तका बोधक नहीं है। सार्वविभक्तिक ‘तसि’ के नियमानुसार प्रथमान्त पदसे यहाँ ‘तसि’ प्रत्यय हुआ है, ऐसा मानना चाहिये। [↑](#footnote-ref-1)
2. वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड ७।३ में इन मन्त्रियोंके नाम इस प्रकार आये हैं—धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल तथा सुमन्त्र। [↑](#footnote-ref-2)
3. शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे लेकर कृष्णपक्षकी अमावस्यातक एक मास होता है। इस मान्यताके अनुसार गणना करनेपर आजकी गणनाके अनुसार जो भाद्रपद कृष्ण अष्टमी है, वही श्रावण कृष्ण अष्टमी सिद्ध होती है। गुजरात, महाराष्ट्रमें अब भी ऐसा ही मानते हैं। [↑](#footnote-ref-3)
4. नैकबाहुका अर्थ है—अनेक बाँहोंवाली। इससे द्विभुजा, चतुर्भुजा, अष्टभुजा तथा अष्टादशभुजा आदि सभी देवियोंका ग्रहण हो जाता है। [↑](#footnote-ref-4)
5. आर्या दुर्गा वेद गर्भा अम्बिका भद्रकाल्यपि ⁠। भद्रा क्षेम्या क्षेमकरी नैकबाहुर्नमामि ताम् ⁠।⁠। त्रिसंध्यं यः पठेन्नाम सर्वान् कामान् स चाप्नुयात् ⁠।⁠। (अग्नि० १२।१२-१३) [↑](#footnote-ref-5)
6. श्रीकृष्ण उवाच— त्वया यदभयं दत्तं बाणस्यास्य मयापि तत् ⁠। आवयोर्नास्ति भेदो वै भेदी नरकमाप्नुयात् ⁠।⁠। (अग्नि० १२।५२) [↑](#footnote-ref-6)
7. यद्यपि इस अध्यायके अन्ततक महाभारतकी पूरी कथा समाप्त हुई-सी जान पड़ती है, तथापि आश्रमवासिक पर्वसे लेकर स्वर्गारोहण पर्वतकका वृत्तान्त कुछ विस्तारसे कहना शेष रह गया है; इसलिये अगले (पंद्रहवें) अध्यायमें उसे पूरा किया गया है। [↑](#footnote-ref-7)
8. यहाँ दी हुई आदित्योंकी नामावली हरिवंशके हरिवंशपर्वगत तीसरे अध्यायमें श्लोक संख्या ६०-६१ में कथित नामावलीसे ठीक-ठीक मिलती है। [↑](#footnote-ref-8)
9. ‘प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठाः कृशाश्वस्य सुरायुधाः।’ इस अर्धालीमें पूरे एक श्लोकका भाव संनिविष्ट है। अतः उस सम्पूर्ण श्लोकपर दृष्टि न रखी जाय तो अर्थको समझनेमें भ्रम होता है। हरिवंशके निम्नाङ्कित (हरि० ३।६५) श्लोकसे उपर्युक्त पङ्क्तियोंका भाव पूर्णतः स्पष्ट होता है— प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः ⁠। कृशाश्वस्य तु राजर्षेर्देवप्रहरणानि च ⁠।⁠। सम्पूर्ण दिव्यास्त्र कृशाश्वके पुत्र हैं, इस विपयमें वा० रामायण बाल०, सर्ग २१के श्लोक १३-१४ तथा मत्स्यपुराण ६।६ द्रष्टव्य हैं। [↑](#footnote-ref-9)
10. इस अर्धालीके भावको समझनेके लिये भी हरिवंशके निम्नाङ्कित श्लोकपर दृष्टिपात करना आवश्यक है— एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ⁠। सर्वदेवगणास्तात त्रयस्त्रिंशत्तु कामजाः ⁠।⁠। (हरि०, हरि० ३।६६) —यही भाव मत्स्यपुराण ६।७ में भी आया है। [↑](#footnote-ref-10)
11. कहीं-कहीं कर्मपादिक नाम मिलता है। [↑](#footnote-ref-11)
12. ईशान, वामदेव, सद्योजात, अघोर और तत्पुरुष—ये शिवके पाँच मुख हैं। हां ईशानाय नमः ⁠। हीं वामदेवाय नमः ⁠। हूं सद्योजाताय नमः ⁠। हैं अघोराय नमः ⁠। हौं तत्पुरुषाय नमः ⁠।—इन मन्त्रोंसे इन मुखोंकी पूजा करनी चाहिये। [↑](#footnote-ref-12)
13. नृसिंह-बीज ‘क्ष्रौं’ है। मन्त्र इस प्रकार है— ॐ उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ⁠। नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ⁠।⁠। [↑](#footnote-ref-13)
14. सोमशम्भुकी कर्मकाण्डक्रमावलीके अनुसार मिट्टीके एक भागको नाभिसे लेकर पैरोंतक लगावे और दूसरे भागको शेष सारे शरीरमें। इसके बाद दोनों हाथोंसे आँख, कान, नाक बंद करके जलमें डुबकी लगावे। फिर मन-ही-मन कालाग्निके समान तेजस्वी अस्त्रका स्मरण करते हुए जलसे बाहर निकले। इस तरह मलस्नान एवं संध्योपासन सम्पन्न करके (तन्त्रोक्त रीतिसे) विधि-स्नान करना चाहिये (द्रष्टव्य श्लोक ९, १० तथा ११)। [↑](#footnote-ref-14)
15. प्रत्येक दिशामें वहाँके विघ्नकारक भूतोंको भगानेकी भावनासे उक्त मृत्तिकाको बिखेरना ‘दिग्बन्ध’ कहलाता है। [↑](#footnote-ref-15)
16. शारदातिलकमें उद्धृत वसिष्ठसंहिताके वचनानुसार पहली मेखला बारह अङ्गुल चौड़ी होनी चाहिये और चार अङ्गुल ऊँची, दूसरी आठ अङ्गुल चौड़ी और चार अङ्गुल ऊँची, फिर तीसरी चार-चार अङ्गुल चौड़ी तथा ऊँची रहनी चाहिये। यथा— प्रथमा मेखला तत्र द्वादशाङ्गुलविस्तृता ⁠। चतुर्भिरङ्गुलैस्तस्याश्चोन्नतिश्च समन्ततः ⁠।⁠। तस्याश्चोपरि वप्रः स्याच्चतुरङ्गुलमुन्नतः ⁠। अष्टाभिरङ्गुलैः सम्यग् विस्तीर्णस्तु समन्ततः ⁠।⁠। तस्योपरि पुनः कार्यो भद्रः सोऽपि तृतीयकः ⁠। चतुरङ्गुलविस्तीर्णश्चोन्नतश्च तथाविधः ⁠।⁠। इस क्रमसे बाहरकी ओरसे पहली मेखलाकी ऊँचाई चार अङ्गुलकी होगी, फिर बादवाली उससे भी चार अङ्गुल ऊँची होनेके कारण मूलतः आठ अङ्गुल ऊँची होगी तथा तीसरी उससे भी चार अङ्गुल ऊँची होनेसे मूलतः बारह अङ्गुल ऊँची होगी। अग्निपुराणमें इसी दृष्टिसे भीतरकी ओरसे पहली मेखलाको बारह अङ्गुल ऊँची कहा गया है। चौड़ाई तो भीतरकी ओरसे बाहरकी ओर देखनेपर पहली बारह अङ्गुल चौड़ी, दूसरी आठ अङ्गुल चौड़ी तथा तीसरी चार अङ्गुल चौड़ी होगी। यहाँ मूलमें जो आठ, दो और चार अङ्गुलका विस्तार बताया गया है, इसका आधार अन्वेषणीय है। [↑](#footnote-ref-16)
17. अर्थात् एक हाथके कुण्डकी लंबाई-चौड़ाई २४ अङ्गुलकी होती है, दो हाथके कुण्डकी चौंतीस अङ्गुल और तीन हाथके कुण्डकी एकतालीस अङ्गुल होती है। इसी तरह अधिक हाथोंके विषयमें भी समझना चाहिये। [↑](#footnote-ref-17)
18. एक हाथ या २४ अङ्गुलके चौकोर क्षेत्रमें कुण्डार्ध होता है—१२ अङ्गुल और कोणभागार्ध है—१८ अङ्गुल। अतिरिक्त हुआ ६ अङ्गुल। उसका आधा भाग है—३ अङ्गुल। इसीको सब ओर बढ़ाकर सूत घुमानेसे गोल कुण्ड बनेगा। [↑](#footnote-ref-18)
19. कुण्ड-निर्माणके लिये निम्नाङ्कित परिभाषाको ध्यानमें रखना चाहिये—८ परमाणुओंका एक त्रसरेणु, ८ त्रसरेणुओंका १ रेणु, ८ रेणुओंका १ बालाग्र, ८ बालाग्रोंकी १ लिख्या, ८ लिख्याओंकी १ यूका, ८ यूकाओंका १ यव, ८ यवोंका १ अङ्गुल, २१ अङ्गुलिपर्वकी १ रत्नि तथा २४ अङ्गुलका १ हाथ होता है। एक-एक हाथ लंबे-चौड़े कुण्डको ‘चतुरस्र’ कहते हैं। चारों दिशाओंकी ओर एक-एक हाथ भूमिको मापकर जो कुण्ड तैयार किया जाता है, उसकी ‘चतुरस्र’ या ‘चतुष्कोण’ संज्ञा है।

    इसकी रचनाका प्रकार यों है—पहले पूर्व-पश्चिम आदि दिशाओंका सम्यक् परिज्ञान कर ले। फिर जितना बड़ा क्षेत्र अभीष्ट हो, उतनेहीमें पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओंमें कील गाड़ दे। यदि २४ अङ्गुलका क्षेत्र अभीष्ट हो तो ४८ अङ्गुलका सूत लेकर उसमें बारह-बारह अङ्गुलपर चिह्न लगा दे। फिर सूतको दोनों कीलोंमें बाँध दे। फिर उस सूतके चतुर्थांश चिह्नको कोणकी दिशाकी ओर खींचकर कोणका निश्चय करे। इससे चारों कोण शुद्ध होते हैं। इस प्रकार समान चतुरस्र क्षेत्र शुद्ध होता है। क्षेत्रशुद्धिके अनन्तर कुण्डका खनन करे। चतुर्भुज क्षेत्रमें भुज और कोटिके अङ्कोंमें गुणा करनेपर जो गुणनफल आता है, वही क्षेत्रफल होता है। इस प्रकार २४ अङ्गुलके क्षेत्रमें २४ अङ्गुल भुज और २४ अङ्गुल कोटि परस्पर गुणित हों तो ५७६ अङ्गुल क्षेत्रफल होगा।

    चतुरस्र क्षेत्रको चौबीस भागोंमें विभक्त करे। फिर उसमेंसे तेरह भागको व्यासार्ध माने और उतने ही विस्तारके परकालसे क्षेत्रके मध्यभागसे आरम्भ करके मण्डलाकार रेखा खींचनेपर उत्तम वृत्त कुण्ड बन जायगा। चतुरस्र क्षेत्रके शतांश और पञ्चमांशको जोड़कर उतना अंश क्षेत्रमानमेंसे घटा दे। फिर जो क्षेत्रमान शेष रह जाय, उतने ही विस्तारका परकाल लेकर क्षेत्रके मध्यभागमें लगा दे और अर्धवृत्ताकार रेखा खींचे। फिर अर्धचन्द्रके एक अग्रभागसे दूसरे अर्धभागतक पड़ी रेखा खींचे। इससे अर्धचन्द्रकुण्ड समीचीन होगा। उदाहरणार्थ—२४ अङ्गुलके क्षेत्रका पञ्चमांश ४ अङ्गुल, ६ यवा, ३ यूका, १ लिख्या (या लिक्षा) और ५ बालाग्र होगा। उस क्षेत्रका शतांश ० अङ्गुल, ० यवा, ३ यूका, ० लिक्षा और ४ बालाग्र होगा। इन दोनोंका योग ४ अङ्गुल ६ यवा, ६ यूका, २ लिक्षा और १ बालाग्र होगा। यह मान २४ अङ्गुलमें घटा दिया जाय तो शेष रहेगा १९ अङ्गुल, १ यवा, १ यूका, ५ लिक्षा और ७ बालाग्र। इतने विस्तारके परकालसे अर्धचन्द्र बनाना चाहिये। अग्निपुराणमें इन कुण्डोंके निर्माणकी विधि अत्यन्त संक्षेपसे लिखी गयी है; अतः अन्य ग्रन्थोंका मत भी यहाँ दे दिया गया है। [↑](#footnote-ref-19)
20. ॐ अं नमो भगवते वासुदेवाय नमः ⁠। ॐ आं नमो भगवते संकर्षणाय नमः ⁠। ॐ अं नमो भगवते प्रद्युम्नाय नमः ⁠। ॐ अः नमो भगवते अनिरुद्धाय नमः ⁠। [↑](#footnote-ref-20)
21. हृदयकी ‘नमः’, सिरकी ‘स्वाहा’, शिखाकी ‘वषट्’, कवचकी ‘हुम्’, नेत्रकी ‘वौषट्’ तथा अस्त्रकी ‘फट्’ जाति है। [↑](#footnote-ref-21)
22. दोनों हाथोंके अँगूठोंको ऊपर करके मुट्ठी बाँधकर दोनों मुट्ठियोंको परस्पर सटानेसे ‘संनिधापिनी मुद्रा’ होती है। [↑](#footnote-ref-22)
23. ‘आदि’ पदसे ‘आवाहनी’ आदि मुद्राओंको ग्रहण करना चाहिये। उनके लक्षण ग्रन्थान्तरसे जानने चाहिये। [↑](#footnote-ref-23)
24. यहाँ अञ्जलिको प्रथम मुद्रा कहा गया है। ‘अञ्जलि’ और ‘वन्दनी’—दोनों मुद्राएँ प्रसिद्ध हैं; अतः उनका विशेष लक्षण यहाँ नहीं दिया गया है। तथापि मन्त्रमहार्णवमें अञ्जलिको ही ‘अञ्जलिमुद्रा’ कहते हैं, यह परिभाषा दी गयी है—‘अञ्जल्यञ्जलिमुद्रा स्यात्।’ [↑](#footnote-ref-24)
25. हाथ जोड़कर नमस्कार करना ही ‘वन्दनी’ मुद्रा है। ईशान शिवगुरुदेव-पद्धतिमें इसका लक्षण इस प्रकार दिया गया है— ‘बद्ध्वाञ्जलिं पङ्कजकोशकल्पं यद्दक्षिणज्येष्ठिकया तु वामाम् ⁠। ज्येष्ठां समाक्रम्य तु वन्दनीयं मुद्रा नमस्कारविधौ प्रयोज्या ⁠।⁠।’ अर्थात् कमल-मुकुलके समान अञ्जलि बाँधकर, जब दाहिने अँगूठेसे बायें अँगूठेको दबा दिया जाय तो ‘वन्दिनी मुद्रा’ होती है। इसका प्रयोग नमस्कारके लिये होना चाहिये (उत्तरार्ध क्रियापाद, सप्तम पटल ९)। [↑](#footnote-ref-25)
26. ५. यहाँ मूलमें ‘हृदयानुगा’ मुद्राका जो लक्षण दिया गया है, वही अन्यत्र ‘संरोधिनी मुद्रा’ का लक्षण है। मन्त्रमहार्णवमें ‘संनिधापिनी मुद्रा’ का लक्षण देकर कहा है—‘अन्तःप्रवेशिताङ्गुष्ठा सैव संरोधिनी मता।’ अर्थात् संनिधापिनीको ही यदि उसकी मुट्ठियोंके भीतर अङ्गुष्ठका प्रवेश हो तो ‘संरोधिनी’ कहते हैं। हृदयानुगामें बायीं मुट्ठीके भीतर दाहिनी मुट्ठीका अँगूठा रहता है और बायाँ अँगूठा खुला रहता है, परंतु संरोधिनीमें दोनों ही अँगूठे मुट्ठीके भीतर रहते हैं, यही अन्तर है। [↑](#footnote-ref-26)
27. ईशानशिवगुरुदेव मिश्रने शब्दान्तरसे यही बात कही है। उन्होंने संनिरोधिनीको निष्ठुराकी संज्ञा दी है— ‘संलग्नमुष्ट‍योः करयोः स्थितोर्ध्वज्येष्ठायुगं यत्र समुन्नताग्रम् ⁠। सा संनिधापिन्यथ सैव गर्भाङ्गुष्ठा भवेच्चेदिह निष्ठुराख्या ⁠।⁠।’ [↑](#footnote-ref-27)
28. पुण्डरीक-मन्त्र— ‘ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ⁠। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ⁠।⁠।’ [↑](#footnote-ref-28)
29. यथा—‘ॐ रां (नमः) कर्मेन्द्रियाणि वियुङ्‌क्ष्व हुं फट्; ॐ यं (नमः) भूतानि वियुङ्‌क्ष्व हुं फट्।’ इत्यादि। [↑](#footnote-ref-29)
30. \* श्रीविद्यार्णव-तन्त्र, बारहवें श्वासमें इस सर्वतोभद्रमण्डलका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है—चौकोर क्षेत्रमें पूर्वसे पश्चिमकी सत्रह रेखाएँ खींचकर, उनके ऊपर उत्तरसे दक्षिणकी ओर उतनी ही रेखाएँ खींचे। इस तरह दो सौ छप्पन कोष्ठोंका चतुरस्र मण्डल तैयार होगा। उनमें बीचके छत्तीस कोष्ठोंको एक करके, उनके बाहरकी एक-एक पंक्तिको चारों दिशाओंमें मिटाकर, पीठकी कल्पना करे। पीठके बाहर चारों दिशाओंकी दो-दो पंक्तियोंको एक करके सम्मार्जनपूर्वक वीथीकी कल्पना करे। बीचके छत्तीस कोष्ठोंको जो एक किया गया है, वह कमलका क्षेत्र है; उस क्षेत्रमें ही बाहरकी ओरसे बारहवाँ भाग खाली छोड़ दे। अर्थात् यदि वह क्षेत्र बारह अङ्गुल लम्बा-चौड़ा है तो चारों ओरसे एक-एक अङ्गुलको खाली छोड़ दे। शेष भागमें सबसे बीचके केन्द्रमें सूत रखकर क्रमशः तीन गोल रेखाएँ खींचे ⁠।⁠।⁠  ये तीनों एक-दूसरीसे समान अन्तरपर हों। इनमें सबसे भीतरी या बीचके वृत्तको कमलकी कर्णिका माने। उससे बाहरकी वीथीको केसरका स्थान मानकर उस केसरस्थानको सोलह भागोंमें विभक्त करे और उसके चिह्नका अवलम्बन करते हुए दूसरे और तीसरे वृत्तोंमें अन्तराल-मानसूत्रके मानसे गुरुकी बतायी हुई युक्तिद्वारा सोलह अर्धचन्द्रोंकी कल्पना करे। उनके द्वारा आठ दलोंका निर्माण करके तृतीय वृत्तसे बाहर छोड़े हुए एक अंशके खाली स्थानसे बीचके चिह्नका अवलम्बन करते हुए एक और वृत्त बनावे। वहाँ गुरुकी बतायी युक्तिसे दलाग्रोंका निर्माण करे। एक-एक दलके मूलमें जिस तरह दो-दो केसर दीख पड़ें, उस तरहकी रचना करके कमलको साङ्गोंपाङ्ग सम्पन्न करके पद्मक्षेत्रसे बाहर जो एक पंक्तिरूप चतुरस्र पीठ है, उसके चारों कोणोंमें तीन-तीन कोष्ठोंको पीठके पाये माने और एकीकृत शेष कोष्ठोंको पीठके अन्य अङ्ग होनेकी कल्पना करे। पीठके बाहरकी वीथीरूप दो-दो पंक्तियोंका भलीभाँति मार्जन करके वीथीके बाहरकी एक पंक्तिमें चारों दिशाओंके जो मध्यवर्ती दो-दो कोष्ठ हैं, उनको एक करके सबसे बाहरी पंक्तिमें भी चारों दिशाओंके मध्यवर्ती चार-चार कोष्ठोंको मिटाकर चार द्वार निर्माण करे। इन द्वारोंके उभयपार्श्वमें दोनों पंक्तियोंके कोष्ठोंमेंसे भीतरी पंक्तिके तीन और बाहरी पंक्तिके एक—इन चार कोष्ठोंको एक करके ‘शोभा’ बनावे। शोभाके पार्श्वभागोंमें भीतरी पंक्तिका एक और बाहरी पंक्तिके तीन—इन चार कोष्ठोंको एक करके ‘उपशोभा’ बनावे। अवशिष्ट जो छः-छः कोष्ठ हैं, उनके द्वारा चारों कोणोंकी कल्पना करे। इस प्रकार सर्वतोभद्रमण्डलका निर्माण करके, कमलकी कर्णिका, केसर, दलाग्रपीठ, वीथी, द्वार, शोभा, उपशोभा और कोण-स्थानोंको पाँच प्रकारके रंगसे रञ्जित करके उक्त मण्डलकी शोभा बढ़ावे। [↑](#footnote-ref-30)
31. ‘नैवात्र वीथिका।’ (शारदातिलक, तृतीय पटल १३२) [↑](#footnote-ref-31)
32. द्वारशोभे यथा पूर्वमुपशोभा न दृश्यते ⁠।⁠।⁠  अवशिष्टैः पदैः कुर्यात् षड्भिः कोणानि तन्त्रवित् ⁠। [↑](#footnote-ref-32)
33. वर्षभरके पूजा-विधानकी सम्पूर्ण त्रुटियोंका दोष दूर करके उस कर्मकी साङ्गोपाङ्ग सम्पन्नता एवं उससे समस्त इष्ट फलोंकी प्राप्तिके लिये ‘पवित्रारोपण’ अत्यन्त आवश्यक कर्म है। इसे न करनेपर मन्त्र-साधक या उपासकको सिद्धिसे वञ्चित होना पड़ता है। जैसा कि आचार्य सोमशम्भुने कहा है— सर्वपूजाविधिच्छिद्रपूरणाय पवित्रकम् ⁠। कर्तव्यमन्यथा मन्त्री सिद्धिभ्रंशमवाप्नुयात् ⁠।⁠। (क० क्र० ३६४) अतएव ब्र० विष्णु-रहस्यमें भी कहा गया है— तस्माद् भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः ⁠। वर्षे वर्षे प्रकर्तव्यं पवित्रारोपणं हरेः ⁠।⁠। (वाचस्पत्ये हेमाद्रौ) पवित्रारोपण सभी देवताओंके लिये उनके उपासकोंद्वारा कर्तव्य है। इसके न करनेसे वर्षभरके देवपूजनके फलसे हाथ धोना पड़ता है। यह कर्म अत्यन्त पुण्यदायक माना गया है। सबसे पहले शास्त्रोंमें इसके लिये उत्तम कालका विचार किया गया है, जिसका दिग्दर्शन मूलके दूसरे तथा तीसरे श्लोकोंमें कराया गया है। सोमशम्भुके मतसे इसके लिये आषाढ़ मास उत्तम, श्रावण मध्यम तथा भाद्रपद कनिष्ठ है। वे इससे आगे बढ़नेकी आज्ञा नहीं देते। परंतु ‘विष्णुरहस्य’ के अनुसार भगवान् विष्णुके लिये पवित्रारोपणका मुख्यकाल श्रावण-शुक्ला द्वादशी है। वैसे तो यह सिंहगत सूर्य और कन्यागत सूर्यमें, अर्थात् भादों और आश्विनकी शुक्ला द्वादशीको भी किया जा सकता है। कार्तिकमें इसके करनेका सर्वथा निषेध है—       ‘तुलास्थे न कदाचन।’ [↑](#footnote-ref-33)
34. कोई-कोई विद्वान् प्रतिपदाको अग्निकी और द्वितीयाको ब्रह्माजीकी तिथि मानते हैं। [↑](#footnote-ref-34)
35. पवित्रक बनानेके लिये सोने, चाँदी या ताँबेके तार गृहीत हैं और रेशम तथा कपासके सूतोंसे भी इसका निर्माण होता है। सोमशम्भुके विचारसे सोने, चाँदी तथा ताँबेके तारोंसे पवित्रक बनानेका विधान क्रमशः सत्ययुग, त्रेतायुग तथा द्वापरयुगके लिये रहा है। कलियुगमें रूईके सूतोंसे भी काम लिया जा सकता है। शक्ति हो तो रेशमी सूतोंके पवित्रक अर्पित करने चाहिये। विष्णुरहस्यमें दर्भसूत्र, पद्मसूत्र, क्षौमसूत्र, पटट-सूत्र तथा शुद्ध कपासका सूत्र—इन सबके द्वारा पवित्रक बनानेका विधान है। कपासका सूत ब्राह्मणीका काता हुआ हो, ऐसा अग्निपुराणका विचार है। उसके अभावमें किसी भी सूतको उसका संस्कार करके उपयोगमें लाया जा सकता है। सोमशम्भुके मतमें ब्राह्मणकन्याओंद्वारा काता हुआ सूत ग्राह्य है। ‘विष्णुरहस्य’ के अनुसार ब्राह्मणकी कन्या, पतिव्रता ब्राह्मणी तथा सुशीला ब्राह्मणजातीया विधवा भी पवित्रकके लिये सूत तैयार कर सकती है। सूतमें केश न लगा हो, वह टूटा या जला न हो, मदिरा तथा रक्त आदिके स्पर्शसे दूषित न हुआ हो, मैला या नीलका रँगा न हो—इस तरहके सूत्र वर्जित हैं। उपर्युक्त रूपसे शुद्ध सूत लेकर, उसे एक बार तिगुना करके पुनः तिगुना करे और उन नौ तन्तुओंके सूतसे पवित्रक बनाये। पवित्रककी चार श्रेणियाँ हैं—कनिष्ठ, मध्यम, उत्तम और वनमाला। ‘कनिष्ठ’ पवित्रकका निर्माण सत्ताईस तन्तुओंसे होता है। वह शुभ होता है तथा उसके अर्पणसे सुख, आयु, धन और पुत्रकी प्राप्ति बतायी गयी है। चौवन तन्तुओंसे बनाये गये पवित्रकको ‘मध्यम’ की संज्ञा दी गयी है। यह और भी उत्तम है। इसके अर्पणसे पुण्य दिव्य भोग तथा दिव्य धाममें निवासका सुख प्राप्त होना बताया गया है। ‘उत्तम’ संज्ञक पवित्रक एक सौ आठ तन्तुओंसे बनता है। ऐसा पवित्रक जो भगवान् विष्णुको अर्पित करता है, वह विष्णुधाममें जाता है। एक हजार आठ तन्तुओंसे निर्मित पवित्रकको ‘वनमाला’ कहते हैं। वह भगवद्भक्ति प्रदान करनेवाली मानी गयी है। ‘कनिष्ठ पवित्रक’ की लंबाई नाभितककी होती है, ‘मध्यम पवित्रक’ जाँघतक लटकता है और ‘उत्तम’ घुटनोंतकका लंबा होता है। कालिकापुराण अध्याय ५८ में भी यही बात कही गयी है। यथा— कनिष्ठं नाभिमात्रं स्यादूरुमात्रं तु मध्यमम् ⁠। पवित्रं चोत्तमं प्रोक्तं जानुमात्रं प्रमाणतः ⁠।⁠। ‘वनमाला’ भगवत्प्रतिमाके बराबर बनायी जाती है। वह पैरोंतक लंबी होती है। उसके अर्पणसे उपासकके जन्म-मृत्युमय संसार-बन्धनका उच्छेद हो जाता है। विष्णुरहस्यमें तन्तु-देवताओंका भी वर्णन है तथा पवित्रकके आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक स्वरूपका भी विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है। [↑](#footnote-ref-35)
36. श्रीनारायणकी प्राप्तिके लिये हम ज्ञानार्जन करें। वासुदेवके लिये ध्यान लगावें। वे भगवान् विष्णु हमें अपने भजन-ध्यानकी ओर प्रेरित करें। [↑](#footnote-ref-36)
37. सोमशम्भुका कथन है कि पवित्रक लालचन्दन या केसर आदि किसी एक रंगसे रँगा रहे। यथा— रक्तचन्दनकाश्मीरकस्तूरीचन्द्ररोचनाः ⁠। हरिद्रा गैरिकं चैषां रञ्जेदेकतमेन तत् ⁠।⁠। (३८२-३८३) [↑](#footnote-ref-37)
38. सोमशम्भुका भी यही मत है— द्व‍यङ्गुला द्व‍यङ्गुलास्तत्र……………ग्रन्थयः ⁠।⁠।⁠ ३९०-९१ ⁠।⁠। [↑](#footnote-ref-38)
39. विष्णुरहस्यमें भी यही कहा गया है—शतमष्टोत्तरं कार्यं ग्रन्थीनां तु विधानतः ⁠। मुनीन्द्र वनमालायाम्…………… ⁠।⁠। [↑](#footnote-ref-39)
40. दक्षपार्ष्णेस्त्रिभिर्घातैर्भूमिस्थांस्त्रिविधानिति ⁠। विघ्नानुत्सारयेन्मन्त्री यागमन्दिरमध्यगः ⁠।⁠। (सोमशम्भुरचित कर्मकाण्ड-क्रमावली ११८) [↑](#footnote-ref-40)
41. अग्निपुराणमें भूतशुद्धिके लिये केवल उद्धात-मन्त्र दिये गये हैं। सामान्य पाठकको भूतशुद्धिका सम्यक् परिचय करानेके लिये यहाँ ‘मन्त्र-महार्णव’ में दिया हुआ प्रकार प्रस्तुत किया जाता है।

    **भूतशुद्धि**

    पहले—ॐ सूर्यः सोमो यमः कालः संध्या भूतानि पञ्च च ⁠। एते शुभाशुभस्येह कर्मणो मम साक्षिणः ⁠।⁠।

    भो देव प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभून्मम ⁠। तन्निःसारय चित्तान्मे पापं तेऽस्तु नमो नमः ⁠।⁠।

    —ये दोनों मन्त्र पढ़कर प्रार्थना करे। तदनन्तर अपने दक्षिण भागमें—‘श्रीगुरुभ्यो नमः।’ बोलकर श्रीगुरुजनोंको तथा वामभागमें ‘ॐ गणेशाय नमः।’—बोलकर श्रीगणेशजीको प्रणाम करे। तत्पश्चात् कुम्भक प्राणायाम करते हुए मूलाधार चक्रसे कमलनाल-सी प्रतीत होनेवाली परम-देवता कुण्डलिनीको उठाकर यह भावना करे कि यह कुण्डलिनी वहाँसे ऊपरकी ओर उठती हुई ब्रह्मरन्ध्रतक जा पहुँची है। प्रदीप-कलिकाके आकारवाले हृदयस्थ जीवको साथ ले, सुषुम्नानाडीके पथसे ब्रह्मरन्ध्रमें जाकर स्थित हो गयी है। उस अवस्थामें ‘हं सः सोऽहम्।’ इस मन्त्रसे जीवको परब्रह्म परमात्मासे संयुक्त कर दे। तदनन्तर अपने शरीरके पैरोंसे लेकर घुटनोंतकके भागमें चौकोर आकृतिवाले वज्रलाञ्छित भूमण्डलका चिन्तन करे, उसकी कान्ति सुवर्णके समान है तथा वह ‘ॐ लम्’ इस भू-बीजसे युक्त है। फिर घुटनोंसे लेकर नाभितकके भागमें अर्धचन्द्राकार, जलके स्थानभूत सोममण्डलकी भावना करे। वह दो कमलोंसे अङ्कित, श्वेत वर्णवाला तथा ‘ॐ वम्’ इस वरुण-बीजसे विभूषित है। इसके बाद नाभिसे लेकर हृदयतकके भागमें त्रिकोणाकार, स्वस्तिक-चिह्नसे अङ्कित, रक्तवर्ण अग्निमण्डलका चिन्तन करे, जो ‘ॐ रम्’—इस अग्निबीजसे युक्त है। तत्पश्चात् हृदयसे लेकर भ्रूमध्यतकके भागमें गोलाकार, षड्बिन्दु-विलसित, धूम्रवर्ण वायुमण्डलकी भावना करे, जो ‘ॐ यम्’ इस वायुबीजसे युक्त है। तदनन्तर भ्रूमध्यसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त भागमें गोलाकार, स्वच्छ, मनोहर आकाशमण्डलका चिन्तन करे, जो ‘ॐ हम्’—इस आकाशबीजसे युक्त है। इस प्रकार भूतगणकी भावना करके पूर्वोक्त भूमण्डलमें पादेन्द्रिय, गमन, घ्राण, गन्ध, ब्रह्मा, निवृत्तिकला, समान वायु तथा गन्तव्य देश—इन आठ पदार्थोंका चिन्तन करे। (सोम या) जल-मण्डलमें हस्तेन्द्रिय, ग्रहण, ग्राह्य, रसना, रस, विष्णु, प्रतिष्ठाकला तथा उदानवायुका ध्यान करे। तेजोमण्डलमें पायु-इन्द्रिय, विसर्ग, विसर्जनीय, नेत्र, रूप, शिव, विद्याकला तथा व्यानवायु—ध्येय हैं। वायुमण्डलमें उपस्थ, आनन्द, स्त्री, स्पर्शन, स्पर्श, ईशान, शान्तिकला तथा अपानवायु—ये आठ पदार्थ चिन्तनीय हैं। इसी तरह आकाशमण्डलमें वाग्, वक्तव्य, वदन, श्रोत्र, शब्द, सदाशिव, शान्त्यतीता कला तथा प्राणवायु—इन आठ वस्तुओंका चिन्तन करना चाहिये। इस तरह भूतोंका चिन्तन करके पूर्व-पूर्व कार्यका उत्तरोत्तर कारणमें ब्रह्मपर्यन्त विलीन करे। उसका क्रम इस प्रकार है—‘ॐ लं फट्।’ बोलकर ‘पाँच गुणवाली पृथिवीका जलमें उपसंहार करता हूँ।’—इस भावनाके साथ भूमिका जलमें लय करे। फिर ‘ॐ वं हुं फट्।’—यह बोलकर ‘चार गुणवाले जल-तत्त्वका अग्निमें उपसंहार करता हूँ’—इस भावनाके साथ जलका अग्निमें लय करे। तदनन्तर ‘ॐ रं हुं फट्।’ बोलकर ‘तीन गुणोंसे युक्त तेजका वायुतत्त्वमें उपसंहार करता हूँ’—इस भावनाके साथ अग्निका वायुमें लय करे। फिर ‘ॐ यं हुं फट्।’ यह बोलकर ‘दो गुणवाले वायुतत्त्वका आकाशतत्त्वमें उपसंहार करता हूँ’—इस भावनाके साथ वायुका आकाशमें लय करे। इसके बाद ‘ॐ हं हुं फट्।’ ऐसा बोलकर ‘एक गुणवाले आकाशका अहंकारमें उपसंहार करता हूँ’—इस संकल्पके साथ आकाशका अहंकारमें लय करे। इसी क्रमसे अहंकारका महत्तत्त्वमें, महत्तत्त्वका प्रकृतिमें और प्रकृति या मायाका आत्मामें लय करे। इस प्रकार शुद्ध सच्चिन्मय होकर पापपुरुषका चिन्तन करे—‘वासनामय पाप बायीं कुक्षिमें स्थित है। उसका रंग काला है। वह अँगूठेके बराबर है। ब्रह्महत्या उसका सिर, सुवर्णकी चोरी बाँह, मदिरापान हृदय, गुरुतल्पगमन कटिप्रदेश तथा इन सबके साथ संसर्ग ही उसके दोनों पैर हैं। उपपातक-राशि उसका मस्तक है। उसके हाथमें ढाल और तलवार है। उस दुष्ट पापपुरुषका मुँह नीचेकी ओर है। वह अत्यन्त दुःसह है।’ ऐसे पापपुरुषका चिन्तन करके पूरक प्राणायाममें ‘ॐ यं’—इस वायुबीजका बत्तीस या सोलह बार जप करके उत्पादित वायुद्वारा उसका शोषण करे। तत्पश्चात् कुम्भक प्राणायाममें चौंसठ बार जपे गये ‘ॐ रम्’—इस अग्निबीजद्वारा उत्थापित आगकी ज्वालामें अपने शरीरसहित उस पापपुरुषको जलाकर भस्म कर दे। तदनन्तर रेचक प्राणायाममें ‘ॐ यम्’—इस वायुबीजका सोलह या बत्तीस बार जप करके उत्थापित वायुद्वारा दक्षिणनाडीके मार्गसे उस भस्मको बाहर निकाले। इसके बाद देहगत भस्मको ‘ॐ वम्’—इस प्रकार उच्चारित अमृतबीजके द्वारा आप्लावित करके ‘ॐ लम्’—इस भूबीजके द्वारा उस भस्मको घनीभूत पिण्डके आकारमें परिणत कर दे और भावनामें ही देखे कि वह सोनेके अण्डेके समान जान पड़ता है। तदनन्तर ‘ॐ हम्’—इस आकाशबीजका जप करते हुए, उस पिण्डके दर्पणकी भाँति स्वच्छ होनेकी भावना करे और उसके द्वारा मस्तकसे लेकर चरण-नखपर्यन्त अवयवोंकी मनके द्वारा रचना करे। इसके बाद पुनः सृष्टिमार्गका आश्रय ले, ब्रह्मसे प्रकृति, प्रकृतिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकार, अहंकारसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे ओषधि, ओषधिसे अन्न, अन्नसे वीर्य और वीर्यसे पुरुष-शरीरकी उत्पत्ति करके ‘ॐ हं सः सोऽहम्।’—इस मन्त्रद्वारा ब्रह्मके साथ संयुक्त हो, एकीभूत हुए जीवको अपने हृदय-कमलमें स्थापित करे। तदनन्तर कुण्डलिनीको पुनः मूलाधारगत हुई देखे। फिर इस प्रकार प्राणशक्तिका ध्यान करे— रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः पाशं कोदण्डमिक्षूद्भवगुणमथ चाप्यङ्कुशं पञ्च बाणान् ⁠। बिभ्राणा सृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ‍या देवी बालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः ⁠।⁠। ‘जो लालसागरमें स्थित एक पोतपर प्रफुल्ल अरुण कमलके आसनपर विराजमान हैं, अपने कर-कमलोंमें पाश, इक्षुमयी प्रत्यञ्चासे युक्त कोदण्ड, अङ्कुश तथा पाँच बाण लिये रहती हैं, जिन्होंने खूनसे भरा खप्पर भी ले रखा है, तीन नेत्र जिनके मुखमण्डलकी शोभा बढ़ाते हैं, जो उभरे हुए पीन उरोजोंसे सुशोभित हैं तथा बाल-रविके समान जिनकी अरुण-पीत कान्ति है, वे प्राणशक्तिस्वरूपा परा देवी हमारे लिये सुखकी सृष्टि करनेवाली हों।’ [↑](#footnote-ref-41)
42. \* आधारशक्ति कूर्मरूपा शिलापर विराजमान है। गोदुग्धके समान धवल उसका गौर कलेवर है और बीजाङ्कुरमयी आकृति है। उसके पूजनका मन्त्र है—‘ॐ हां आधारशक्तये नमः।’ भगवान् अनन्त श्रीहरिके आसन हैं। उनकी अङ्ग-कान्ति कुन्द, इन्दु (चन्द्रमा)-के समान धवल है; ऊपर उठे नाल-दण्डवाले कमल-मुकुलके सदृश उनकी आकृति है तथा वे ब्रह्मशिलापर आरूढ़ हैं। पूजनका मन्त्र है—‘ॐ हां अनन्तासनाय नमः।’ धर्म आदिके पूजनके मन्त्र यों हैं—‘ॐ हां धर्माय नमः— आग्नेये।’, ‘ॐ हां ज्ञानाय नमः—नैर्ऋते।’, ‘ॐ हां वैराग्याय नमः—वायव्ये।’, ‘ॐ हां ऐश्वर्याय नमः—ऐशाने।’ (सोमशम्भु-रचित कर्मकाण्ड-क्रमावली १६१-१६४ के आधारपर)। इसी तरह ‘ॐ हां अधर्माय नमः।’ इत्यादि रूपसे मन्त्रोंकी ऊहा करके अज्ञानादिकी भी अर्चना करे। शारदातिलकमें आधारशक्तिका ध्यान एक देवीके रूपमें बताया गया है। वह कूर्मशिलापर आरूढ़ है। उसका मनोहर मुख शरत्कालके चन्द्रमाको लज्जित कर रहा है तथा उसने अपने हाथोंमें दो कमल धारण किये हैं। उक्त आधारशक्तिके मस्तकपर भगवान् कूर्म विराजमान हैं। उनकी कान्ति नीली है। ‘ॐ हां कूर्माय नमः।’—इस मन्त्रसे उनका भी पूजन करे। कूर्मके ऊपर ब्रह्मशिला (इष्टदेवकी प्रतिमाके नीचेकी आधारभूता शिला) है, उसपर कुन्द-सदृश गौर अनन्तदेव विराज रहे हैं। उनके हाथमें चक्र है। (नाभिसे नीचे उनकी आकृति सर्पवत् है और नाभिसे ऊपर मनुष्यवत्।) वे मस्तकपर पृथ्वीको धारण करते हैं। इस झाँकीमें पूर्वोक्त मन्त्रद्वारा उनकी पूजा करके उनके सिरपर विराजमान भूदेवीका ध्यान और पूजन करे। ‘वे तमालके समान श्यामवर्णा हैं। हाथोंमें नील कमल धारण करती हैं। उनके कटिप्रदेशमें सागरमयी मेखला स्फुरित हो रही है।’ (‘ॐ हां वसुधायै नमः।’, ‘ॐ हां सागराय नमः।’—इससे पृथ्वी तथा समुद्रकी पूजा करके) उसके ऊपर रत्नमय द्वीपका, उस द्वीपमें मणिमय मण्डपका तथा वहाँ शोभा पानेवाले वाञ्छापूरक कल्पवृक्षोंका चिन्तन और पूजन करना चाहिये। उन कल्पवृक्षोंके नीचे मणिमयी वेदिकाका ध्यान करे। उक्त वेदीपर योगपीठ स्थापित है। उस पीठके जो पाये हैं, वे ही धर्म आदि रूप हैं। इनमें धर्म लाल, ज्ञान श्याम, वैराग्य हरिद्रातुल्य पीत तथा ऐश्वर्य नील है। धर्मकी आकृति वृषभके समान है। ज्ञान सिंहके, वैराग्य भूतके तथा ऐश्वर्य हाथीके रूपमें विराजमान है। कोणोंमें धर्मादिका और दिशाओंमें अधर्मादिका पूजन करनेके अनन्तर पीठस्थित कमलका ध्यान करे। वह तीन प्रकारका है—पहला आनन्दकन्द, दूसरा संविन्नाल और तीसरा सर्वतत्त्वात्मक है। इस त्रिविध कमलका पूजन करके साधक प्रकृतिमय दलोंका, विकृतिमय केसरोंका तथा पचास अक्षरोंसे युक्त कर्णिकाका पूजन करे। तत्पश्चात् कलाओंसहित सूर्य, चन्द्रमा और अग्निमण्डलका पूजन करे। कमलादिके पूजनका मन्त्र यों समझना चाहिये—‘आनन्दकन्दाय संविन्नालाय सर्वतत्त्वात्मकाय कमलाय नमः।’, ‘प्रकृतिमयदलेभ्यो नमः।’, ‘विकृतिमयकेसरेभ्यो नमः।’, ‘द्वादशकलात्मकसूर्यमण्डलाय नमः।’, ‘षोडशकलात्मकचन्द्रमण्डलाय नमः।’, ‘दशकलात्मकवह्निमण्डलाय नमः।’ (शारदातिलक, चतुर्थ पटल ५६—६६) [↑](#footnote-ref-42)
43. नमो ब्रह्मण्यदेवाय श्रीधरायाव्ययात्मने ⁠। ऋग्यजुःसामरूपाय शब्ददेहाय विष्णवे ⁠।⁠।⁠ १ ⁠।⁠। [↑](#footnote-ref-43)
44. शारदातिलकमें भी यही बात कही गयी है— पाद्यं पादाम्बुजे दद्याद् देवस्य हृदयाणुना ⁠। एतच्छ‍यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरीरितम् ⁠।⁠। (पटल ४।९३) [↑](#footnote-ref-44)
45. शारदातिलकमें भी सात बार अस्त्र-मन्त्र-जपपूर्वक विकिर-विकिरणका विधान है। यथा— विकिरान् विकिरेत्तत्र सप्तजप्ताञ्छराणुना ⁠।⁠। [↑](#footnote-ref-45)
46. पचीस कुशोंसे बँधा हुआ कूर्च ‘ज्ञानखड्‌ग’ कहा गया है। दो दर्भोंका सामान्य कूर्च तथा पाँच-पाँच कुशोंका विशेष कूर्च होता है। सत्रह कुशोंका ‘ब्रह्मकूर्च’ होता है। कूर्चोंका दण्ड एक बित्तेका, उनकी ब्रह्मग्रन्थि एक अङ्गुलकी और उसके अग्रभागकी लंबाई तीन अङ्गुलकी होनी चाहिये। (ईशानशिव गुरुदेवपद्धति, सप्तम पटल १४-१५) [↑](#footnote-ref-46)
47. शारदातिलकमें भी यही बात कही गयी है— पाद्यं पादाम्बुजे दद्याद् देवस्य हृदयाणुना ⁠। एतच्छ‍यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरीरितम् ⁠।⁠। (पटल ४।९३) [↑](#footnote-ref-47)
48. गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपैः ⁠। सदूर्वैः सर्वदेवानामेतदर्घ्यमुदीरितम् ⁠।⁠। (शा०ति० ४।९५-९६) [↑](#footnote-ref-48)
49. सुधामन्त्रेण वदने दद्यादाचमनीयकम् ⁠। जातीलवङ्गकङ्कोलैस्तदुक्तं तन्त्रवेदिभिः ⁠।⁠। (शा०ति० ४।९४) [↑](#footnote-ref-49)
50. मन्त्र-महार्णवमें योनिमुद्राका लक्षण इस प्रकार कहा गया है— मिथः कनिष्ठिके बद्ध्वा तर्जनीभ्यामनामिके ⁠। अनामिकोर्ध्वसंश्लिष्टे दीर्घमध्यमयोरपि ⁠।⁠। (पू० ख० १ तरं० २) [↑](#footnote-ref-50)
51. प्रादेशमात्र ग्रन्थियुक्त दो कुशा लेकर, घीके बीचमें डालकर, उसके दो भाग करके, उसे शुक्ल और कृष्ण—दो पक्षोंके रूपमें स्मरण करे। तदनन्तर वामभागमें इडानाडी, दक्षिणभागमें पिङ्गलानाडी और मध्यभागमें सुषुम्ना नाडीका ध्यान करके हवन करे। ‘ॐ नमः।’—इस मन्त्रद्वारा स्रुवसे दक्षिण भागकी ओरसे घी लेकर दाहिने नेत्रमें ‘ॐ अग्नये स्वाहा इदमग्नये।’ कहकर एक आहुति दे। फिर उत्तर भागसे घी लेकर ‘ॐ सोमाय स्वाहा इदं सोमाय।’ बोलकर एक आहुति अग्निके वामनेत्रमें दे। इसके बाद बीचसे घी लेकर ‘अग्नीषोमाभ्यां नमः।’ इस मन्त्रसे एक आहुति अग्निके भालस्थ नेत्रमें दे। फिर स्रुवद्वारा दक्षिण भागसे घी लेकर अग्निके मुखमें ‘अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा’ बोलकर एक आहुति दे। इसके बाद व्याहृति-होम करना चाहिये (मन्त्रमहार्णवसे)। जिस भागसे आज्याहुति ली जाय, अग्निके उसी भागमें उसका सम्पात या त्याग करे। जैसा कि कहा है— ‘स्वाहान्तहोमं विधाय ‘स्वाहा’ इत्यस्यान्ते यस्माद् भागादाज्याहुतिर्गृहीता तस्मिन्नेव भागे तस्य सम्पातं कुर्यात्।’ (शा० ति० ५ पटल, श्लोक ५८ की टीका) [↑](#footnote-ref-51)
52. सूत्रको केवल त्रिगुणित करके पवित्रा बनायी जाय तो उसे ‘गन्धपवित्रक’ कहते हैं। इसमें एक गाँठ होती है और थोड़ेसे तन्तु। कोई-कोई इसे ‘कनिष्ठसंख्य’ भी कहते हैं। जैसा कि वचन है— ‘त्रिसूत्री गन्धसूत्रे स्यात्।’ तत्र गन्धपवित्रं स्यादेकग्रन्थ्यल्पतन्तुकम् ⁠। कनिष्ठसंख्यमित्येके त्रिसूत्रेण विनिर्मितम् ⁠।⁠। (ईशानशिव गुरुदेवपद्धति, क्रियापाद २१ पटल १२, ३६) [↑](#footnote-ref-52)
53. बहिर्निर्गत्य प्राचीनेषु त्रिषु मण्डलेषु दीक्षोक्तमार्गेण पञ्चगव्यं चरुं दन्तधावनं च भजेत् ⁠। (ईशानशिव गुरुदेवपद्धति, उत्तरार्ध, क्रियापाद २१वाँ पटल) [↑](#footnote-ref-53)
54. कृष्ण कृष्ण नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् ⁠। पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ⁠।⁠। पवित्रकं कुरुष्वाद्य यन्मया दुष्कृतं कृतम् ⁠। शुद्धो भवाम्यहं देव त्वत्प्रसादात् सुरेश्वर ⁠।⁠। (अग्नि० ३६।६, ७) [↑](#footnote-ref-54)
55. यम उवाच— प्रतिमापूजादिकृतो नानेया नरकं नराः ⁠। देवालयाद्यकर्तारं आनेयास्ते विशेषतः ⁠।⁠। विचरध्वं यथान्यायं नियोगो मम पाल्यताम् ⁠। नाज्ञाभङ्गं करिष्यन्ति भवतां जन्तवः क्वचित् ⁠।⁠। केवलं ये जगत्तातमनन्त समुपाश्रिताः ⁠। भवद्भिः परिहर्तव्यास्तेषां नात्रास्ति संस्थितिः ⁠।⁠। यत्र भागवता लोके तच्चित्तास्तत्परायणाः ⁠। पूजयन्ति सदा विष्णुं ते च त्याज्याः सुदूरतः ⁠।⁠। यस्तिष्ठन् प्रस्वपन् गच्छन्नुत्तिष्ठन् स्खलिताः स्थिताः ⁠। संकीर्तयन्ति गोविन्दं ते वस्त्याज्याः सुदूरतः ⁠।⁠। नित्यैर्नैमित्तिकैर्देवं ये यजन्ति जनार्दनम् ⁠। नावलोक्या भवद्भिस्ते तद्व्रता यान्ति तद्गतिम् ⁠।⁠। (अग्निपु० ३८।३६—४१) [↑](#footnote-ref-55)
56. ये पुष्पधूपवासोभिर्भूषणैश्चातिवल्लभैः ⁠। अर्चयन्ति न ते ग्राह्या नराः कृष्णालये गताः ⁠।⁠। उपलेपनकर्तारः सम्मार्जनपराश्च ये ⁠। कृष्णालये परित्याज्यास्तेषां पुत्रास्तथा कुलम् ⁠।⁠। येन चायतनं विष्णोः कारितं तत्कुलोद्भवम् ⁠। पुंसां शतं नावलोक्यं भवद्भिर्दुष्टचेतसा ⁠।⁠। यस्तु देवालयं विष्णोर्दारुशैलमयं तथा ⁠। कारयेन्मृन्मयं वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ⁠।⁠। अहन्यहनि यज्ञेन यजतो यन्महाफलम् ⁠। प्राप्नोति तत्फलं विष्णोर्यः कारयति केतनम् ⁠।⁠। कुलानां शतमागामि समतीतं तथा शतम् ⁠। कारयन् भगवद्धाम नयत्यच्युतलोकताम् ⁠।⁠। सप्तलोकमयो विष्णुस्तस्य यः कुरुते गृहम् ⁠। तारयत्यक्षयाँल्लोकानक्षय्यान् प्रतिपद्यते ⁠।⁠। इष्टकाचयविन्यासो यावन्त्यब्दानि तिष्ठति ⁠। तावद्वर्षसहस्राणि तत्कर्तुर्दिवि संस्थितिः ⁠।⁠। प्रतिमाकृद् विष्णुलोकं स्थापको लीयते हरौ ⁠। देवसद्यप्रतिकृतिप्रतिष्ठाकृत्तु गोचरे ⁠।⁠। (अग्निपु० ३८।४२—५०) [↑](#footnote-ref-56)
57. राक्षसाश्च पिशाचाश्च येऽस्मिंस्तिष्ठन्ति भूतले ⁠। सर्वे ते व्यपगच्छन्तु स्थानं कुर्यामहं हरेः ⁠।⁠। [↑](#footnote-ref-57)
58. श्रीविद्यार्णवतन्त्रमें यह मान इस प्रकार दिया गया है— वातायनपथं प्राप्य ये भान्ति रविरश्मयः ⁠। तेषु सूक्ष्मा विसर्पन्ते रेणवस्त्रसरेणवः ⁠।⁠। परमाणोरष्टगुणस्त्रसरेणुरुदाहृतः ⁠। तेऽष्टौ केशाह्वयास्तेऽष्टौ लिक्षा यूकास्तदष्टकम् ⁠।⁠। तदष्टकं यवस्तेऽष्टावङ्गुलिः समुदाहृता ⁠। सा तूत्तमाङ्गुलिः सप्तयवा सैव तु मध्यमा ⁠।⁠। षड्‌यवा साधमा प्रोक्ता मानाङ्गुलमितीरितम् ⁠।⁠। (१२।१—४) [↑](#footnote-ref-58)
59. वर्तमान समयमें अक्षतसे ही सबका पूजन करना चाहिये। इससे शास्त्रीय आज्ञाका भी परिपालन होता है तथा हिंसा आदि दोषकी भी प्राप्ति नहीं होती है। [↑](#footnote-ref-59)
60. कलशकी स्थापना। [↑](#footnote-ref-60)
61. ईंट या पत्थरकी स्थापना। [↑](#footnote-ref-61)
62. तन्त्रके अनुसार निम्नाङ्कित पाँच वृक्षोंका कषाय—जामुन, सेमर, खिरैंटी, मौलसिरी और बेर। यह कषाय वृक्षकी छालको पानीमें भिगोकर निकाला जाता है और कलशमें डालने एवं दुर्गापूजन आदिके काम आता है। [↑](#footnote-ref-62)
63. ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः ⁠। ॐ ता न ऊर्जे दधातन ⁠। ॐ महे रणाय चक्षसे ⁠। ॐ यो वः शिवतमो रसः ⁠। ॐ तस्य भाजयतेह नः ⁠। ॐ उशतीरिव मातरः ⁠। ॐ तस्मा अरं गमाम वः ⁠। ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ ⁠। ॐ आपो जनयथा च नः ⁠। (यजु०, अ० ११, मन्त्र ५०, ५१, ५२) [↑](#footnote-ref-63)
64. शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ⁠। शं योरभिस्रवन्तु नः ⁠।⁠। (अथर्व०, १।६।१) [↑](#footnote-ref-64)
65. तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ⁠। तरत्स मन्दी धावति ⁠।⁠। उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः ⁠। तरत्स मन्दी धावति ⁠।⁠। ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे ⁠। तरत्स मन्दी धावति ⁠।⁠। आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे ⁠। तरत्स मन्दी धावति ⁠।⁠। (ऋ०, मं० ९, सू० ५८।१—४) [↑](#footnote-ref-65)
66. ऋग्वेद, नवम मण्डल, अध्याय १, २, ३के सूक्तोंको ‘पावमानसूक्त’ तथा ऋचाओंको ‘पावमानी ऋचाएँ’ कहते हैं। [↑](#footnote-ref-66)
67. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ⁠। अथावयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ⁠।⁠। (यजु०, १२।१२) [↑](#footnote-ref-67)
68. कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा ⁠। कया शचिष्ठया वृता ⁠।⁠। (यजु०, ३६।४) [↑](#footnote-ref-68)
69. वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद ⁠।⁠। (यजु०, ४।३६) [↑](#footnote-ref-69)
70. हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ⁠। नृषद्वरसदृतसद्व‍योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ⁠।⁠। (यजु०, १०।२४; कठ० २।२।२) [↑](#footnote-ref-70)
71. विमला आदि शक्तियोंके नाम इस प्रकार हैं—विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना तथा अनुग्रहा ⁠। [↑](#footnote-ref-71)
72. नारदपुराण, पूर्वभाग, द्वितीय पाद, ५६वें अध्यायके ६०० से लेकर ६०३ तकके श्लोकोंमें भी यही बात कही गयी है। [↑](#footnote-ref-72)
73. शिखरके चार भाग करके नीचेके दो भागोंको ‘शुकनासा’ कहते हैं। उसके ऊपरके तीसरे भागमें वेदी होती है, जिसपर उसका कण्ठमात्र स्थित होता है। सबसे ऊपरके चतुर्थ भागमें ‘आमलसार’ संज्ञक कण्ठका निर्माण कराया जाना चाहिये। जैसा कि मत्स्यपुराणमें कहा है— चतुर्धा शिखरं भज्य अर्धभागद्वयस्य तु ⁠। शुकनासं प्रकुर्वीत तृतीये वेदिका मता ⁠।⁠। कण्ठमामलसारं तु चतुर्थे परिकल्पयेत् ⁠। (२६९।१८-१९) [↑](#footnote-ref-73)
74. नेत्रकी जो लंबाई और चौड़ाई है, उतने मापको ‘एक नेत्र’ कहते हैं। [↑](#footnote-ref-74)
75. मत्स्यपुराणमें दाहिने हाथमें श्रीफल और बायें हाथमें कमलका उल्लेख है— ‘पद्मं हस्ते प्रदातव्यं श्रीफलं दक्षिणे करे।’ (२६१।४३) [↑](#footnote-ref-75)
76. मत्स्यपुराणमें अनेक चामरधारिणी स्त्रियोंका वर्णन है—‘पार्श्वे तस्याः स्त्रियः कार्याश्चामरव्यग्रपाणयः।’ (२६१।४५) [↑](#footnote-ref-76)
77. वाचस्पत्कोषमें संकलित गरुड़पुराण (४५वें अध्याय)-के निम्नाङ्कित वचनसे ‘प्रद्युम्न-शिलाका पीतवर्ण सूचित होता है।’ यथा—‘अथ प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतकः।’ [↑](#footnote-ref-77)
78. उक्त ग्रन्थके अनुसार ही अनिरुद्धका नीलवर्ण सूचित होता है। यथा—‘अनिरुद्धस्तु वर्तुलो नीलो द्वारि त्रिरेखश्च।’ [↑](#footnote-ref-78)
79. पृथुचक्रो नृसिंहोऽथ कपिलोऽव्यात्त्रिबिन्दुकः ⁠। अथवा पञ्चबिन्दुस्तत्पूजनं ब्रह्मचारिणाम् ⁠।⁠। (इति गरुडपुराणेऽपि) [↑](#footnote-ref-79)
80. वराहः शुभलिङ्गोऽव्याद् विषमस्थद्विचक्रकः ⁠। नीलस्त्रिरेखः स्थूलः ⁠। (ग०पु०) [↑](#footnote-ref-80)
81. अथ कूर्ममूर्तिः स बिन्दुमान् ⁠। कृष्णः स वर्तुलावर्तः पातु चोन्नतपृष्ठकः ⁠। (ग०पु०) [↑](#footnote-ref-81)